युग निर्माता महापुरुष

✻ लेखक ✻
पंण्डित मूलचंद वत्सल, दमोह

✻ सम्पादक ✻
ब्र. जिनेश मलैया (प्रधान संपादक संस्कार सागर) इंदौर

प्रकाशक

श्री दिगंबर जैन युवक संघ

केंद्रीय कार्यालय : श्री दिगंबर जैन पंच बालयति मंदिर
सत्यम् गैस के सामने, ए.बी. रोड, इन्दौर (म.प्र.)
फोन :- 0731-3193601, मो.: 8989505108

कृति : **युग निर्माता महापुरुष**
प्रेरणा : पंडित श्री रतनलाल जी, इंदौर
लेखक : पंडित मूलचंद जैन (वत्सल) दमोह
संपादक : ब्र. जिनेश मलैया, प्रधान संपादक संस्कार सागर, इंदौर
पुण्यार्जक : श्रीमति भारती, डॉ. राजेश, ब्रजेश, शैलेष कासलीवाल परिवार, इंदौर
आवृत्ति : 1100
न्यौछावर राशिः 300/-

प्राप्ति स्थान :

1) सत् साहित्य विक्रय केन्द
श्री दिगंबर जैन पंचबालयति मंदिर
मेट्रो टॉवर के पीछे, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-3193601, 8989505108

2) **श्रीमति भारती कासलीवाल**
112, कंचनबाग, इंदौर

मुद्रक : **जय भारत प्रिंटिंग प्रेस**
वेस्ट रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली-32

*सर्वाधिकार सुरक्षित प्रकाशकाधीन

विषय सूची

प्रथम खंड-युगपुरुष

क्र.	चारित्र	पृष्ठ
01	कर्मयोगी श्री ऋषभदेव (आदिनाथ स्वामी)	01
02	मेघेश्वर जयकुमार (एक पत्निव्रत के आदर्श)	10
03	चक्रवर्ती भरत (भारत के आदि चक्रवर्ती सम्राट्)	21
04	दानवीर श्रेयांशकुमार (दान-प्रथा के प्रथम प्रचारक)	30
05	महाबाहू बाहूबलि (महायोग व स्वाभिमान के स्तम्भ)	35

द्वितीय खंड-युगपुरुष

06	योगी सगरराज (भोग से निकलकर योगमार्ग में आने वाले)	43
07	निष्प्रही सनतकुमार (आत्मसौंदर्य के परीक्षक)	51
08	महात्मा संजयन्त (सुदृढ़ तपस्वी)	57
09	महात्मा रामचन्द्र (भारतविख्यात महापुरुष)	62
10	तपस्वी वालिदेव (दृढ़ प्रतीज्ञ वीर और योगी)	75
11	दयासागर नेमिनाथ (महादयालु दृढ़व्रती तीर्थंकर)	82
12	तपस्वी गजकुमार (पतित से पावन दृढ़योगी)	101
13	पवित्र-हृदय चारुदत्त (पतित को पावन बनाने वाले महापुरुष)	111
14	आत्मजयी श्री पार्श्वनाथ (महान धर्म प्रचारक तीर्थंकर)	120
15	शीलव्रती सुदर्शन (एक पत्नि व्रत का आदर्श)	124
16	सुकुमार सुकुमाल (महामुनि)	134

तृतीय खंड-युगपुरुष

17	भगवान महावीर वर्द्धमान (युग-प्रवर्तक जैन तीर्थंकर अहिंसा के अवतार)	143
18	श्रद्धालु श्रेणिक बिंबसार (अनन्य श्रद्धालु महापुरुष)	149
19	महापुरुष जम्बूकुमार (वीरता व त्याग के आदर्श)	156
20	तपस्वी वारिषेण (आत्मदृढ़ता के आदर्श)	162
21	गणराज गौतम (सत्य के महान उपासक)	177
22	आत्मजयी स्वामी समंतभद्र (दृढ़तपस्वी, धर्मप्रचारक)	187
23	मुनिराज ब्रह्मगुलाल (महान भाव परिवर्तक)	198

प्रस्तावना

उस पुराने युग की यह कथाएं हैं तब हमारी सभ्यता विकास के गर्भ में थी। तब भोग युग के महासागर से कर्मयुग की तरंगे किस मृदुगति से प्रवाहित हुयीं, कर्मयुग के आदि से मानव सभ्यता का विकास किस तरह हुआ ? रीति रिवाजों की आवश्यकता कब और क्यों हुई, उसकी उत्पत्ति और वृद्धि किन साधनों से हुई, इन सबका मनोरंजक वर्णन इन कथाओं द्वारा किया गया है।

प्राचीन भारतीय सभ्यता की प्रारंभिक स्थिति क्या थी ? प्राचीन भारतीय किस दिशा में थे। उनका अंतिम आदर्श क्या था ? आत्म विकास के लिए उनके हृदय में कितना स्थान था, ये कथाएं यह सब रहस्य उद्घाटित करेंगी।

इन कथाओं में उन चित्रों के दर्शन होंगे जिनके बिना हमारी सभ्यता के विकास का चित्रपट अधूरा रह जाता है।

ये कथाएं केवल मनोरंजन मात्र नहीं है, किन्तु प्राची युग के प्रारंभ काल की इन कथाओं को पढ़ने पर पाठकों को इसमें और भी कुछ मिलेगा। इसमें सभ्यता के मूल बीज मिलेंगे और भारतीयों का अतीत गौरव, महान त्याग और आत्मोत्सर्ग की पुण्य स्मृतियां प्राप्त होंगी।

इन कथाओं द्वारा प्राचीन मान्यताओं को प्राचीन कथानकों में से निकालकर, उन्हें मौलिक रूप में जनता के सामने रखने का थोड़ा सा प्रयत्न किया गया है। इसमें वर्णित मान्यताओं और महत्व के दृष्टिकोण में मतभेद हो सकता है लेकिन उस समय की परिस्थितियों को सामने रखकर तुलना करने वालों को यह सब जचेगा।

आदि की 5 कथाएँ कर्मयोगी,ऋषभदेव, जयकुमार सम्राट् भरत, श्रेयांसकुमार और बाहुबलि इनमें भारत की आदि कर्मभूमि की प्रवृत्तियें मिलेगी, और अन्य कथाओं में आत्म त्याग, सहनशीलता, वीरत्व, आत्मस्वातंत्र्य और पवित्र आत्मदर्शन की छटा दिग्दर्शित होगी।

प्रत्येक युग का संक्रान्ति समय महत्वपूर्ण हुआ करता है। उस समय पुरानी सृष्टि के अंत के साथ नई सृष्टि का सृजन होता है। वह सृष्टि की आगे की रचना के लिए आधारभूत हुआ करती है। उस समय की परिस्थिति को काबू में रखना, उद्वेलित जनता को संतोष देना और उसका मार्ग प्रदर्शन करना अत्यंत महत्वशाली होता है। यह कार्य महानतर व्यक्ति द्वारा ही पूर्ण होता है। परिस्थिति को सम्हालने का चातुर्य, महत्व और ज्ञान वैभव किन्हीं विरले पुरुषों में हुआ करता है।

दिग्मूढ और अव्यव्यवस्थित जनता का मार्ग प्रदर्शन साधारण महत्व कार्य नहीं है, ऐसे महा संकट के समय में जिन महापुरुषों ने पथ प्रदर्शक का कार्य किया है वे हमारी श्रद्धा और आदर के पात्र हैं। प्राचीन इतिहास में उनका गौरवमय स्थान है। उन्हें अपनी श्रद्धांजलियां समर्पित करना हमारा कर्तव्य हैं।

आज के विकासवाद के युग में जब कि भौतिक विज्ञान आत्म विज्ञान स्थान ले रहा है, त्याग और आत्म संतोष की यह कथाएं नया जीवन और शांति दे सकेंगी। भोगवाद और इन्द्रिय विलास में जीवन की सफलता मानने वालों के सामने आत्म प्रकाश का यह प्रदर्शन सफल हो सकेगा अथवा नहीं इन संदेहों में हम नहीं पड़ना चाहते। हम तो जनता के सामने महापुरुषों के महत्व को प्रदर्शित करने का प्रयत्न कर रहे हैं इनसे यदि कुछ व्यक्तियों को ही आत्मलाभ मिल सका तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

साहित्य सेवक-

मूलचंद वत्सल।

संपादकीय

सिंधु घाटी की सभ्यता भी अपने गर्भ में थी उसके पूर्व पुराणातीत इतिहासातीत तीर्थंकरो ने भारत भूमि को मानवीय सभ्यता के उच्च शिखर पर सांस्कृतिक धरोहर पहुंचाने का प्रयास किया था।

आचार्य जिनसेन ने नवमी शताब्दी में आदिपुराण का लेखन करके भारतीय समाज को तीर्थंकरों की धर्मदेशना तथा उनके जीवन चारित्र को जनमानस के सामने प्रस्तुत किया था। उनकी शैली यह बताती है कि भरत चक्रवर्ती के नाम पर भी आर्यव्रत का नाम अजनाभ से भारत पड़ा। और यह तत्व पुराण साहित्य में विष्णु पुराण, महापुराण, स्कंधपुराण, एवं पद्मपुराण से स्पष्ट होता है कि भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती की सम्यता सम्प्रभुता एवं राजनैतिक, सामाजिक , सांस्कृतिक वैभव को परिलक्षित करते हुये भारत नाम निश्चित किया गया।

युगश्रेष्ठ, युगपुरुष की कथाओं को आधुनिक भाषा शैली में निबद्ध करते हुए पंडित मूलचंद वत्सल ने प्रस्तुत ग्रंथ का लेखन किया।

उन्होंने महापुरुषों के जीवन चरित्र को प्रस्तुत करते हुए उनकी पुण्य घटनाओं को समाज के सामने इस तरीके से प्रस्तुत किया है कि जिससे आने वाली पीढ़ी प्रेरित होकर धर्म दर्शन को समझे तथा अपने युगांतकारी महापुरुषों के जीवन को समझकर ज्ञान वैराग्य के पथ पर अग्रसर हो सके। हमें गौरव का अनुभव हो रहा है कि श्री दिगम्बर जैन युवक संघ ऐसे ग्रंथ का प्रकाशन पंडित श्री रतनलाल जैन शास्त्री इंदौर की प्रेरणा से कर रहा है। जिससे समाज जन-धर्म का वातावरण प्राप्त कर सके तथा पाठकगण इसे पढ़कर अपने जीवन चरित्र को धर्मनिष्ठ बना सके।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग श्रीमति भारती, डॉ. राजेश, ब्रजेश, शैलेष कासलीवाल परिवार का रहा है उनका आभार अभिव्यक्त करते है।

ब्र. जिनेश मलैया
प्रधान संपादक संस्कार सागर, इंदौर

पंडित रतनलाल जी शास्त्री

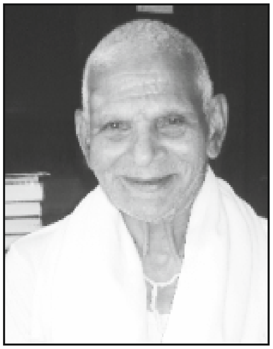

इस अनादि अनंत लोक में कई सिद्ध हुए हैं तथा अनंत महापुरुष हुए हैं जिनको हम पुराणों से जान सकते हैं तथा अनेक इस वर्तमान काल में भी है तथा भविष्य में भी होंगे। जिनको हम जानते हैं तथा जो हमारे आदर्श पुरुष हैं वेभी महापुरुष हैं, वे वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और अनुभववृद्ध है ऐसे हमारे आदरणीय पंडित श्री रतनलाल जी शास्त्री साहब हैं। वे गंभीर हैं सागर की तरह, बालक की तरह मृदु है, विनम्र स्वभावी है, हित, मित, प्रिय भाषी हैं।

वे बारह भावना व सोलहकारण भावना को जीवन में चरितार्थ कर रहे हैं। निरंतर चिंतन मनन में लीन रहते हैं। भगवन्तों व गुरुओं की निरंतर आराधना करते हैं, ग्रंथों में लीन रहते हैं। भगवंतों व गुरुओं की निरंतर आराधना करते हैं, ग्रंथों का व तीर्थों का निरंतर ध्यान करते हैं। उनकी चर्या मुनिराज जैसी है। समयसार, प्रवचनसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि का निरंतर चिंतन व अनुभव करते हैं, उसी में लीन रहते हैं। सबके सिद्ध होने की व खुशी होने की भावना निरंतर भाते रहते है। अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी है चारों अनुयोगों का उन्हें तलस्पर्शी ज्ञान है। आपने कई मुनिराजों को, माताजियों को, ब्रह्मचारी भाइयों व बहनों को शास्त्रों का अध्ययन कराया है। कठिन विषयों को भी बडी सरलता से सहजता से सरल करके बना देते हें। आपके कथन की शैली इतनी अच्छी है कि कई बार एक ही आख्यान सुन लो पर भी उस आख्यान का आकर्षण या रस कम नहीं होता। मन इतना कोमल है कि पुराणों को पढ़ते समय आंखों से अश्रु बहते हैं। आपका हर कार्य सकारात्मक सोच से होता है। आपका जीवन सीधा सादा सादगी भरा है।

पंडित जी साहब का जन्म एक छोटे से गांव विनोता जिला चित्तौड में सन् 1934 में श्री सुखलाल जी और श्रीमती गमेरी बाई के यहां हुआ। परिवार सामान्य था पर संस्कारों से परिपूर्ण था। गांव में स्कूल तो था नहीं एक मंदिर में कोई अध्यापक आते थे वे गणित व अक्षर ज्ञान करा देते थे। जब थोडे बड़े हुए तो उदयपुर विद्यालय में पढ़ने गये।

विद्यालय में शुल्क व निशुल्क इस प्रकार व्यवस्था थी। पंडित जी निशुल्क में पढ़े, जो निशुल्क में पढ़ते थे तो उनके सामान्य पढ़ाई हिन्दी अंग्रेजी इतिहास भूगोल आदि तो पढ़ना ही था पर संस्कृत व्याकरण न्याय व धर्म का भी पढ़ना जरूरी था। जो शुल्क देते देने थे उनको ये जरूरी नहीं था। छात्रावास में रहते थे। खूब कडी मेहनत करके आपने सभी विषयों को पढ़ा और प्रतिभावान तो थे ही विषयों में मिडल बोर्ड में फस्ट डीवीजन से पास हुए। और मेट्रिक भी फस्ट डीवीजन से पास की। नौकरी मिली तो वहां मंदिर नहीं था, आज ज्यादा पैसे ओर सुख सुविधा के लिए लोग विदेश भी जाते हैं पर आपने देव दर्शन न मिलने से वो नोकरी ठुकरा दी और आपने जिस विद्यालय में पढ़ाई की थी उसी में

नौकरी मिलने से वहीं इतिहास भूगोल का अध्यापन कार्य सन् 1954 से 1957 तक किया। यहां धर्म की साधना व अनेक शास्त्रों का अध्ययन भी करते रहे। आपने अपने जीवन को अर्थ का साधन बनाकर धार्मिक शिक्षा व जिनवाणी की सेवा को समर्पित किया।

बचपन में आप घोड़ी की सवारी करते थे उसका अनुभव उन्होंने अध्यात्म में लगाकर बताया कि अश्वारोही होता है उसको घोड़े के चलाने की विधि मालूम होती है। घोड़े के लगाम होती है वो लगाम को साधकर रखता है। अगर लगाम को बिलकुल खींच लिया तो घोड़ा रूक जायेगा और लगाम को पर छोडा तो घोडा आपको गढ्ढे में गिरा देगा। उसी तरह आत्म साधक -साधक अवस्था में जब प्रमाद आता है तो मनरूपी अश्व की लगाम खींचो और स्वरूप में जाना है तो जरा ढील कर दो। यही वस्तु स्वरूप है इससे अपना काम व्यवस्थित चलेगा।

आप कहतेहै कि जीवन में संकल्प जरूरी है, संकल्प के बिना अपना उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता है। आपने शिखर जी की यात्रा 108 वंदना का संकल्प लिया था। वो संकल्प 1990 में पूरा कर लिया उसके बाद आज तक हर फाल्गुन में वंदना को जाते हैं। धार्मिक क्रिया में अग्रणी रहते हैं। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य धारण करने का संकल्प किया व्रती बनकर अपना जीवन यापन कर रहे हैं समाधि की उत्कृष्ट भावना को पूर्ण कर रहे हैं ।

मात्र ग्रंथ व शास्त्रों से ही ज्ञान लिया पर जीवन की राह में अनुभवों से जो भी मिला उससे भी उन्होंने धर्म दृष्टि से ज्ञान प्राप्त किया।

इन्द्रभवन जहाँ पंडित जी रहते हैं वहा एक माली बड़ी उम्र के थे वे रोज दोपहर को पानी की टंकी के पास बैठकर चने चबाते थे। पंडित जी रोज देखते थे सो एक दिन पूछ ही लिया कि बाबा कोई रोटी बनाने वाला नहीं है क्या ? उसने कहा एक खटला (पत्नि) है। वो बोला दिनभर मजदूरी करेंगे तो पैसा मिलेगा और उससे आटा खरीदूंगा और शाम को वो रोटी बनाकर देगी फिर भोजन करूंगा। तो पंडित जी ने पूछा और कोई सेवा करने वाला नहीं है क्या ? उसने कहा भगवान ने एक दिया था 20 वर्ष का हो गया फिर भगवान को जरूरत पड़ी तो बुला लिया अपनी कुछ भी चलती नहीं, हम शांति से रहते हैं। इतनी समता ! पंडित जी ने सोचा तुम तो समयसार, प्रवचनसार सब मे पास हो गये हो। सबके पढने का अर्थ यही है कि अपने परिणामों में समभाव आवे शांति आवे।

बहिरात्मा जीव कर्त्ता बुद्धि से स्वामी बनकर आकुलित होता रहता है और अंतरात्मका कर्त्तव्य करते हुए सहज भाव से आने वाली परिस्थिती का ज्ञायक रहता है।

शास्त्र सभा में एक भव्यात्मा विराजते थे उनको दिल की बीमारी थी सो डॉक्टर ने कहा होगा कि जब तकलीफ लगे तो आप एक गोली मुंह में रख लेना। पंडित जी ने उनको ऐसा करते देखा तो पूछा क्या बात है ? तो उन्होंने बताया डॉक्टर ने मुझे ऐसा करने को कहा है तो पंडित जी ने कहा यह ठीक है। अपने

को भी परिणामों में तकलीफ हो तो अचूक दवा बारह भावना की बारह गोलियां है इनसे तुरंत परिणामों में शांति समता आयेगी। कोई भी गोली लो धर्म भावना, एकत्व, अन्यत्व, अनित्य, अशरण आदि नुकसान नहीं करेगी परिणामों में तुरंत समता आयेगी शांति आयेगी फायदा होगा। अतः बारह भावना निरंतर भानी चाहिए। शरीर आदि बाह्य पदार्थ रूपी है अचेतन हे संयोगी भाव है इन्द्रिय सुख का कारण है परगत तत्व हैं। उससे विपरीत आत्म चेतन अरूपी अतीन्द्रिय ज्ञानतादृष्टा स्वगत तत्व है।

गांव में तालाब छोटे होते हैं उसमें पशु पानी पीने आते हैं पास में कीचड में मेढ़क जब शांत वातावरण होता है तो पानी से निकलकर किनारे पर बैठे जाते हैं। जब पशु आते हैं तो पशु का पैर उनको लग सकता है, बच्चों कौतूहल से पत्थर भी मारते हैं और सूरज की धूप भी लगती है वो मेढ़क अगर उछलकर पानी में चला जाये तो पशु का पैर न लगे, पत्थर न लगे और सूरज का ताप भी न लगे इसी प्रकार में उपयोग रूपी मेढक पंचेन्द्रिय के विषय कषायरूपी किनारे पर बाहर आकर बैठ गया तो तीन बातें तो होंगी सूर्य का आताप रूपी, भाव कर्म पशु के पैर रूपी द्रव्य और पत्थर रूपी नौ कर्म तो लगेंगे ही।

जैसे मेढ़क तालाब में चला जाये तो तीनों से बच जाये वैसे ही ये हमारा उपयोग रूपी मेढ़क निर्विकल्प समाधि में आ जाये तो इसे द्रव्यकर्म, नोकर्म भावकर्म की कोई बाधा नहीं आयेगी। इस प्रकार सामान्य सी बातों से भी वे अध्यात्म निकाल लेते हैं और अपने ज्ञान श्रद्धा को पुष्ट करते रहते है।

तालाव से निकलकर के तीन मेढ़क एक के ऊपर एक बैठे थे ऐसा ऊपर वाला गुटर गू- गुटर गू कर रहा था बीच वाला कुछ कम -कुछ कम बोल रहा नीचे बाला दोनो के बोझ से दबा जा रहा था और उसको मुख से निकल रहा था मरे हम, मरे हम। ये देखकर पंडित जी ने चिंतन किया कि ऐसी दशा इस जीवात्मा की हो रही है संसारी बहिरात्मा जीव कर्तृत्व के बोझ से लदा हुआ मोह राग द्वेष करता हुआ मरे हम, मरे हम की अनुभूति कर रहा है और अंतरात्मा ज्ञानी मिथ्यात्व के अभाव से कुछ कम, कुछ कम आकुलता का अनुभव कर रहा है सबसे ऊपर वाला वीतरागी परमात्मा के समान निजानंद में लीन होकर ज्ञायक भाव की अनुभूति कर रहे है गूटर गू, गूटर गू। हमे भी परमात्मा के गूटर गू को याद करके क्षण भर की सुखानुभूति, ज्ञानानुभूति ,आत्मानुभूति करना है। सिद्ध समान बनना है।

ऐसे मेरे गुरु को सादर नमन, नमन, नमन।

क्षमासिंधु पारस प्रभु, रतन तीन गुणखान।
आश चरण में नित नमूं, पाऊं सम्यक ज्ञान॥

श्रीमति आशा महेन्द्र खासगी वाले
115 कंचनबाग, इंदौर

स्मृति शेष

समाज सेवी स्व. सुरेशचन्द्र जी का जन्म 17 जनवरी 1937 में इंदौर स्थित प्रतिष्ठित व्यापार समूह तथा जैन समाज के प्रमुख स्व. श्री बसंतीलाल जी कासलीवाल के घर में हुआ था। बचपन से ही प्रतिभाशाली सुरेश जी स्थानीय जैन समाज मे प्रथम युवा थे जिन्होंने इंजीनियरिंग की डिग्री मुंबई के प्रसिद्ध कॉलेज से उच्च श्रेणी में हासिल की । तत्पश्चात इंदौर में स्वयं का इलेक्ट्रॉनिक्स का उद्योग स्थापित किया तथा व्यापार जगत में विशेष स्थान अर्जित किया । अपने जीवन काल में वे कई वर्षों तक विभिन्न उद्योग समूहों के अध्यक्ष बने रहे । समाज सेवा के प्रति लगन में एवं पीड़ित परिवारों के प्रति समर्पण की भावना उनमें युवावस्था से जाग्रत रही और फलस्वरूप वे रोटरी इंटरनेशनल के माध्यम से सन् 1964 से मृत्युपरांत समाज सेवा में पूणरूपेण समर्पित रहे। रोटरी क्लब के अनेक उच्च पदों पर रहते हुये उन्होंने विभिन्न देशों की यात्रा की तथा व्यापार जगत एवं समाज सेवा में कई विशिष्ट उपलब्धियों एवं पुरुस्कारों से सुशोभित हुए। लगभग एक दशक सेअधिक तक वे इंदौर जैन समाज के प्रतिष्ठित विद्यालय सन्मति स्कूल के अध्यक्ष पद पर बने रहे एवं विद्यालय को नई ऊँचाईयां पर पहुँचाया।

सुरेश जी की धर्मपत्नी श्रीमति भारती देवी ने जैन धर्म संस्कार, स्वाध्याय तथा मानव सेवा के माध्यम से उनकी विरासत को अविरल जारी रखा है। मध्यप्रदेश इंदौर के सुप्रसिद्ध विशेष जुपिटर हॉस्पिटल के संस्थापक डॉ. राजेश कासलीवाल, उद्योगपति ब्रजेश तथा शैलेश कासलीवाल के प्रेरणास्त्रोत पूज्य पिताजी सुरेश जी अपने भरे पूरे परिवार से दिनांक 13 मार्च 2020 को इस दुनिया से स्वयं की अविस्मरणीय छवि छोड़ के विदा हुये।

युग निर्माता महापुरुष

प्रथम खंड-युगपुरुष

कर्मयोगी श्री ऋषभदेव

(1)

पवित्रपुरी अयोध्या अपनी पुण्य गोद में अनेक महापुरुषों को खिला चुकी है। प्राचीन युग से लेकर आज तक वह पवित्र भूमि बनी हुई है।

कर्मयुग के प्रारंभ होने का वह समय था। उस समय मानव श्रेष्ठ नाभिराय अयोध्या के शासक थे। वे नीतिनिपुण और कुलधर्म के ज्ञाता थे। उदारता और गंभीरता उनके गुण थे। किसी तरह की कठिनाई आने पर जनता को धैर्य देकर उनका पथ-प्रदर्शन करते थे।

नाभिराय की पत्नी मरूदेवी थी, वे सुशीला और पतिव्रता थी। वे भारतीय श्रेष्ठ नारी के संपूर्ण गुणो से पूर्ण थी। सौन्दर्य, सद्‌गुण और सदाचार ने उनका आश्रय लिया था। नारी सुलभ लज्जा और नम्रता उनके शरीर में व्यक्त थी। अपने पति के प्रत्येक कार्य में वे पूर्ण सहयोग प्रदान करती थी।

दंपत्ति का जीवन अत्यंत सुखपूर्ण था। उन्हें न तो अपने अधिकारों के प्रति किसी प्रकार का झगड़ा था और न किसी कारण से कभी घृणा और ईर्षा के विचार ही उठते थे, उनके हृदय सरल और निर्दोष थे। प्रेम और सहानुभूति की भावनायें उनमें सदैव जागृत रहती थी।

नाभिराय अपने शासन-कार्यों को पूर्ण मनोयोग सहित किया करते थे। उनके द्वारा जनता को पूर्ण न्याय सुख और संतोष मिलता था। नागरिकों के प्रत्येक कष्ट को ये ध्यान पूर्वक सुनते और उसके प्रतिकार का उचित प्रयत्न करते थे।

नागरिकों के प्रति नाभिराय के हृदय में सच्चा स्नहे था, वे उन्हें अपने प्रिय पुत्र की तरह समझते थे। वे कुल धर्म के प्रवर्तक थे इसलिये जनता उन्हें कुलकर नाम से संबोधित करती थी।

नाभिराय के समय में भरतवर्ष में एक विचित्र परिवर्तन हुआ। उस समय वहाँ अनेक जाति के इस तरह के वृक्ष उत्पन्न हुआ करते थे जिससे मानव समाज अपनी आवश्यकता की संपूर्ण सामग्री उनसे अनायास ही प्राप्त कर लेती थी। और उन्हें खाद्य अथवा अन्य पदार्थों के उपार्जन की कोई चिन्ता नही रहती थी। ये सदैव निश्चिंत और सुखपूर्ण रहते थे। स्वतंत्र विचरण, परस्पर स्नेहपूर्ण व्यवहार, और निष्कपट वार्तालाप करने के अतिरिक्त उनके सामने कोई कार्य नहीं था।

धीरे धीरे संपूर्ण सुख-सामग्री प्रदान करने वाले ये कल्पवृक्ष नष्ट होने लगे और पृथ्वी हरित तृण समूह से हरी भरी होने लगी। कुछ वृक्ष जो शेष रह गये थे उनसे पूर्ण खाद्य सामग्री न मिलने के कारण जनता एक प्रकार के कष्ट का अनुभव करने लगी।

कुछ समय तक उन्होंने इस प्रकार कष्ट को सहन किया किन्तु उन्हें इसके प्रतिकार का कोई उचित उपाय नहीं सूझ पड़ा तब एक दिन एकत्रित होकर उन्होंने नाभिराय के सामने अपने कष्टों को प्रकट करने का विचार किया।

नाभिराय का अभिवादन कर नागरिकों ने उन्हें अपनी कष्ट कहानी सुनाई। वे कहने लगे-नरश्रेष्ठ। ये कल्पवृक्ष अब हमसे रूष्ट हो गये हैं। प्रथम तो वे हमें अपने आप ही इच्छित खाद्य द्रव्य प्रदान करते थे। किन्तु अब प्रार्थना करने पर भी वे हमें पूर्ण सामग्री नहीं देते। इस ओर हमारे बालक खाद्य पदार्थों की कमी के कारण भूखे रहने लगे हैं, आप हमें अपनी क्षुधा-पूर्ति का उचित उपाय बतलाने की दया कीजिये।

नागरिकों की कष्ट पूर्ण प्रार्थना सुनकर उन्हें संतोष देते हुये नाभिराय ने कहा-नागरिको अब काल दोष के प्रभाव से कल्पवृक्षों की उत्पत्ति शक्ति क्षीण हो गई है और अब वे बिलकुल नष्ट हो जायेंगे इससे तुम्हें घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। अब पृथ्वी पर जो यह हरित तृण-समूह तुम्हें दिख रहा है इसे ही उचित खाद्य द्रव्य व्याप्त होगा। किन्तु अब इसकी वृद्धि और रक्षा के लिये तुम्हें कुछ श्रम करना पड़ेगा।

अभी तक तो तुम सब सभी तरह के श्रम और कार्य करने से मुक्त थे किन्तु अब आगे इस तरह नहीं चलेगा।

नागरिकों ने कहा नर श्रेष्ठ! हमें आप जो कार्य और श्रम बतलायें उसके लिये हम सब करने को तैयार हैं, आप हमें कार्य की उचित व्यवस्था बतलायें, आपकी जो आज्ञा होगी उसका हम सहर्ष पालन करेंगे।

नाभिराय ने वृक्षों की वृद्धि और उनसे खाद्य सामग्री प्राप्त होने के उपाय बतलायें। जिन वृक्षों के फल हानिकर थे और जिनसे रोगादि व्याधियाँ उत्पन्न होने की संभावना थी उन्हें अलग करने की व्यवस्था बतलाई। इसके सिवाय उन फलों को पकाने तथा उन्हें स्वादिष्ट बनाने की विधियाँ भी दिग्दर्षित की। फलों को पकाने और उन्हें सुरक्षित रखने के लिये जिन पात्रों की आवश्यकता थी उनके योग्य सामग्री तथा निर्माण कला भी बतलाई।

खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति और उसके रक्षण उपाय जानकर जनता संतुष्ट हुई और अपनी आवश्यकता के लिये उचित श्रम करने में संलग्न हो गई।

(2)

रात्रि आधी व्यतीत हो चुकी थी। नाभिराय के प्रसाद में जलते हुये दीपकों का प्रकाश कुछ मंद हो चला था। सारा संसार निद्रादेव की सुखमय गोद में निमग्न था। संसार का कोलाहल पूर्ण रूप से शांत हो

गया था।

मरूदेवी गहरी निद्रा का आनंद ले रही थी, प्रभात होने मे अभी विलम्ब था। इसी समय उन्होंने सुन्दर स्वप्नों का निरीक्षण किया। स्वप्न के अंत में अपने मुंह में वृषभ को प्रविष्ट होते देख वे आश्चर्य से चकित हो गई। अनायास ही उनकी निद्रा भंग हो गई। वे उठी स्वप्नों के निरीक्षण हेतु उनका मन, उल्लास और आनंद मग्न हो रहा था।

पक्षियों ने मधुर कलरव के साथ प्रभात का संदेश सुनाया। सूर्य वियोग से कुम्हलाए हुये पंकजों के मुंह खुल गये। मंद पवन प्रत्येक गृह में जाकर आलसता भंग करने लगी।

रात्रि में देखे हुये अभूतपूर्व स्वप्नों का फल जानने के लिये मरूदेवी का हृदय चंचल हो उठा। प्रभात होते ही वे प्रसन्न मुद्रा में अपने पति के पास पहुंची।

नाभिराय ने उन्हें अपने समीप आसन पर बिठलाते हुये इतने सवेरे आने का कारण पूछा-

मरूदेवी ने अत्यंत प्रसन्न होकर रात्रि में देखे हुये स्वप्नों को कह सुनाया और उनके फल जानने की इच्छा प्रकट की।

नाभिराय ने स्वप्नों के फलों का निर्देश करते हुये कहा देवी तुमने जो यह शुभ स्वप्न देखे हैं उनका फल घोषित करता है कि तुम्हारे गर्भ में अत्यंत तेजस्वी ओर जगत्य सिद्ध व्यक्ति ने स्थान ग्रहण किया है। वह संसार का महान कर्मयोगी होगा। अपने उज्जवल चारित्र बल से वह विश्व को आत्मदर्शन का संदेश सुनायेगा।

अपने पति के मुँह से स्वप्नों का फलादेश सुनकर मरूदेवी का हृदय उसी तरह खिल गया जिस तरह सूर्य रश्मियों से कमलिनी मुकुलित हो उठती है। वह प्रसन्न मन से उठी और अपने गृहकार्यों में संलग्न हो गई।

आज से मरूदेवी के हृदय में पुत्र आने की अनूठी भावनायें जागृत होने लगीं। उसे प्रत्येक कार्य में एक अनुपम नवीनता दिग्दर्शित होने लगी। उसने आज से अपने आपको परम सौभाग्यशाली समझा।

सुखसंपन्न मानवों का अपना जाता हुआ समय मालूम नहीं चलता। दुखी मानव, शोकसंतप्त व्यक्ति को जो समय युग सा दिखता है, सुखी मानव उसे हर्षित हृदय से एक पल की तरह गुजार देता है। पाप और पुण्य समय को परिवर्तित करने में एक अद्भुत शक्ति रखते है। पुण्य की छाया में सुप्त मानव पर समय के परिवर्तन का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। गर्मी का तप्त मध्यान्ह वर्षा की घनघोर काली रजनी शीत हिमाच्छादित दिन उसके एक सुख स्वप्न की तरह चले जाते हैं, किन्तु वही मध्यान्ह वही रात्रि और वे दिन पुण्य क्षय होते ही कलपते हुये कठिनाई से कटते हैं।

संपूर्ण सुख-सामग्रियों से सज्जित सुन्दर भवन में रहती हुई मरूदेवी के नव मास चुटकी बजाने की

तरह समाप्त हो गये। वयस्क रमणियों और विनोद पूर्ण वातावरण से घिरी रहने के कारण उसका हृदय हर्ष से सदैव व्याप्त रहता था। उसके चारों ओर सुख के क्षण घुमढ़ते रहते थे।

निश्चित समय पर मरूदेवी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। मंद मल्य के प्रथम झोके ने यह शुभ संदेश अयोध्या के प्रत्येक गृह में सुना दिया।

अयोध्या का गौरव पूर्ण मस्तक आज और भी ऊंचा हो उठा। पुण्य के प्रभाव से एक किरण की और वृद्धि हुई-नागरिकों के मन मयूर की तरह नाच उठे, सुख का समूह उमढ़ उठा।

अयोध्या के जनप्रिय शासक, नाभिराय का प्रांगण, मंगल गान से गूंजने लगा।

हर्ष उत्तेजित जनता सुख-मग्न होकर नृत्य करने लगी। क्षण मात्र में संपूर्ण अयोध्या में एक नवीन परिवर्तन दृष्टगत होने लगा। प्रत्येक गृह मंगलपूर्ण तोरणों से सुसज्जित हो गया। एकत्रित जनता नाभिराय के गृह की ओर प्रवेश करने लगी।

देवताओं से गृह शुभ शकुनों से परिपूर्ण हो गया। अचानक ही होने वाले वाद्य यंत्रों की ध्वनि ने उन्हें आश्चर्य चकित कर दिया।

देवता और मानव मिलकर पुत्र जन्म का उत्सव मनाने के लिये नाभिराय के द्वार आये। अप्सराओं का मनमोहक नृत्य होने लगा। इन्द्रानी बालक को गोद में लेकर उसके प्रभापूर्व मुख मंडल को देख अपने नेत्र तृप्त करने लगी।

बालचन्द्र की तरह बालक ऋषभ धीरे धीरे बढ़ने लगे। देवकुमारों के साथ खेलते हुये वे माता पिता के हृदय को हर्षित करते थे। देवकन्याएं उन्हें रत्न जड़ित पालने में झुलाती हुई हर्ष से फूली नहीं समाती थी। वे कभी बालू रेत पर गिरकर कभी घुटनों के बल चलते हुये पृथ्वी पर गिरकर और कभी चन्द्र बिंब लेने के लिये मचल हर जननी का मन मोहते थे।

बालक ऋषभ अत्यंत प्रतिभाशाली थे। बालक मन से ही उनमे चमत्कारिणी ज्ञान शक्ति थी। अपनी अपूर्व प्रतिमा के बल पर अल्पावस्था में ही उन्होंने अनेक विद्याओं और कलाओं को प्राप्त कर लिया।

विद्या और कलाप्रेमी होने के अतिरिक्त वे नम्रता, दयालुता आदि अनेक सद्गुणों से युक्त थे।

युवा होने पर उनका शरीर अन्यन्त दृढ़ और तेजपूर्ण दर्शित होने लगा। वे अतुल बलशाली थे। उनके संपूर्ण सुडौल अवयव देखने वाले के मन को आकर्षित करते थे।

युवक ऋषभ ने अब यौवन के क्षेत्र में अपना पैर बढ़ाया था। पूर्ण यौवन संपन्न होने पर भी काम उनके पवित्र हृदय में प्रवेश नहीं कर सका था। विषय विकार से वे जल में कमल की तरह निर्लिप्त थे। उनका संपूर्ण समय जनसेवा, ज्ञान विकास और परोपकार में ही व्यतीत होता था।

सेवा और परोपकार द्वारा उन्होंने अयोध्या की संपूर्ण जनता के हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया

था। वे अपने प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करते थे। सदाचार और पवित्रता उनके मंत्र थे और जनसेवा उनका कर्तव्य था।

कुमार ऋषभ को यौवन पूर्ण देखकर नाभिराय को उनके विवाह की चिंता हुई। यद्यपि वे जानते थे कि कुमार ऋषभ कामजयी है। किन्तु उनका योग्य विवाह संस्कार कर देना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। वे यह भलीभांति जानते थे कि गृहस्थ जीवन को भलीभांति संचालन करने के लिये विवाह अत्यंत आवश्यक है। जीवन संग्राम में विजय पाने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को एक योग्य साथी आवश्यक होता है। इसलिये वे कुमार ऋषभ के लिये सुयोग्य कन्यारत्न की खोज मे रहने लगे।

विदेह क्षेत्र के कुलपति कच्छ और सुकच्छ की सुंदरी कन्याओं को उन्होंने अपने युग के लिये चुना। दोनों कन्याएँ रूप में और गुण में परम श्रेष्ठ थीं। नाभिराय उन दोनों कन्याओं की कच्छ और सुकच्छ से याचना की। उन्होंने इसे अपना सौभाग्य समझा और प्रसन्न मन से स्वीकृति प्रदान की।

निश्चित समय पर बड़े समारोह के साथ कुमार ऋषभ का पाणिग्रहण हुआ। विवाहोत्सव में अनेक स्थान के कुलपति निमंत्रित हुये थे। नाभिराय ने सबका उचित सत्कार सम्मान किया। इस विवाह से भरत और विदेह क्षेत्र के कुलपतियों का स्नेहबंधन अत्यंत सुदृढ़ हो गया।

(3)

सुन्दरी पशस्वती और सुनन्दा के साथ युवक ऋषभदेव सुखमय जीवन व्यतीत करने लगे। दोनों पत्निएं उनके हृदय को निरंतर प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती थीं। उनका गृहस्थ जीवन आदर्श रूप था।

एक रात्रि को सुंदरी यशस्वती ने मनोमोहक स्वप्नों को देखा। स्वप्नों को देखकर उनका हृदय अत्यंत प्रसन्न हो उठा। सवेरे ही उन्होंने अपने पति से स्वप्नों के फल को पूछा। पतिदेव ने अत्यंत हर्ष के साथ कहा-प्रिये ! तूने जिन सुन्दर स्वप्नो को देखा है वे यह प्रदर्शित करते हैं कि तेरे गर्भ से पृथ्वी तल पर अपना अखंड प्रमुख स्थापित करने वाला वीर पुत्र होगा। स्वप्न का फल जानकर देवी यशस्वती का हृदय कमल खिल उठा।

निश्चित समय पर यशस्वती ने सुन्दर पुत्ररत्न को जन्म दिया बालक अत्यंत कांतिवान और तेजस्वी था। पौत्र जन्म से नाभिराय के हर्ष का ठिकाना न रहा। अयोध्या सुखद उत्सव से एक बार फिर सुसज्जित हो उठी। ज्योतिषियों ने वीर बालक का नाम भरत रक्खा।

कुछ दिन बाद देवी सुनन्दा ने भी पुत्र प्रसव किया जिसका नाम बाहुबली रखा गया।

पुत्र जन्म के कुछ समय पश्चात् देवी यशस्वती और सुनन्दा ने दो कन्याओं को जन्म दिया जिनका नाम **ब्राह्मी** और **सुन्दरी** निर्वारित किया गया।

नाभिराय का प्रांगण बालक बालिकाओं की मधुर कीड़ा और विनोद से भर गया। सभी बालक बालिकाएं परस्पर खेल कूदकर घर भर में आनंद रस की वर्षा करने लगी। नगर के सभी नर नारी उन सुन्दर बालकों को देखकर फूले नहीं समाते थे।

श्री ऋषभदेव भी बालकों को अल्पावस्था से ही योग्य शिक्षण देने लगे। बालिकाओं को भी वे पूर्ण शिक्षित और ज्ञानवान् बनाना चाहते थे इसलिये कुमारी ब्रह्मी और सुन्दरी को भी उन्होंने शिक्षा देना प्रारंभ किया। सभी बालक बालिकाएं बड़े मनोयोग के साथ शिक्षा ग्रहण करते थे इसलिये थोड़ी आयु में ही वे विद्यावान् बन गये।

भरत, बाहुबलि और वृषभसेन तीनों कुमारों को राजनीति, धनुर्विधा, संगीत, चित्रकला तथा साहित्य की शिक्षा दी गई। इनमें भरत ने नीतिशास्त्र, और नृत्य कला में विशेष अनुभव प्राप्त किया। वृषभसेन संगीत और बाहुबलि वैद्यक, धनुर्वेद तथा रत्न और अश्व परीक्षा में अधिक कुशल हुये।

(4)

कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर महामना नाभिराय ने जनता को फलादि द्वारा अपनी क्षुधा पूर्ति करने का उपाय बतलाया था। लेकिन कुछ समय बाद उन फलों में इसकी मात्रा कम होने लगी। जनता की भूख रस की कमी से बढ़ने लगी और वे सब मिलकर अपने प्रिय नेता नाभिराय के पास प्रार्थना करने को आये।

नाभिराय ने उन सबको धैर्य देते हुये कहा-मेरे प्रिय बंधुओ ! तुम्हारे दुःख को मैं भली भांति अनुभव कर रहा हूं, लेकिन मेरी समझ में इस समय कोई उपाय इस दुख से छुटकारा पाने का नहीं आ रहा है। कुमार ऋषभ नीतिकुशल और अत्यंत ज्ञानवान हैं, तुम सब उनके निकट जाओ, वे तुम्हारी कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

नाभिराय के आदेशानुसार वे सब प्रजाजन विनीत भाव से कुमार ऋषभ के निकट उपस्थित हुये और अपनी करूण कहानी सुनाने लगे। वे बोले-कुमार ! हम सब आपके पास बड़ी-बड़ी आशायें लेकर आये हुये हैं, हमें पूर्ण विश्वास है कि आपके द्वारा हमारे कष्ट अवश्य ही नष्ट होंगे। कुमार ! अभी तक वृक्षों में पर्याप्त मात्रा से फल फरते थे और उनमें इतना रस निकलता था कि उनको पीकर हम पूर्ण संतुष्ट रहते थे लेकिन अब कुछ समय से वृक्षों में फल कम होने लगे हें और उनमें रस इतना कम निकलता है कि उनको पीकर हमारी भूख ज्यों की त्यों बनी रहती है। निरन्तर बढ़ती हुई इस भूख की ज्वाला को हम और हमारे कुटुम्ब के लोग सहन करने में असमर्थ हैं इसलिये कृपया आप हमें ऐसा उपाय बतलाइये जिसे हमारा यह कष्ट नष्ट हो।

जनता की प्रार्थना सुनकर जनकल्याण के पथ पर चलने वाले ऋषभदेव ने कहा-प्रिय नागरिकों !

तुम्हें होने वाले कष्टों का मैं अनुभव कर रहा हूँ, उनसे मुक्त होने का उपाय भी मैं सोच चुका हूँ। देखो, अब भोगभूमि का समय समाप्त हो गया। अब आगे कर्मयुग का सुंदर प्रभात काल दिख रहा है, इस कर्मयुग से प्रत्येक मानव को अपनी शक्ति, बुद्धि और योग्यतानुसार कर्म करना होगा और अपने किये हुये श्रम के अनुसार ही वह भोग सामग्रिएं उपार्जन कर उनसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा। प्रत्येक मानव, अब से अपनी कार्य कुशलता और बुद्धि प्रयोग द्वारा ही श्रेष्ठ बनेगा और उसी से वह भोज्य सामग्री भी प्राप्त करेगा। अब तुम सबको अपनी आजीविका के लिये उचित श्रम करना आवश्यक होगा।

प्रतिभाशाली युवक ऋषभ की पवित्र वाणी सुन्दर नागरिकों ने कहा युवकरत्न! आप हमारे लिये जो भी व्यवस्था और कार्य बतलाऐंगे उसे हम सब करने को तैयार हैं। बतलाइए हमें क्या करना होगा।

ऋषभदेव ने कहा देखो ! अब से सबकी उचित व्यवस्था चलाने और समय समय पर होने वाले परिवर्तनों के अनुसार कार्य संचालित करने के लिये तुम्हें अपना एक शासक नियुक्त करना होगा जो कि राजा के नाम से संबोधित किया जायेगा। इसकी सभी उचित आज्ञाएं तुम्हें पालन करना होंगी। उसकी आज्ञा पालन करने वाले तुम सब प्रजा के नाम से पुकारे जाओगे। तुम सबको उचित रीति से चलाने के लिये कुछ नियम बनाएं जावेंगे वह राज्यविधान कहलायेगा। उन नियमों के अनुसार ही तुम सबको चलना होगा। आजीविका उपार्जन के लिये नीचे लिखे कार्य निश्चित होंगे। कार्यानुसार ही वर्ग रहेगा। प्रधान कार्य निम्न प्रकार होंगे-

असि-शस्त्र द्वारा कार्य करना। इस कार्य को करने वाले क्षत्रिय कहलाएंगे। वे शस्त्र धारण करेंगे और राजा की आज्ञानुसार उन्हें युद्ध द्वारा देश और प्रजा की रक्षा करनी होगी। मसि (लेखन कार्य) कृषि (भोजन के काम आने वाले धान्य आदि को उत्पन्न करने का कार्य। वाणिज्य (आवश्यकीय पदार्थों का लेन देन) इन कार्यों के करने वाले वैश्य कहलायेंगे।

शिल्प- (रहने के लिये मकान और पहनने के वस्त्र निर्माण करना) सेवा, कल्प- (नृत्य, गान आदि का प्रदर्शन) इन कार्यों के करने वाले शुद्र कहलायेंगे।

श्रेणी द्वारा विभाजित व्यक्तियों को बिना किसी भेदभाव के परस्पर अपना कार्य करना होगा और अपने कार्यों द्वारा परस्पर सहयोग देना होगा। मैं तुम्हें वर्ण व्यवस्था बतला चुका। अब भोजन प्राप्ति के उपाय बतलाऊंगा। देखो इस पृथ्वी में जो एक तरह के अंकुर तुम देख रहे हो, उनकी तुम्हें रक्षा करनी होगी और उन पौधों को तोड़कर उनसे अन्न समूह को निकालना होगा। उस अन्न-समूह में से कुछ को भोजन के कार्य में लाना होगा और कुछ को रक्षित रखकर पृथ्वी में बोना होगा जिससे फिर अधिक संख्या में भोजन पदार्थ उत्पन्न होगा। इसमें से कुछ पौधे ऐसे होंगे जिनसे वस्त्र निर्माण होगा, कुछ ऐसे

होंगे जिन्हे कोलू में पेलने में मिष्ट रस निकलेगा। इसी से तुम्हें क्षुधा तृप्ति भी करनी होगी।

इस तरह व्यवस्था बतलाते हुये कुमार ऋषभ ने अन्न के पौधों को विस्तृत व्याख्या की और अन्नों को उत्पन्न करने के साधन बतलाए। फिर उन्होंने नागरिकों की बुद्धि , कार्यकुशलता और योग्यतानुसार उन्हें क्षत्रिय वैश्य और शुद्र वर्णों में विभाजित किया।

समस्त जनता ने कुमार ऋषभ की बतलाई हुई व्यवस्था को मानना स्वीकार किया और एक दिन संपूर्ण जनता ने एकत्रित होकर उन्हें अपना शासक नियुक्त किया, उनका अभिषेक किया और उन्हें अयोध्या के राजा का पद प्रदान किया।

(5)

राजा ऋषभ रत्न किरणों से चमत्कृत राजसिंहासन पर बैठे थे। मुकुट के प्रकाशमान हीरों के आलोक से सभामंडप दीप्यमान होना था सभामंडल विशेष रूप से सजाया गया था। आज की सभा में अनेक देशों के शासक पधारे थे। देवता भी आमंत्रित थे। अयोध्या के नागरिक आज किसी आन्तरिक प्रसन्नता मग्न थे। समुद्र की उत्तुंग तरंगों के समान चंचल नेत्र वाली सुराङ्गनाएं मधुर हास्य सहित नृत्य कर रही थीं। उनकी हृदयहारिणी नाट्यकला पर जनसमूह मुग्ध हो रहा था।

यौवन के तीव्र बेग से उन्मत्त अनेक देवङ्गनाए अपने अपने अद्भुत नृत्यकला का प्रदर्शन कर चुकी थी।अब नीलांजना नामक सुन्दर सुरवाला नृत्य के लिये उपस्थित हुई थी उसने कोयल विनिदित मधुर स्वर से मनोमुग्ध करने वाले गीतों को गाया। हृदय तृप्त करने वाले नृत्यों का दिग्दर्शन किया। दर्शकगणों को आश्चर्य में डालने वाली वह सुरबाला कभी आकाश और कभी पृथ्वी पर पवन के समान चंचल गति से नृत्य करती थी। मानव सेवा उसकी मनोरम नाट्य कला पर आकर्षित थे। इसी क्षण अचानक एक घटना हुई। नृत्य करती हुई उस सुरबाला का सुन्दर और दर्शनीय शरीर अचानक ही विलय हो गया। उसकी मधुर ध्वनि पवन के साथ दशों दिशाओं में विखर गई। उसकी आयु समाप्त हो गई थी।

उसी समय उसके समान दूसरी सुरबाला नृत्य करने लगी। दूसरी सुरबाला ठीक नीलांजना समान थी। वह उसी तरह नृत्य भी करने लगी थी। साधारण दर्शकों ने इस रहस्य को नहीं समझा। परन्तु दिव्यज्ञान निधान ऋषभदेव जी ने इस भेद को जाना, वे सब कुछ समझ गये। उनके हृदय पर इस परिवर्तन का विलक्षण प्रभाव पड़ा। वे एक क्षण को सोचने लगे-ओह ! मानव शरीर कितना नश्वर है ? वह एक क्षण में ही किसी तरह नष्ट हो जाता है। यह देववाला अभी मेरे नेत्रों के सामने किस तरह नृत्य कर रही थी, वह एक पल में भी किस तरह विलय हो गई। मानव शरीर की इस नश्वरता पर क्या कहना चाहिये ? आह ! इसी नाशवान शरीर के मोह में पड़ा मानव उसके रक्षण के लिये कितनी चिंताएं करता है और इस संसार में कितना व्यस्त रहता है। इसके स्नेह में अंधा होकर अपने कल्याण पथ को भूल जाता है। मोह का

साम्राज्य कितना लुभावना है ? इसमें मान अपनी अनंत आत्मशक्ति और दिव्य प्रभाव को भूल जाता है। मेरा यह शरीर भी तो एक दिन नष्ट होगा। तब क्या मुझे इस मोह जाल में पड़ा रहना चाहिये। नहीं, मैं इस शरीर के मोह-बंधन को तोडूंगा, इस राज्यवैभव के जाल को नष्ट करूंगा और आत्म-ज्ञान के दिव्य नंदन निकुंज में विचरण करूंगा।

मैं पूर्ण आत्मज्ञान प्राप्त करूंगा और आत्म पथ से विचलित इस संसार को आत्मसंदेश सुनाऊंगा।

इन विचारों ने उनके हृदय में हलचल पैदा कर दी। मोह और स्नेह की दीवालें चूर चूर हो गई और एक क्षण में उनके विचारों में काया-कल्प हो गया।

नृत्य समाप्त हुआ ! देव और सभासदों ने हर्षित हृदय से अनेक स्थानो को प्रस्थान किया-किंतु आज राजा ऋषभ का हृदय किन्हीं अन्य भावनाओं से भर गया था। आज उन्हें अपने चारों और एक विचित्र परिवर्तन नजर आ रहा था। इसी समय लौकान्तिक नामक देवों ने आकर उन्हें प्रणाम किया। लौकांतिकदेव आध्यात्मिक रहस्य को जानते हैं। उन्हें वैराग्य प्रिय होता है और वे तीर्थंकर जैसे महान पुरुषों के वैराग्य की सराहना करने को आया करते हैं। उन्होंने विरागी ऋषभ के पवित्र विचारों की सराहना की। वे बोले-भगवान् आज हम आपके हृदय में जो परिवर्तन देख रहे हैं वह संसार के लिये कल्याणकारी होगा। हम विश्वास करते हैं कि आपके द्वारा शीघ्र ही संसार में एक महान क्रांति होगी। आप संसार के वृद्ध पुरुषों के लिये आत्मिक स्वतंत्रता का द्वार खोलेंगे। आप उस विश्व का दर्शन करायेंगे जिसमें सत् चित् आनंद की लहरें उमड़ रही हैं आपके पवित्र विचारों का हम स्वागत करते हैं। आपके अतिरिक्त ऐसा कौन महापुरुष है जो इस तरह की कल्याण भावनाओं को जागृत कर सके ! हमारी कामना है कि आपका यह त्याग सफल हो, आप संसार का मार्ग प्रदर्शन करें।

देवता अपना कर्त्तव्य पालन कर चले गये। वैराग्य की चोटी पर चढ़े हुये ऋषभदेव ने जब नीचे उतरना उचित नहीं समझा, वे एक क्षण ही विलंब अब अपने लिये अनुचित समझते थे, उन्होंने युवराज भरत को अयोध्या राज्य प्रदान किया। दूसरे राजकुमारों को भी उनके योग्य व्यवस्था उन्होंने की। फिर माता, पिता और पत्नी को संबोधित किया। उनके हृदय के मोह को जाल को तोड़ दिया। वे तपश्चरण के लिये जंगल को चल दिये और वे अष्ट कर्मों को नष्टकर मुक्ति को प्राप्त हुयें।

⌘⌘⌘

मेघेश्वर जयकुमार

एक पत्निव्रत के आदर्श

(1)

सोमप्रभ न्यायप्रिय राजा थे। हस्तिनापुर की प्रजा के वे प्राण थे। प्रजा के प्रति उनका व्यवहार अत्यंत सरल और उदार था। रानी लक्ष्मीमती भी उन्हीं के अनुरूप थी। सुन्दरी होने के साथ ही वे सुशील नम्र और कलाप्रिय थीं। दोनों का जीवन शांति और सुखमय था।

वंसत में आम्रमंजरी मधुरस से भरकर सरस हो उठती है, ललिकाएं लहर उठती है और पुष्प-समूह हर्ष से खिल उठते हैं। रानी लक्ष्मीमति का हृदय भी बालपुष्पों को धारण कर खिल उठा था।

ठीक समय पर उन्होंने बालसूर्य का प्रसव किया। हस्तिनापुर की जनता में हर्ष उमड़ उठा महाराजा ने उदारता का द्वार खोल दिया, याचकों और विद्वानों के लिये इच्छित दान और सम्मान मिलने लगा। बालक अत्यंत कांतिवान था। अपनी प्रभा से वह काम को भी जय करता था। उसका नाम जयकुमार रक्खा गया।

जयकुमार बालकपन से ही स्वतंत्रता प्रिय, स्वाभिमानी और वीर थे। उच्च कोटि शस्त्र और नीति शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने अपने गुणों को दूना चमका दिया था। लक्ष्यभेद में वे अद्वितीय थे, उसकी समानता करने वाला उस समय भारत में कोई दूसरा धनुर्धर नहीं था। साहस और धैर्य में वे सबसे आगे थे। इन्हीं गुणों के कारण उनकी कीर्ति अनेक नगरों में फैल गई थी। उनके साहस और पराक्रम को देखकर सोमप्रभ जी ने उन्हें युवराज पद प्रदान किया था और वे इसके सर्वथा योग्य थे।

संध्या का समय, नीलाकाश चित्रित हो रहा था, आकाश की पृष्ठ भूमि पर प्रकृति बड़े ही सुन्दर चित्रों का निर्माण कर रही थी लेकिन बहुत प्रयत्न करने पर भी वे चित्र स्थिर नहीं रह पाते थे। मालूम पड़ता था प्रकृति कोई अत्यंत सुंदर चित्र निर्माण करने का प्रयत्न कर रही थी। किन्तु इच्छानुसार सुन्दर चित्र निर्माण कर सकने के कारण वह उन्हें बिगाड़कर फिर से नया चित्र चित्रित करती थी। कितना समय बीत गया था, प्रकृति को इस चित्र निर्माण में।

आसमान को छूने वाले महल के शिखर पर बैठे हुये सोमप्रभ जी प्रकृति की इस चित्रकला निर्माण का रस ले रहे थे। उनकी दृष्टि जिस ओर जाती आकर्षित हो जाती थी। न मालूम कितने समय तक अतृप्ति रूप से वे इन दृष्यों को देखते रहे। अचानक ही उनकी नजर महल के नीचे वाले शुभ्र सरोवर की ओर गई। सरोवर के स्वच्छ जल में सायकालीन लालिमा विचित्र ही दृश्य कर दिया था- सारा सरोवर प्रभा से स्वर्णमय बन गया था। एक ओर यह दृश्य उन्होंने देखा दूसरी ओर उन्होंने कमलों के संकुचित

कलेवर पर दृष्टि डाली। अरे ! इस सुन्दर समय में उनका मुख इतना म्लान क्यों हो रहा था। उनकी वह प्रातः कालीन मधुर मुस्कान विषाद में परिणत हो रही थी। वह हर्ष, वह लालिमा, वह सुकुमारता उनकी किसी ने हरण कर ली थी।

उनके नेत्रों के सामने प्रभात का वह सुन्दर दृश्य नृत्य करने लगा। जब मलय वह रही थी और मुस्कुराते हुये कमल पुष्पों को मीठी मीठी थपकी दे रही थी। सूर्य उसके सौन्दर्य पर अपना सर्वस्य न्यौछावर कर रहा था। उसकी प्रकाशमयी किरणें प्रत्येक अंग का आलिंगन कर मनो-मुग्ध हो रही थीं, मधुपगण मधुरस पीकर मदोन्मत्त हो रहा था, गुन गुन नाद से अपने प्रेमी का गुणगान कर रहा था, और अब यह संध्या का समय कमलों को उनकी मृत्यु का संदेह सुना रहा था।

वे अपना सिर झुकाए हुए सब सुन रहे थे, किरणें उनसे दूर भाग रही थीं, सूर्य का आलिंगन शिथिल हो रहा था। इस विपत्ति के समय भौरे भी उसका साथ छोड़कर न मालूम कहां चले गये थे। कुछ बेचारे जिन्होंने उनके मधुर मधुर रस का पान किया था, दृष्टि से आलिंगन किया था वही उसके साथी इस विपत्ति के समय में उन्हें अकेला नहीं छोड़ना चाहते थे। कमल अब अपने इस संकुचित और मलिन मुख को संसार के सामने नहीं दिखलाना चाहते थे। वे भी धीरे-धीरे अपनी आंखे मूंद लेना चाहते थे। ओर ! अब तो उनका मुंह बिलकुल बंद हो गया ? लेकिन वह पागल भ्रमर आके ! वह भी क्या उसी में बंद हो गया ? हाँ हो गया। सोमप्रभ जी ने देखा वह मधु-लोलुपी भ्रमर कमल के साथ ही साथ उसमें बंद हो गया। उनका हृदय तिलमिला उठा क्या रात्रि भर कमल कोप्य मेंबंद रहकर वह अपने प्राणों को सुरक्षित रख सकेगा ? उन्हें उसकी आसक्तिपर हृदय में बड़ी ग्लानि हुई। ओह ! भ्रमर तुमने क्या कभी यह सोचा है कि प्रभात होने तक कमल अनुरक्ति का अंतिम परिणाम क्या होगा ? और मूर्ख मानव ! तू भी तो इस मधुर वासना और कमनीय कामनाओं के कलख में प्रभात से लेकर जीवन के अंतिम सांयकाल तक अपने को व्यस्त रखकर काल रात्रि के हाथों सौंप देता है। तूने कभी भी यह सोचा है कि इसका अंतिम परिणाम क्या होगा ? जीवन के इस सौन्दर्यपूर्ण पटका दृश्य परिवर्तन कितना भयंकर होगा ? ओह ! मुझे भी तो इस परिवर्तनों में से गुजरना होगा।

सोमप्रभ की आत्मा पर संध्या के इस दृश्य ने विचारों की विचित्र तरंगे लहरायीं। उनका हृदय एकाएक संसार में विरक्त होने लगा। धीरे-धीरे आत्मज्ञान का सुंदर प्रभात उदित हुआ, उसमें उन्होंने अनंत शक्ति से आलोकित प्रभा को देखा। वैभव से उन्हें विरक्ति हो उठी, इन्द्रिय सुख की इच्छाएं जलने लगीं और वे वैराग्य की उज्जवल कीर्ति का दर्शन करने लगे। निर्मल आकाश में दिशायें जिस तरह शांत हो जाती है उसी तरह विषय विकार ओर आशा तिमिर से शून्य उनके हृदय में शुद्धात्मा का दिव्य प्रकाश प्रतिभासित होने लगा। वे उठे और अपने सिर से राज्य का भार उतारने का प्रयत्न करने लगे।

योग्य युवक को कन्या समर्पित कर पिता चिंता से मुक्त हो जाता है और योग्य पात्र को दान देकर

निर्मोही पुरुष आत्म तृप्ति का अनुभव करता है। गुणवान और योग्य वीरपुत्र को राज्य दे सोमप्रभ ने संसार से मुक्त होने का निश्चय कर लिया। प्रजाजन और परिजनों के समय सभा में युवक जयकुमार का उन्होंने राज्य अभिषेक किया और प्रजा जन को संतुष्ट रखने की और उनके रक्षण की शिक्षा दी। राज्यभार सौंपकर वे तश्चरण के लिये चले गये।

(2)

सम्राट भारत को चक्र प्राप्त होने पर वे अपनी विश्वविजयिनी सेना संगठित कर भारत विजय के लिये चल दिये। अपने पराक्रम से उन्होंने मार्ग के सभी नरेशों पर विजय प्राप्त की। शक्ति का अभिमान रखने वाले बड़े बड़े राजा उनकी शरण में आये। विजय का डंका बजाते हुये उन्होंने गंगा नदी को पार कर महासागर में प्रवेश किया। वहां के सभी प्रतापी राजाओं को जीतकर वे विजयार्ध पर्वत के उत्तर भारत निवासी राजाओं पर दिग्विजय करने के लिये चल दिए।

सम्राट् भरत ने कुरुदेशेश्वर महाराजा जयकुमार के अद्वितीय पराक्रम को सुना था, उन्हें अपनी सेना में सर्वश्रेष्ठ सम्मान प्रदान किया और अपनी विजय यात्रा में साथ लिया। विजयार्ध पर्वत में तट वाले पश्चिमी खंड को जीतकर उन्होंने अब मध्यखंड जीतने के लिये प्रस्थान किया। और उस खंड के किलों पर अपना अधिकार जमा लिया। इसी समय म्लेच्छों के प्रचंड सैन्यदल से सुसंगठित **चिलात** और **आवर्त** नामक बलवान म्लेच्छ राजाओं ने अपने स्वत्व रक्षण के लिये चक्रवर्ती से युद्ध करने का निश्चय किया। असंख्य धनुर्धारी म्लेच्छ योद्धाओं से रणक्षेत्र व्याप्त हो गया। पूर्ण संगठित शरीर वाले सैनिकों के साथ दोनों वीरों ने सम्राट भरत की सेना पर भीषणता से प्रहार किया। भयानक संग्राम होने लगा। चक्रवर्ती की विशाल सेना सुगठित थी। नवीन शस्त्रों से वह सुसज्जित थी। म्लेच्छ राजा उन शास्त्रों के प्रहारों को सहन नहीं कर सके और शीघ्र ही पीछे हटने लगे।

चक्रवर्ती सेना से हारे हुये म्लेच्छ राजाओ ने विजयकामना के लिये अपने कुलदेवताओं की उपासना की। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर नागमुख नामक दैत्य प्रगट हुये। उन्होंने अपने दिव्य शास्त्रों से चक्रवर्ती की सेना पर भयंकर आघात करके उन्हें विफल कर दिया। बहादुर सैनिकों को पीछे हठते देखकर वीर जयकुमार का तेज उमड़ उठा और सिंहनाद करते हुये वे उन देत्यों से युद्ध करने को आगे बढ़े। वीर जयकुमार और नागमुखों से संसार को चकित कर देने वाला संग्राम हुआ। बेकार न जाने वाले तेज बाणों का नागमुखों ने जय पर प्रहार किया लेकिन जिस तरह आंधी का बेग हिमालय को हिलाने मे असमर्थ होता है उसी तरह उनके सभी शस्त्र बेकार हुये। अब वीर जयकुमार अपनी निशाने बाजी का परिचय देना प्रारंभ किया। अपने तीक्ष्ण बाणों को चलाकर उन्होंने नागमुखों को व्याकुल कर दिया। न फटने वाले बाणों की भयंकर वर्षा करता हुआ दिव्य कवच धारण किए हुए वह जयकुमार सचमुच ही बरसात के मेघ मंडल की तरह मालूम पड़ता था। कान तक खींचकर धनुष पर संधान कर छोड़े गये।

तीक्ष्ण बाण बिजली की तरह चमक कर युद्ध के मैदान में छिपे हुये नागमुखों के शरीरों को प्रकाशित करने लगे। नागमुख उनके तीक्ष्ण बाणों के प्रहार को न सह सके और पराजित होकर भागने लगे। विजय श्री जयकुमार के हाथ लगी। विजय से सजे हुये वीर जयकुमार चमकते हुये अंगों का कीर्तिकामिनी ने प्रसन्न होकर स्पर्श किया। देवबालाएं यशोगान करने लगी और आकाश से विकसित पुष्पों का वर्षा होने लगी।

जय लक्ष्मी से सुसज्जित, विजय का उच्च नाद कराते हुये जयकुमार का चक्रवर्ती ने प्रसन्न हृदय से अभिवादन किया, उसके प्रबल पराक्रम की प्रशंसा की और इस अभूतपूर्व विजय के उपलक्ष्य में प्रसन्न होकर उन्हें **प्रधान वीर** का पद प्रदान किया। वे **मेघेश्वर** के सम्मान पूर्ण पद से सुशोभित किये गये।

नागमुखों के हारे जाने पर सभी म्लेच्छ राजाओं ने चक्रवर्ती शासन स्वीकार किया, विजय समाप्त कर वे अपनी राजधानी को लौट आए।

(3)

सुलोचना का सौन्दर्य अनुपम था। प्रकृति उसे सजाने में अपनी अद्‌भुत कला का परिचय दिया था। अधखिली कलियों की मुस्कान कोकिला का मधुर स्वर और बसंत की विकसित शोभा उसे मिली थी। विद्या और कलाओं का वरदान उसे प्राप्त था। नम्रता और विनय ने उसका आश्रय लिया था। बनारस के राजा अकंपन की वह विदुषी कन्या थी। बनारस की पूज्यता के लिये वह एक दिव्य ज्योति थी। यौवन उसके शरीर में प्रतिदिन एक नई चमक और सुन्दरता करने लगा था। उसे देखकर अकंपन के हृदय में उसके योग्य संबंध की चिन्ता बढ़ने लगी। प्रत्येक पिता अपनी कन्या के मधुर जीवन की कल्पना करता है। वह उसके लिये कुबेर जैसा वैभवशाली और इन्द्र जैसा प्रतापी वर चाहता है। इसी इच्छा को लेकर एक दिन उन्होंने अपने सुयोग्य मंत्रियों से परामर्श किया। मंत्रियों ने अनेक राजकुमारों का परिचय दिया जो रूप, गुण और विद्या कला में निपुण थे किन्तु अकंपन जी के हृदय पर किसी की छाप नहीं पड़ी। अंत में उन्होंने अपने प्रधानमंत्री से सलाह ली। प्रधानमंत्री ने कहा-महाराज ! सुलोचना साधारण कन्या नहीं है, वह बहुत ही विचारशील और लज्जानिपुण है, उसके लिये स्वयंवर की योजना ठीक होगी। सभी नगरों के राजकुमारों को स्वयंवर में निमंत्रित किया जावे और कन्या जिसको स्वीकार कर ले उसी के साथ उसका संबंध किया जावे। वह अपने योग्य वर को स्वयं चुन सकती है, इसलिये उसे स्वतंत्रता पूर्वक वर चुनने का अधिकार दिया जाए। प्रधानमंत्री की यह सलाह महाराज को ठीक मालूम हुई। उन्होंने स्वयंवर रचने की आज्ञा दी। राजाओं को निमंत्रण भेजे गये, स्वयंवर मण्डल सजाया गया। राजकुमारों का आना प्रारंभ हुआ, उनके ठहरने तथा भोजन आदि का उचित प्रबंध किया गया।

राजकुमारों के मुकुट और अलंकारों की चमक से स्वयंवर मंडप चमकने लगा। कमनीय कुसुमों के गुच्छों से सजी हुई नवीन लतिका वायु के मंद झोकों से अपनी सुरभि विखेरती हुई मानवों का मन मुग्ध

करती है। हरित अंकुरों से सुसज्जित वर्षा ऋतु नेत्रों को तृप्त करती है। मेदिवी शशि पर पड़ी हुई पूर्णेन्दु की धवल रश्मिएं हृदय को शीतल करती हैं। और कुशल कलाकार के हाथों से गून्थी हुई रत्नमाला हृदय को सुशोभित करती है। दिव्य, रत्न भूषित अलंकारों से वेष्टित कर पल्लव में परिजात कुसमों की माला लिये हुये स्वयंवर मंडल में हंस गति से जाती हुई विश्व-सौन्दर्य को लज्जित करती सुलोचना को राजकुमार ने देखा। उसे देखकर उनके नेत्र उसकी ओर खिंच गए। सूर्य की सुन्दरी किरणों पर कुंज पुष्पों का मधुर मुख जिस तरह आकर्षित हो जाता है, इन्दु की नवीन प्रभा पर चातक जैसे चित्रित हो जाता है उसी तरह स्वयंवर मंडल में क्रीड़ा करती सुलोचना हंसिनी पर राजकुमारों का मन आकर्षित हो गया। प्रत्येक राजकुमार के हृदय में आशा और निराशा का द्वन्द युद्ध हो रहा था। वे उसके कमनीय करों द्वारा अपने हृदय पर पड़ी हुई वरमाला देखने को उत्सुक हो रहे थे।

कल्पलसिका की तरह सुकोमल सुलोचना, रूप सौन्दर्य के मद से मदोन्मत्त राजकुमार वृक्षों को लांघती हुई जयकुमार कल्पतरू के सामने जाकर रूक गई। उसका हृदय धड़कने लगा, पैर आगे नही बढ़ सके, उसने अपने दोनों करपल्लवों को ऊंचे उठाया, और विजय सूतक तोरण बांध कर वरमाला जयकुमार के गले में डाल दी। अपना हृदय समर्पण कर वह कुछ समय तक उनके सामने हर्ष और लज्जा के आवेश में चित्रलिखित सी खड़ी रहीं। उसे अपने हृदय से उन्हें अपना पति स्वीकार किया। विजयी जयकुमार का हृदय विजयोल्लास से फूल उठा, उसने अपने को बड़ा भाग्यशाली समझा।

(4)

स्वयंवर मंडप में सम्राट भरत के ज्येष्ठ पुत्र युवराज अर्ककीर्ति भी बैठे थे उन्हें विश्वास था कि सुन्दरी सुलोचना मुझे ही स्वीकार करेगी। मेरे अतिरिक्त ऐसा व्यक्ति कौन है। जिसके गले मे वरमाला पड़ सकेगी, ऐसा वे सोच रहे थे, किन्तु अपनी आशा के प्रतिकूल जयकुमार के गले में वरमाला पड़ती देख उनका हृदय लज्जा ओर क्रोध से जल उठा, अपमान की ज्वाला उनके सारे शरीर में धधक उठी। कुचले गए सर्प के फण की तरह उनके नेत्र रक्तवर्ण हो गये। नीति का अंकुश न मानने वाले मदोन्मत्त हाथी की तरह वे उच्छृंखल हो उठे। विवेक उन्हें सान्त्वना न दे सका और वे जयकुमार जैसे वीर सिंह से भिड़ने को तैयार हो गये। उन्होंने अपने सेनापति को सैन्य सजाने का हुकुम दिया। अपमानित नरेश अर्ककीर्ति के साथी बने और सभी ने जयकुमार पर एकत्रित होकर हल्ला करने का निश्चय किया। कुछ नीतिज्ञ नरेशों ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया, मंत्रियों ने भी समझाया, किन्तु इन सब बातों का उसके धधकते क्रोधग्नि कुंड में आहुति जैसा प्रभाव पड़ा, वह अपने आपको भूल गया और जयकुमार पर विंद्य और कुत्सित वचनों की कीचड़ फेंकने लगा।

जयकुमार वीर था, नीतिज्ञ था, वह इस अन्याय युद्ध को आगे बढ़ाना नहीं चाहता था। चक्रवर्ती पुत्र के लिये उसके हृदय में स्नेह था, वह फूलने वाली स्नेह बल्लरी को तोड़ना नहीं चाहता था, किंतु अपना

अपमान भी उसे असह्य था। उसने स्नेह भरे शब्दो से अर्क कीर्ति को समझाने का प्रयत्न किया। वह बोले युवराज! मेरी इस विजय से तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये था। लेकिन मैं देखता हूं कि तुम इससे क्षुब्ध हो उठे हो-चक्रवर्ती पुत्र के लिये यह शोभाप्रद नहीं । मैं जानता हूं तुम वीर हो, लेकिन वीरता का इस प्रकार दुरुपयोग करना, होने वाले भावी भरत-सम्राट के लिये अनुचित है। वीरता अन्याय प्रतिकार के लिये होना चाहिये, दुष्ट दलन के लिये ही उसका प्रयोग उचित होगा। इसके विरूद्ध एक अन्याय युद्ध में उसका उपयोग होता देखकर मेरा हृदय दुखित हो रहा है। वीर कुमार! तुम्हें शांत होना चाहिये और मेरी इस विजय में सम्मिलित होकर अपने स्नेह का परिचय देना चाहिये।

अर्ककीर्ति मानो इन शब्दों को सुनने के लिये तैयार न था, बोला-जयकुमार!गले में पड़े हुये फूलों को देखकर तुम विजय से पागल हो गये हो, इसलिये ही तुम्हें मेरा अपमान नहीं खलता। राजाओं की विराट् सभा में चक्रवर्ती पुत्र के गारैव की अवहेलना करना तुम्हारे जैसे पागलों का ही काम है, मैं यह तुम्हारा पागलपन अभी ठीक करूंगा । तुम्हें अभी मालूम हो जायेगा कि वीर पुरुष अपने अन्याय का बदला किस तरह लेते हैं। यदि तुम्हें अपने प्राण प्रिय हैं, तो अब भी समय है तुम इस कुमारी को सादर मेरे चरणों में अर्पण कर दो। तुम जानते हो कि श्रेष्ठ वस्तु महान् पुरुषों को ही शोभा देती है, क्षुद्र व्यक्तियों के लिये नहीं। इसलिये मैं तुम्हें एक बार और समय देता हूँ तुम खूब सोच लो। यदि तुम्हें अपना जीवन और भारत के भावी सम्राट् का सम्मान प्रिय है तो सुलोचना देकर मेरे प्रेम-भाजन बनो।

जयकुमार का हृदय इन शब्दों से उत्तेजित नहीं हुआ। उसने एक बार और अपनी सहृदयता का प्रयोग करना चाहा। वह बोला कन्या अपना हृदय एक बार ही समर्पण करती है और जिसे समर्पण करती है वही उसके लिये महान् होता है। महानता और तुच्छता का नाप उसका परीक्षण है। अपने मुंह से महान् बनना शोभाप्रद नहीं। कुमारी ने मुझे वरण किया है, वह हृदय से अब मेरी पत्नी बन चुकी है किसी की पत्नी के प्रति दुर्भावनाएं लाना नीचता के अतिरिक्त कुछ नहीं है। चक्रवर्ती पुत्र के मुंह से इस तरह की अनर्गल बातें सुनने की मुझे आशा नहीं थी। तुम्हें जानना चाहिये कि वीर पुरुष महिलाओं की सम्मान रक्षा अपने प्राण देकर करते हैं। यदि तुम नहीं मानते, तुम्हारी दुर्बुद्धि यदि तुम्हें अन्याय के प्रति प्रोत्साहित करती है तो मुझे तुम्हारे अविवेक को दंड देने के लिये युद्ध क्षेत्र में उतरना होगा। मैं तुमसे डरता नहीं हूं, जयकुमार अन्याय और युद्ध से कभी नहीं डरता। यदि तुम्हारी इच्छा युद्ध का तमाशा देखने की ही है तो मैं वह भी तुम्हें दिखला दूंगा।

कुपित अर्ककीर्ति पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह बोला युद्ध तो तुम्हारे शिर पर खड़ा हुआ है, तुम उसे बातों से टालने का प्रयत्न क्यों करना चाहते हो ? यदि तुम्हें मृत्यु का भय है तो शीघ्र ही मुझे सुलोचना समर्पित कर दो, नहीं तो तुम्हें मृत्यु की गोद में सुलाकर मैं इसका उपयोग करूंगा ।

शांत ज्वाला को प्रलय ने उभाड़ा। जयकुमार के हृदय का वीरभाव अब सोता नहीं रह सका। वह

बहादुर, अर्ककीर्ति और उसके उभाड़े सैकड़ों राजकुमारों के सामने कुपित केशरी, सिंह की तरह बढ़ चला। अकंपन की सेना ने उसका साथ दिया। अर्ककीर्ति का विशाल सैन्य और राजाओं के समूह ने एकत्रित होकर उसे घेर लिया। तीक्ष्ण बाणों की वर्षा होने लगी और मानव जीवन के साथ मृत्यु का खेल होने लगा। अर्ककीर्ति की संगठित विशाल सेना के सामने जयकुमार का सैन्यबल पीछे हटने लगा। जय को यह सहन नहीं हुआ। वीरता का धारा बहाते हुये उसने अपने सैनिकों को तीव्र आक्रमण के लिये उत्तेजित किया और शत्रु के दल को चीरता हुआ वह अर्ककीर्ति के निकट पहुंचा। उसने अर्ककीर्ति को संबोधित करते हुये कहा- इन बेचारे गरीब सैनिकों का बंध करने से क्यालाभ ? परीक्षण तो हमारे और तुम्हारे बल का है, आओ हम और तुम युद्ध करके शक्ति का निर्णय करें ।

जयकुमार के शब्द पूर्ण होने के साथ ही उस पर एक तीक्ष्ण बाण का बार हुआ लेकिन उस तीर कोअपने पास आने के पहिले ही उसने काट डाला तब तो अर्ककीर्ति ने उस पर और भी अनेक अचूक शस्त्रों का प्रयोग किया परंतु युद्ध-कुशल जय ने उन सारी शस्त्रों को बेकार कर दिया और बड़ी कुशलता से शस्त्र प्रहार करके उसे नीचे गिराकर दृढ़ बंधन में कंस लिया।

अर्ककीर्ति के पराजित होते ही सभी राजकुमारों ने हथियार डाल दिये। विजय ने जयकुमार का वरण किया किंतु अर्ककीर्ति के प्रति उसके हृदय में कोई प्रतिहिंसा अथवा विरोध नहीं था। वह तो अन्याय का बदला लेना चाहता था इसलिये उन्हें उसी समय बंधन मुक्त कर दिया। अर्ककीर्ति का मुंह इस अपमान से ऊंचे नहीं उठ सका।

वीर जयकुमार की इस विजय से अकंपन बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने विजय और विवाह के उपलक्ष्य में एक विशाल उत्सव की योजना की। युद्धस्थल विवाहोत्सव के रूप में बदल गया। अर्ककीर्ति और अन्य राजाओं ने इस महोत्सव में सम्मिलित होकर पिछले विरोध को प्रेम में बदल दिया। नृत्य, गान और आनंद का मधुर मिलन हुआ और जयकुमार के गले में डाली वरमाला का फल सुलोचना ने विवाह के रूप में पाया।

(5)

सुलोचना जैसी सुन्दरी और सुशीला पत्नी पाकर जयकुमार का जीवन स्वर्गीय बन गया था। सुलोचना के लिये उसके हृदय में निःछल स्नेह था। वह नारी जाति का सम्मान करना जानता था। उसका स्नेह उस अक्षय झरने की तरह था जो कभी सूखता नहीं है। दोनों ही एक दूसरे पर हृदय न्योछावर करते थे और मानवीय कर्त्तव्यों का पालन करते थे। गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यों को वह भूल जाना नहीं चाहते थे। जनता की सेवा, दया सहानुभूति और उपकार की भावनाओं से उनका मन भरा हुआ था, धर्म पर उनकी अटूट श्रद्धा थी। देव और गुरुभक्ति को वे जानते थे। उनका जीवन एक आदर्श जीवन था।

जयकुमार को जो कुछ भी वैभव प्राप्त था उससे वह सुखी थे। वे अपने जीवन को संयमी और धार्मिक बनाना चाहते थे। मन कहीं संयम की सीमा उल्लंघन न कर जाए, इसके लिये उन्होंने आजीवन एक पत्नि व्रत लिया था। वीर, साहसी और सुन्दर होने के कारण वह अनेक सुन्दरियो के प्रिय थे। लेकिन सुन्दरता के इस आलोक में उनके नेत्र सुलोचना की दिव्य आभा पर ही अनुरंजित रहते थे। वासनाओं के वीहड़ जंगल में उसकी कर्मनीय कांति को नही भूलते थे।

देवराज इन्द्र की सभा में एक विवाद उपस्थित था, वे कहते थे पूर्ण ब्रह्मचारी की तरह एक-पत्नि व्रत का भी महत्व कम नहीं है। गृहस्थ जीवन में सुन्दरी महिलाओं के संपर्क में रहते हुये, प्रभुता और वैभव होने पर भी अपने आप पर काबू रखना भी महान् ब्रह्मचर्य है। अखंड ब्रह्मचारी अपनी वासनाएं विजित करने के लिये कहीं समर्थ है। जब कि एक बार अपना ब्रह्मचर्य नष्ट कर देने वाले व्यक्ति को अपने लिये अधिक समर्थ बनाने का प्रयत्न करना पड़ता है। ऐसा व्यक्ति ब्रह्मचारी रह सकता है और उसकी सफलता एक महान सफलता कही जा सकती है।

देवगण इसमें सहमत नहीं थे। वह कहते थे कि जिस पुरुष ने एक बार स्त्री संसर्ग कर लिया हो वह अपने आपको काबू में नहीं रख सकता। किसी सीमा में बद्ध रह सकना उसके लिये संभव ही नहीं। वासना की आग में एक बार ईधन पढ़ चुकने पर उसकी लपटें फिर ईधन को छूना चाहती हैं। इस दृष्टि में एक पत्नी व्रत कहीं ब्रह्मचर्य से अधिक मूल्यवान पड़ जाता है लेकिन उसका होना कष्ट साध्य है। इतना त्याग मनुष्य कर सकता है लेकिन कोई उदाहरण नहीं दे सकता। दलित व्यक्ति को पददलित करने में कुछ अधिक साधनों की आवश्यकता नहीं होती। गतिशील वासना की दिशा को अन्य दिशा की ओर ले जाना कोई कठिन नहीं। मुक्तभोगी व्यक्ति की वासना शीघ्र ही उत्तेजित हो सकती है और किसी समय भी वह पत्नी व्रत को भंग कर सकता है, उसके ब्रह्मचर्य की कोई गारंटी नहीं हो सकती। एक बार फिसलने वाला दूसरी बार भी फिसल सकता है।

देवराज को यह विचार पसंद था परन्तु वे इसके अंत तक पहुंचना चाहते थे। वे आगे बोले एक उपभोग का आनंद लेने वाले व्यक्ति के लिये अपनी इच्छाओं का सीमित रख सकना कठिन अवश्य है लेकिन वह उन्हें सीमित रख सकता है। उसे इसके लिये अधिक आत्म बल वाला और मजबूत हृदय बनना होगा। एक पत्नि व्रत के महत्व को कायम रखने के लिये उसे एक निश्चित लक्ष्य बनाना होगा और उसी लक्ष्य पर अपने विकार और वासनाओं को ले जाना होगा। विषय की ओर जाता हुआ मन और इन्द्रियां एक केन्द्र पर रहकर भी चारों ओर घूमती अवश्य हैं लेकिन घूमकर भी अपने केन्द्र पर ही स्थिर होती हैं। कुतुमनुमा की सूई को चारों ओर घुमा देने पर भी वह अपनी एक निश्चित दिशा पर ठहरती है। माला की जाप करने वाले साधक की उंगलिएं सभी दानों पर जाती हुई अंत में सुमेरू पर ही स्थिर होती है, कहीं भी उड़ने पर भी पतंग की सत्ता डोर वाले के हाथ में ही रहती है, इसी तरह दृढ़ प्रणवाले संयमी

मनुष्य का मन एक पत्नि के बंधन को तोड़कर कहीं नहीं जाता।

देवता इन्द्र की बात का प्रमाण चाहते थे, वे इस बात के इच्छुक थे कि पृथ्वी पर उन्हें इसकी कोई जीवित मिशाल मिले। वे इन्द्रदेव से बोले-आप अपने सिद्धांत प्रतिपादन के लिये कोई प्रमाण दे सकेंगे ? क्या आपकी दृष्टि में कोई ऐसा व्यक्ति है जो इस कसौटी पर खरा उतर सके ! हम केवल विवाद से तुष्टि नहीं चाहते, हमें तो आदर्श देखना है। यदि आप कोई आदर्श रख सकते हैं तो उसे रखकर इस विवाद को समाप्त कीजिये नहीं तो यह विवाद तो खड़ा ही रहेगा।

इन्द्रदेव ने कहा-आपको प्रमाण मिलेगा और वह भी इसी समय। मैं बिना प्रमाण के कोई बात नहीं करता। रविव्रत ! तुम इसी समय भारत के हस्तिनापुर नगर को जाओ, उसके नवयुवक शासक का नाम जयकुमार है। वह सुन्दर और आकर्षक भी है। उसने आजीवन एक पत्निव्रत पालन की प्रतिज्ञा ली है। मानव तो ठीक है लेकिन मैं समझता हूं तुम देवता भी उसे व्रत से चलित नहीं कर सकते। मैं अपने प्रमाण को सत्य साबित करने के लिये तुम्हें वहां जाने की आज्ञा देता हूं तुम जाकर उसकी परीक्षा लो।

रविव्रत के हृदय में एक गुदगुदी पैदा हुई। वह ऐसा सुयोग तो चाहता ही था-परीक्षण में बहुत कुशल भी था। इन्द्र की आज्ञा पाते ही वह शीघ्र ही हस्तिनापुर की ओर चल दिया।

जयकुमार उस समय अपनी पत्नि के साथ एक वन में क्रीड़ा कर रहे थे। उसने विद्याबल से सुलोचना को कुछ समय के लिये कहीं गायब कर दिया फिर उसने एक सुन्दरी सुरबाला का रूप धारण किया। अपनी प्रभा से जंगल को प्रकाशित करती हुई वह देव-बाला अचानक ही जयकुमार के सामने पहुंची और भयभीत स्वर से बोली -देव ! आप मेरी रक्षा कीजिए, मैं समाई हुई एक बाला हूं, आप मुझे विगति से बचाइए।

जयकुमार उसके भय को दूर करते हुये बोले-बहिन ! बोलो तुम पर किस विपत्ति ने आक्रमण किया है, मैं तुम्हें उससे छुटाने का वचन देता हूँ।

देवबाला बोली-देव ! मैं राजा देवसेन की कन्या हूं। आज सवेरे ही मैं अपने पिता के साथ वायुयान पर निकली थी, निकट के उस विशाल वन में मेरा वायुयान अटक गया, मेरे पिता जी मरणोन्मुख हैं। मैं किसी तरह बचकर आपके पास आई हूं, आप मेरी अवश्य ही सहायता कीजिए।

जयकुमार ने कहा-बहिन, किसी भी प्राणी की सेवा करना मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ, मुझे प्रसन्नता होगी यदि मैं तुम्हारी कुछ भी मदद कर सकूंगा।

देवबाला बोली-देव ! तब आप शीघ्र चलिए। शीघ्र सहायता न मिलने पर कहीं मेरे पिताजी के प्राण संकट में न पड़ जाये। बाला की सरल बातों में वह आ गये और उसके साथ चल दिए। कुछ दूर वन में उन्होंने प्रवेश किया ही था वह सुंदरी बड़े आहत स्वर में बोली-ओह प्रभो ! मुझे बचाइए।

तुम्हें क्या हुआ ? यहां कौन है ? जिससे तुम डर रही हों। जयकुमार ने कहा। बाला जयकुमार का स्पर्श करती हुई बोली-देखिए वह अपने धनुष बाण को ताने हुये मेरी ओर भयानक दृष्टि देख रहा है।

बहिन! मुझे तो यहां कोई नहीं दिखता, तुम व्यर्थ ही संदेह करके डर रही हों। जयकुमार ने सरलता से उत्तर दिया।

बाला अत्यंत निकट होकर बोली-ओह ! आप उसे नहीं देख पाते ! वह निर्दय मदन है ! आपके साथ मुझे इस एकान्त में देखकर ही तो वह रूष्ट हुआ है मैं अब आपकी शरण में हूं, आप मेरी रक्षा कीजिए।

जयकुमार ने कुछ रूष्ट होते हुये कहा-बहिन ! तुम यह क्या कहती हो ? तुम मुझे अपने पिताजी की रक्षा के लिये यहां लाई थी बतलाओ ! तुम्हारे पिता जी कहां हैं ? मैं उनकी क्या सहायता कर सकता हूँ।

बाला बोली -देव ! पिता की रक्षा तो हो चुकी, अब मैं अपनी रक्षा आपसे चाहती हूं। आपको देखकर मेरा मन विकल हो रहा है। वेदना से मेरा सारा शरीर जला जा रहा है। आप मुझ पर अपने शीतल स्नेह रस की वर्षा कीजिये और मुझे अपने हृदय में स्थान देकर तृप्त कीजिये।

जयकुमार धैर्य के साथ बोला-बहिन ! अपने मन के विकार को इस तरह प्रकट करना भारतीय ललनाओं के लिये शोभा नहीं देता। भारतीय बहिनें कभी भी किसी अन्य पुरुष के प्रेम की भिक्षा इस तरह नहीं मांगती, तुम्हें अपने हृदय की पवित्रता इस तरह खोना नहीं चाहिये। बहिन ! अपने विवेक को जागृत करो और अपने को मलिनता कीचड़ में सान कर अपवित्र मत बनाओ। मैं विवाहित हूं। अपनी पत्नि के अतिरिक्त सभी महिलाओं से मेरा पवित्र माता और बहिन का नाता है तुम मुझे क्षमा करो और अन्य सेवा और सहायता के लिये आज्ञा दो।

बाला और भी अधिक स्नेह जागृत करती हुई बोली-देव। आप ठीक कहते है। लेकिन मेरा मन तो मेरे काबू में नहीं है, मैं क्या करूं ? उस पर तो मदनदेव का अधिकार हो चुका है, वह मुझे जो आज्ञा देगा वह मानना ही होगी। मनमोहन ! मेरा हृदय तो आपके रूप और सौन्दर्य का दास बन चुका है वह वरबस विक चुका है। आपके इस नवयौवन पर। मैं कुमारी हूं राज कन्या हूं, सौभाग्य से सौन्दर्य भी मुझे प्राप्त है। यह एकान्त का सुयोग भी है, इस सुन्दर एकान्त में नवयुवती पाकर आपको कृतार्थ होना चाहिये और इस स्वर्ण योग को सफल बनाकर स्वर्गीय सुख का उपभोग करना चाहिये। पुण्य का फल बारबार नहीं मिलता।

जयकुमार का हृदय उसकी निर्लज्ज बातें सुनकर कांप उठा, उसे स्वप्न में भी ऐसी बातें सुनने की आशा नहीं थी लेकिन उसका हृदय चलित नहीं हुआ। वह दृढ़ता स्वर में बोला-बहिन ! मुझसे तुम्हें ऐसी आशा नहीं रखनी चाहिये। तुमने अपने हृदय की कालिमा का मुझ पर व्यर्थ ही प्रयोग किया। आर्यपुरुष के लिये इस तरह प्रलोभन में फंसा लेने की बात सोचना छलना मात्र है। बहिन तुम मेरी बहिन

हो। बहिन की पवित्र वाणी इस तरह विषमय बन गई है इससे अधिक दुःख की बात मेरे लिए और क्या होगी ? मैं चाहता हूं मेरी बहिन, बहिन के स्थान पर रहे। यदि मेरे भ्रातृभाव में शक्ति है तो वह बहिन को बल देगा ताकि वह अपने को पवित्र बना सके। इससे अधिक सेवा मेरी और क्या हो सकेगी कि मैं अपनी बहिन की कालिमा को धो सकूंगा।बहिन ! भाई बहिन के मन को एकांत और सुन्दरता क्या ? संसार की सारी शक्ति भी चलित नहीं कर सकती। तुम बलवान बनो, हृदय की निर्बलता निकाल दो, निर्भयता और विवेक को अपना साथी बनाओ, फिर मदन तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकेगा। तुम अब सावधान बनो और अपने अंदर की नारी तेज को देखो। सुनो ! वह तुमसे क्या कह रहा है ? वह यही कहता है कि पवित्रता ही नारी जीवन है और शील ही नारी-मर्यादा है, तुम उसे संभालो।

पवित्रता के सामने देवता का छल-छल नहीं टिक सका। उसे पराजित होकर प्रकट होना पड़ा। रविव्रत ने अपना मायावेश बदला देवबाला का चोला उतारकर वह अपने असली रूप में आया ओर इन्द्र सभा का सारा हाल सुनाकर जयकुमार से बोला-जयकुमार वास्तव में आप जयकुमार ही हैं। आप एक-पत्नि व्रत के आदर्श हैं। आप जैसे व्रती पुरुषों के बल पर ही देव सभा में इन्द्र इस व्रत पर निर्भय बोल रहे थे। आजीवन बाल ब्रह्मचारी महान हैं किन्तु आप जैसे एक पत्निव्रतधारी भी महानता से कम नहीं है। मैं आपकी दृढ़ता की प्रशंसा करता हूं और निःसंकोच रूप से कहता हूं कि भारत को आप जैसे दृढ़ व्यक्तियों पर अभिमान होना चाहिये। संसार आप से दृढ़ता का पाठ सीखे और प्रत्येक भारतीय आपके आदर्श को ग्रहण करें।

रविव्रत ने इन्द्रसभा में जाकर अपने परीक्षण की रिपोर्ट देवगण के सामने प्रस्तुत की, देवताओं ने इन्द्र के दृष्टिकोण को समझा और उनकी विचारधारा को स्वीकार किया।

जयकुमार ने एक पत्निव्रत का निर्वाह करते हुये सेवा और परोपकार में जीवन के क्षणों को व्यतीत किया। प्रजा पर उनके संयमी जीवन, न्याय प्रियता और वीरता का एकांत प्रभाव पड़ा था।

एक दिन उनके हृदय में लोककल्याण की भावना जागृत हुई वे राज्यबंधन में नहीं रह सके। वे तपस्वी बने, आत्मकल्याण के पथ पर बढ़े और धर्म के एक महास्तंभ बने।

⌘⌘⌘

चक्रवर्ती भरत

भारत के आदि चक्रवर्ती-सम्राट

(1)

संसार से विरक्त होने पर ऋषभदेव जी ने अयोध्या का राज्य सिंहासन युवराज भरत को समर्पित किया था। भरत जी भारत वर्ष के सबसे पहले प्रतापी सम्राट् थे। जिसके प्रबल प्रताप के आगे मानवों के मस्तक भक्ति से झुक जाते, ऐसे दिव्य रत्नों से चमकने वाले राजमुकुट को उन्होंने अपने सिर पर रक्खा था। वे भारत वर्ष के भाग्य विधाता थे। उन्होंने संपूर्ण भारत विजय कर अपने अखंड शासन को स्थापित किया था, अपने नाम से भारत को प्रसिद्ध किया था।

राज्य सिंहासन पर बैठते ही उन्होंने अपनी महान सामर्थ्य और पराक्रम से बड़े बड़े राजाओं के मस्तक को झुका दिया था।

प्रभात का समय, सम्राट् भरत अनेक नरेशों से शोभित सिंहासन पर बैठे थे। सामंतगण शस्त्रों से विभूषित नियमित रूप से खड़े थे। भरत की वह सभा इन्द्र सभा के सौन्दर्य को पराजित कर रही थी। इसी समय प्रधान सेनापति ने राज्य सभा में प्रवेश किया। उसका हृदय हर्ष से भर रहा था। अपने मस्तक को झुकाकर वह बड़ी नम्रता से बोला-अपने भुजबल से नरेशों ने कृपा की है, सौभाग्य आपके चरणों पर लोटने को आया है। आज आपकी आयुधशाला प्रकाश से जगमगा रही है, जिसके तेज के आगे शूरवीरों के नेत्र झपक जाते हैं, सूर्य का प्रकाश भी मंद सा पड़ जाता है और कायरों के हृदय भय से कातर हो जाते हैं। वही अद्भुत चक्ररत्न आपकी आयुधशाला को सुशोभित कर रहा है आप चलकर उसे ग्रहण कीजिये।

भरत नरेश ने हर्ष से यह समाचार सुना, वे आयुधशाला जाने के लिये तैयार हो रहे थे इसी समय एक ओर से मंगलगान करती हुई महल की परिचारिकाओं ने प्रवेश किया, वे सम्राट का सुयश गान करती हुई बोली-राजराज्येश्वर! आज हम बड़ी प्रसन्नता से आपको यह संदेश सुना रही हूँ, आज हमारा हृदय हर्ष से परिपूर्ण हो रहा है, सुनिए जो प्रबल पुण्य का प्रतिफल है जिसे देखकर हर्ष का समुद्र उमड़ने लगता है और जो कुल की शोभा है ऐसे आनन्द बढ़ाने वाले युवराज ने आपके राज्यमहल को प्रकाशित किया है आप चलकर उसे देखिए अपने नेत्रों को तृप्त कीजिये और हमारी वधाई स्वीकार कीजिए।

समय की गति विचित्र है। जब किसी का सौभाग्य उदित होता है तब उसके चारों ओर हर्ष का साम्राज्य बिखर जाता है। सफलता और यश उसके चरणों पर अपने आप लौटने लगता है। आज भरत का सौभाग्य पूर्ण मध्यान्ह पर था, समय ने उन्हें चारों ओर से हर्ष ही हर्ष प्रदान किया था। दोनों शुभ संवाद उनके हृदय को हर्ष से भर रहे थे उसी समय सभी ऋतुओं के फल फूलों की डाली सजाए हुये और

असमय में ही वसंत की सूचना देने वाले वनमाली ने राज्यसभा में प्रवेश किया फिर सुगंधी से भरे पुष्प और फूलों को उन्हें भेंट दिया।

आज के पुष्प में कुछ अनूठी ही सुगंधी थी। उनकी शोभा भी विचित्र थी। भरत जी ने इस चमत्कार को देखा, वे बोले-शुभे ! आज मैं इन फल फूलों के रूप गंध में कैसा परिवर्तन देख रहा हूँ ? क्या मेरे नेत्र मुझे धोखा दे रहे है ? बोलो इसका क्या कारण है ?

वनमाली बोला-नाथ ! मैं उपवन में घूम रहा था, सारे उपवन को मैंने आज एक नई शेभा से ही सजा देखा। मैंने देखा जिस आम्र की डालियें शुष्क हो रही थीं वे नवीन मंजरियों से भरकर झुक गई हैं, मधुपों का गान हो रहा है और सभी ऋतुओं के फल फूलों से वन श्री वसंत की शोभा प्रदर्शित कर रही है। जब मैं और आगे वन में पहुंचा तो देखा कि मृग का बच्चा सिंह शावक के साथ खेल रहा है और शांति का साम्राज्य सारे जंगल में फैला हुआ है। मैं यह सब देख ही रहा था कि इसी समय मुझे आकाश से कुछ विमान आते दिखलाई दिए मैंने। आगे बढ़कर सुना कुछ मधुर कंठ भगवान ऋषभदेव का जयगान कर रहे हें , उस ध्वनि में मुझे स्पष्ट सुनाई पढ़ा, कोई कहता था आगे बढ़ों मुझे भी भगवान ऋषभ के दर्शन करने दो। मैं यह कुछ नहीं समझ सकता और आपकी सेवा में यह समाचार सुनाने आया हूं।

भरत जी ने वनमाली से सब कुछ सुना। वे समझ गये कि आज योगेश्वर ऋषभदेव को कैवल्य प्राप्त हुआ है। वे अपनी सुधि बुद्धि भूल गए। भक्ति से नम्र होकर वे सिंहासन से नीचे उतरे और विनत मस्तक होकर वहीं से परोक्ष नमस्कार किया। फिर यह शुभ संवाद लाने वाले वनमाली को बहुमूल्य वस्त्राभूषण दान दिये और सब कामो को भूलकर वे कैवल्य उत्सव में जाने की तैयारी करने लगे। उनका हृदय धर्मप्रेम से पूरित था। सांसारिक कार्यों की अपेक्षा उन्हें अध्यात्म से अधिक प्रेम था यही कारण था कि उन्होंने चक्र प्राप्ति और पुत्रोत्सव की अपेक्षा कैवल्य महोत्सव को अधिक महत्व दिया। उन्होंने नगर में घोषणा करा दी। कि आज भगवान ऋषभदेव का कैवल्य कल्याणक मनाया जायेगा, प्रत्येक नरनारी को इस उत्सव में सम्मिलित होना चाहिये और रात्रि को दीपक जलाना चाहिये।

घोषणा सुनते ही संपूर्ण जनता थोड़े समय में ही एकत्रित हो गई और चक्रवर्ती भरत के साथ केवल महोत्सव मनाने को चल दी। उनके जाने के पहले ही मानव और देवताओं का समूह वहां एकत्रित हो चुका था। सभी जन योगेश्वर ऋषभ की दिव्य मूर्ति के दर्शन करने और उनका उपदेश सुनने को आतुर थे। भक्ति और श्रद्धा से सभी के मस्तक नत थे। चक्रवर्ती के पहुंचने पर सभी ने हर्ष ध्वनि प्रकट की फिर सभी एकत्रित जनता ने भगवान ऋषभ को भक्ति से प्रणाम किया। श्री ऋषभदेव जी ने उपस्थित जनता को आत्म कल्याण का संक्षिप्त में उपदेश दिया। चक्रवर्ती ने धर्म का रहस्य जानने के लिये उनसे कुछ प्रश्न किये जिनका उत्तर पाकर वे संतुष्ट हुये ? उपदेश समाप्त हुआ और वे जनता के साथ अपने नगर को लौट आए।

(2)

नगर में आकर भरत जी ने पुत्र जन्म का उत्सव मनाया। सुरीले बाजे बजने लगे और स्थान स्थान पर नाच गान होने लगा। सारा नगर वंदनवार से सजाया गया और नगर निवासी आनंद विभोर हो गये। अपने आश्रितों को उन्होंने उत्तम वस्तुयें प्रदान की फिर नगरवासियों को निमंत्रित कर उनका यथेष्ट सत्कार किया, और कुटुंबीजनों को सम्मानित किया। पुत्रोत्सव समाप्त होने पर अपने सामंतों के साथ वे आयुधशाला को गये वहां उन्होंने चक्ररत्न की पूजा की और फिर भारत दिग्विजय हेतु सेनापति को सैन्य तैयार करने की आज्ञा दी।

युद्ध का बाजा बजने लगा। सैनिक अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हो गये। हाथी, घोड़े और पैदल सिपाहियों से सजकर अपनी विजय करने के लिये सेना को लेकर चक्रवर्ती भरत विजय के लिये चल दिए।

अयोध्या से चलकर उन्होंने पूर्व पश्चिम और दक्षिण के सभी आर्यवंशीय राजाओं को अपने आधीन बनाया। जिस दिशा की ओर चक्रवर्ती की विशाल सेना जाती थी उसी ओर बिना युद्ध के ही राजाओं को अपने आधीन बना लेती थी। फिर वे उत्तर दिशा की ओर सिंधु नदी के तट पर चलते हुये विजयार्धगिरि के निकट पहुंचे। पर्वत पर रहने वाले सभी देव और मानवों ने उनका अभिषेक किया और उन्हें अपना स्वामी घोषित किया। विजयार्द्ध के दक्षिण भाग को जीतकर वे उत्तर भारत के म्लेच्छ राजाओं पर अपना अधिकार जमाने के लिये चल दिए।

उत्तर भारत की दिग्विजय को जाते हुये मार्ग के अनेक राजा बहुत सी भेंट और सैनाएं देकर चक्रवर्ती की शरण में आये थे। उस देश के महाराजा जयकुमार भी अपनी सैन्यसहित सम्राट से मिले थे। राजाओं के विशाल सैन्य समूह के साथ, सम्राट विजयार्ध की उत्तरी गुफा के मार्ग पर पहुंच गए। वहाँ उन्होंने अपनी महान् शक्ति के प्रभाव से गुफा के वज्र द्वार को खोला। और गुफा निवासियों का आदर प्राप्त किया, फिर आगे चलकर उत्तर म्लेच्छ खंड की कुछ दिशाओं पर अपना विजय ध्वज फहराया। वहां के म्लेच्छ राजाओं ने सम्राट् का प्रभुत्व स्वीकार किया और बदले में अनेक उत्तम वस्तुएं उन्हें भेंट में दी। फिर उन्होंने मध्य म्लेच्छ खंड जीतने के लिये प्रस्थान किया और शीघ्र ही उस खंड के अनेक बिलों पर अपना अधिकार कर लिया। मध्य म्लेच्छ खंड के महापराक्रमी राजा चिलात आवर्त ने चक्रवर्ती की विजय का समाचार सुना। वे बड़े बलवान और शक्तिशाली राजा थे। उन्होंने आगे बढ़ने का विरोध किया, चक्रवर्ती को सेना ने उससे युद्ध करके उन्हें जीता। हार जाने पर उन्होंने अपने कुलरक्षक नागमुख और मेघमुख दैत्यों की शरण ली, मेघमुख दैत्यों ने अपने मंत्रों द्वारा मूसलधार जल की वर्षा की तब चक्रवर्ती ने अपने विशाल तर्क द्वारा घनघोर वर्षा से अपने सैनिकों की रक्षा की, फिर नागमुख जाति के देवों ने अपने मंत्रित शस्त्रों से चक्रवर्ती की सेना पर आक्रमण किया। चक्रवर्ती महाप्रतापी राजा मेघेश्वर

जयकुमार को नागमुखों से युद्ध करने की आज्ञा दी। जयकुमार ने नागमुखों के मंत्रों को अपने शस्त्रों द्वारा बेकार कर दिया। अपने मंत्र बल को बेकार होता देखकर वे भागने लगे। उनके भागते ही सभी म्लेक्ष्छ राजा चक्रवर्ती की शरण मे आए और उनका प्रभुत्व स्वीकार किया। संपूर्ण म्लेच्छ खंड पर अपना अधिकार जमाकर चक्रवर्ती वृषभाचल पहाड़ पर आए। पहाड़ की शिला पर उन्होंने अपनी दिग्विजय की संपूर्ण प्रशस्ति अंकित की फिर अपने नाम को लिखा और विजययात्रा समाप्त की।

विजय यात्रा करके उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया। वहां सभी राजाओं ने मिलकर विजयोत्सव मनाया और उन्हें भरत के आदि चक्रवर्ति के नाम से घोषित किया।

सम्राट् भरत ने अपनी विजययात्रा के समय उत्तम रत्न, वस्त्र, अनेक हाथी, घोड़े, आदि भेंट में प्राप्त किये थे। उनका वैभव महान था। उनके वैभव का वर्णन करना कवि-लेखनी के बाहर की बात थी। वे न्याय प्रिय शासक थे। अन्याय और अत्याचार उनके राज्य में कहीं नाम को नहीं था। उनके शासन से सभी संतुष्ट और सुखी थे।

वे व्यक्ति जो समाज में धन वैभव अथवा अधिकार की दृष्टि से कुछ महत्व रखते हैं, जिनके सहारे कुछ व्यक्तियों का जीवन निर्वाह अवलंबित रहता है और जो धन द्वारा बहुत से प्राणियों का उपकार कर सकते हैं, यदि वे धार्मिक अथवा सामाजिक कार्यों में अपना निःस्वार्थ सहयोग देते हैं, उसकी बागडोर अपने हाथ मेंलेकर आगे बढ़ते हैं तो उनके पीछे साधारण जनता शीघ्रता से चलने को तैयार हो जाती है। साधारण जनता अनुकरणशील होती है। जैसा कार्य अपने से बड़े व्यक्तियों द्वारा करते देखती है वह उसी तरह अनुकरण करने की चेष्टा करती हे, धनिक वर्ग और समाज के प्रमुख पुरुष समाज को जिस दिशा में ले जाना चाहें वे उन्हें उसी ओर ले जा सकते हैं। धन वैभव अधिकार शारीरिक शक्ति आदि ऐसी निधिएं है जिनके सदुपयोग से मानवता अधिक से अधिक उपकार और उद्धार किया जा सकता है और असलियत में देखा जाये तो यह है इसी उपयोग के लिये, किन्तु इनके सदुपयोग की अपेक्षा आज इनका दुरुपयोग ही अधिक देखा जाता है।

वैभव और अधिकार पाकर मानव अंधा बन जाता है, उसके हृदय का करुणा स्त्रोत सूख जाता है, उनमें वह असलियत के दर्शन, नहीं कर पाता, दुखित और त्रसित जनकी पुकार नहीं नहीं सुन पाता। भोग लिप्सा और विषय लालसाएं उस पर अपना काबू कर लेती हैं अपने विलासपूर्ण जीवन में वह इतना व्यस्त हो जाता है कि साधारण जनसमूह के जीवन का उसे ध्यान नहीं रहता। इन्द्रियतृप्ति में वह अपने अंदर का विवेक खो देता है। ठाठबाट और मौज शौक से रहना उसका जीवन ध्येय हो जाता है। साधारण जनता से बात करना, उनकी पुकार सुनना, उनके कष्टों की ओर दृष्टिगत करने में वह अपना अपमान समझता है। जिस साधारण जनता के श्रम और जीवन के फलस्वरूप उनकी गाढ़ी कमाई का

वह उपयोग करता है उन्हें मानव नहीं समझते। उनके स्वार्थ को वह अनीति समझते हैं। उनकी स्वतंत्रता को गरूर और उनके जीवन मकोड़ो में कोड़ों का जीवन समझता हैं। इस विचार का धनिक और अधिकारी देश और समाज के लिये घातक सिद्ध होता है और जनता उसकी इस निष्ठुरता को सहन न कर सकने के कारण विद्रोह कर बैठती है और संसार में अशांति की ज्वाला धधक उठती है।

भरत चक्रवर्ती सम्राट थे। उनके वैभव और अधिकार की सीमा नहीं थी। उनकी उंगली के ईशारे पर सारा भारत नाचता था किन्तु वैभव के इस घटाटोप में वे धर्म और विवेक को भूले नहीं थे। वे राज्य सिंहासन पर बैठ कर न्याय की पुकार सुनते थे, जनता के कष्टों को दूर करने का प्रयत्न करते थे और राज्य की समृद्धि और उसके गौरव की चिंता करते थे।

जनता की प्रत्येक आवाज सुनने को उनके कान सतर्क रहते थे, और उनके सुखी बनाने का ध्येय रहता था। प्रत्येक विभाग का कार्य संगठित था। हर एक कर्मचारी के प्रति उनका प्रेममय शासन था। उस शासन बंधन में बंधे हुये वे अपने कर्त्तव्य को समझते थे। सम्राट् उन्हें जनता के सेवक रूप में संबोधन करते थे। प्रत्येक कर्मचारी अपने को जनता का सेवक समझता था और अपने अधिकारी के अनुशासन में रहकर अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखता था, अपने देश समाज और जनता की सेवा ही उसका धर्म था।

राज्य कार्यों में लगे रहने पर धर्म कार्य और ईश्वर की भक्ति को नहीं भूले थे। नियमित रूप से वे देवपूजा, गुरुवंदना, सद्ग्रंथ अध्ययन, अतिथि सत्कार, दान और आत्मशोधन कार्यों को करते थे।

चक्रवर्ती साम्राज्य प्राप्त कर लेने पर भी वे आत्मा के रहस्य को जानते थे अनंत ऐश्वर्य के स्वामी होने पर भी वे उसमें लिप्त नहीं थे। वे अपने विवेक को जागृत रखते थे और **जल में कमल** की तरह वैभव और ऐश्वर्य की ममता से बिलग रहते थे। जनता उनके इस तत्व ज्ञान पर आश्चर्य प्रकट करती थी। उनके हृदय में यह बात स्थान नहीं पाती थी, कि इतने वैभव की चिंता रखने वाला सम्राट् कभी आत्म चिंतन कर सकता है। जनता के हृदय की शंका समाधान होना ही चाहिये था और यह समय भी आ गया।

एक दिन चक्रवर्ती नित्य की तरह अपने राज्य सिंहासन पर बैठे थे इसी समय एक भद्रपुरुष ने राज्य सभा में प्रवेश किया। उसने सम्राट का नियमानुसार अभिवादन किया और फिर एक ओर खड़ा हो गया। कुछ समय तक खड़े रहने पर सम्राट् का ध्यान उसकी ओर गया। वह बोले-बंधु ! आप क्या कहना चाहते हैं। इस राज्य-सभा में आप अपने मन की प्रत्येक बात स्पष्ट रूप से कह सकते हैं। भद्रपुरुष बोला यदि सम्राट् क्षमा करें तो मैं उनके सामने अपनी शंका का समाधान चाहता हूं। आप अपनी शंका निःसंकोच रखिए, आपको उसका उचित समाधान मिलेगा। भरतजी ने कहा-

भद्रपुरुष बोला भारत भूषण ! मैं जनता द्वारा बहुत समय से सुन रहा हूं कि इतने बड़े साम्राज्य का बोझ अपने कंधे पर रखकर भी आपका मन उससे विरक्त रहता है, और आप अपने को आत्मचिंतन में निमग्न

रखते हैं। हम लोगों को साधारण गृहस्थ को चिंताएँ इतनी रहती हैं कि हम अपने मन को स्थिर नहीं रख पाते, रात दिन कमाने और स्त्री के पुत्र के पालन पोषण से ही हमें छुटकारा नहीं मिलता। जब इतना सा बोझ रखकर भी हम उसके ममत्व को नहीं छोड़ सकते तब आप इतने बड़े साम्राज्य को सुव्यवस्थित रूप से चलाते हुये अपने मन को किस तरह एकाग्र रख सकते होगें ? मेरा आप पर अविश्वास नहीं है लेकिन यह बात मेरे हृदय में प्रवेश नहीं कर पाती, आप इसका समाधान कीजिए।

शंका सुनकर चक्रवर्ती भद्रपुरुष और थोड़ा मुस्कुराए फिर स्नेह के स्वर में बोले-बंधु ! तुम्हारी शंका का समाधान होगा और इसी समय होगा। उन्होंने एक सेवक को आज्ञा दी कि वह एक कटोरा तैल से लबालब भरकर लाए। तेल से भरा कटोरा उसी समय सम्राट् के सामने लाया गया, सम्राट् सेवक को आज्ञा दी देखो ! इसी तेल के कटोरे को लेकर एक बार सारे नगर का चक्कर लगा कर मेरे पास आओ लेकिन ध्यान रखना इस कटोरे से एक बिंदु तैल न गिरने पाए, एक बिंदु तैल गिरने पर तुम्हारा जीवन नष्ट कर दिया जायेगा। देखो ! सावधान रहना तुम्हारे जीवन का मूल्य तैल के एक बिन्दु की बराबर होगा। जाओ, इसी समय जाओ, ओर इस कार्य को पूरा करके आओ।

सेवक को हुक्म दे चुकने के बाद उन्होंने अपनी नर्तकियों को आज्ञा दी कि वे राज्यमार्ग के विशाल दरवाजे पर अपना नृत्य आरंभ करें इसी तरह दुसरे द्वार पर नटों को अपना खेल दिखलाने की आज्ञा दी, और फिर अपने सैनिकों को बुलाकर कहा तुम लोग नगर के मध्य में जाकर अपना सैन्य प्रदर्शन करो।

नगर का प्रत्येक भाग नाच तमाशें और सैनिक प्रदर्शनों से पूर्ण हो गया, अपने जीवन को कटोरे के मध्य में स्थिर रखने वाला वह सेवक नगर का चक्कर लगाकर राज्य सभा में आया। तैल का कटोरा उसी तरह पूर्ण था, चक्रवर्ती ने उससे पूछा, सेवक-तुम बतलाओं मार्ग में जो नृत्य हो रहा था, वह तुम्हें कितना रूचिकर हुआ। सेवक बोला-महाराज! मैंने मार्ग में किसी नृत्य को नहीं देखा। फिर उन्होंने पूछा-तुमने नृत्य नहीं देखा ? अच्छा मेरे सैनिकों का वह प्रदर्शन तो तुमने देखा होगा। सेवक बोला-महाराज मैंने वह प्रदर्शन भी नहीं देखा। सम्राट् ने कहा अरे ! तुम यह क्या कहते हो ? तब तुमने वह नटों का खेल भी नहीं देखा ? नहीं महाराज, मैं वह खेल कैसे देख सकता था, मैं तो अपने जीवन के खेल को देख रहा था। मेरा जीवन तो कटोरे के इन तैल बिंदुओं में समाया था, तैल का एक बिन्दु मेरा जीवन था। मैंने अपने इस कटोरे और अपने पैरों को मार्ग पर चलने के सिवाय किसी को नही देखा सेवक ने कहा। सम्राट् ने उसे जाने की आज्ञा दी। फिर वे भद्र पुरुष की ओर देखकर बोले-बंधु देखो जिस तरह पुरुष के सामने बहुत से खेल तमाशे और प्रदर्शन होते रहने पर भी यह अपने लक्ष्य बिंदु से नहीं हट सका, उसी तरह इस संपूर्ण वैभव के रहते हुये भी मैं अपने लक्ष्य पर स्थिर रहता हूं। मैं समझ रहा हूं कि मेरे सामने

कालकी नंगी तलवार लटक रही है, मैं समझ रहा हूं मेरा जीवन पहाड़ की उस सकरी पगडंडी पर से चल रहा है जिसके दोनों ओर कोई दीवाल नहीं है। थोड़ा पैर फिसलते ही मैं उस खड्डे में गिर पडूंगा जहां मेरे जीवन के एक कण का भी पता नहीं लगा सकेगा । प्रत्येक कार्य करते हुये मेरे जीवन का लक्ष्य मेरे सामने रहता है और मैं उसे भूलता नहीं हूं, इतने साम्राज्य की व्यवस्था का भार रखते हुये भी आत्म विस्मृत नहीं होता। फिर कुछ रूक करके बोले-भद्र पुरुष ! मैं समझता हूं मेरी बातों से तुम्हारे हृदय का समाधान हो गया होगा, साथ ही मैं यह भी कहना चाहता हूं कि तुम और मैं हर एक मानव बंधन में रहकर भी अपने कर्त्तव्य मार्ग पर चल सकते हैं और आत्मशांति का लाभ ले सकते है।

चक्रवर्ती के उत्तर से भद्र पुरुष को काफी संतोष हुआ जो जनता अभी तक इस विषय में मौन थी, वह भी इस समाधान से संतुष्ट हुई।

(3)

भरत जी का हृदय बहुत उदार था, वे अपनी द्रव्य का बहुलता भाग प्रतिदिन संयमी, और व्रती पुरुषों को दान में देना चाहते थे। वे ऐसा कार्य करना चाहते थे, जिससे उनकी कीर्ति संसार में चिरस्थाई रहे। वे चाहते थे कोई भद्र पुरुष उनसे कुछ मांगे और वे उसको दान रूप में कुछ दें, किन्तु उस समय के सभी मनुष्य अपने वर्ण के अनुसार कार्यों को करते थे, श्रम करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे, और श्रम द्वारा उन्हें जो कुछ मिलता था, उसमें संतोष रखते थे, उन्हें और किसी चीज की चाह नहीं थी। अपनी कमाई में जीवन निर्वाह करते थे, द्रव्य संचय कर वे अधिक तृष्णा के गड्ढे में नहीं पड़ना चाहते थे, वे सरल थे, सादा जीवन गुजारना उन्हें प्रिय था। किसी से चाहना उन्होंने सीखा नहीं था।

सम्राट् भारत को इस विषय की चिन्ता थी बहुत कुछ सोचने पर उन्होंने एक उपाय निश्चित किया। उन्होंने एक ऐसा वर्ण स्थापित करने की बात सोची जिसका जीवन दान द्रव्य पर ही निर्भर है, उसे दान लेने के अतिरिक्त कई शारीरिक श्रम या कार्य न करना पड़े, उस वर्ण के वे पुरुष अधिक विचारशील, दयालु और बुद्धिमान हों । अपनी बुद्धि बल से सम्राट् ने उनका चुनाव करना चाहा और एक दिन नगर के सभी नागरिकों को उन्होंने अपनी राज्यसभा में निमंत्रित किया।

कुछ प्रश्न उनके सामने रखे उनमें से जिन विद्वान् पुरुषों ने उन प्रश्नों के ठीक उत्तर दिए उनका एक संघ बनाया, उस संघ के सभासद होने वाले सदाचारी और आत्मज्ञान में रूचि रखने वाले पुरुषों को उन्होंने ब्राह्मण वर्ण की संज्ञा दी। उन्हें देव, शास्त्र, गुरु पर सच्ची श्रद्धा रखने का आदेश देकर उसकी स्मृति के लिये तीन तागों वाला एक सूत उनके गले मे डाला जिसे ब्रह्म सूत्र नाम दिया। ब्रह्म सूत्र रखने वाले ब्राह्मणों को उन्होंने नीचे लिखी क्रियाओ के करने का उपदेश दिया।

1. देवपूजा- नित्य प्रति भक्ति भाव से देव की पूजा करना।

2. गुरु उपासना- अपने से अधिक ज्ञान वाले पुरुषों की विनय और सेवा करना।

3. स्वाध्याय- ज्ञान की उन्नति करने के लिये ग्रंथो का पठन पाठन करना, और उनकी रचना करना।

4. संयम- अपनी इन्द्रियां और मन को अपने काबू में रखने की कोशिश करना।

5. तप-कुछ समय के लिये आत्म चिंतन और आत्म ध्यान करना।

6. दान-दान ग्रहण करना, और दान की शिक्षा देना।

इन छह आवश्यक कृत्यों को नित्य प्रति करना, और नीचे लिखे दश नियमों का पालन करना।

1. बालकपन से ही विद्या का अध्ययन करना।

2. पवित्र आचार विचारों को सुरक्षित रखना।

3. पवित्र आचरणों और विचारो को बढ़ाकर दूसरों से अपनेकों श्रेष्ठ बनाना।

4. दूसरे वर्णों द्वारा अपने में पात्रत्व स्थिर रखना।

5. अन्य पुरुषों को शास्त्रानुकूल व्यवस्था तथा प्रायश्चित देना।

6-7. अपना महत्व सुरक्षित रखने के लिये अपने उच्च आचरणों का विश्वास दिलाकर राजा तथा प्रजा द्वारा अपना वध ना किये जाने और दंड न पाने का अधिकार स्थापित करना।

8-9. श्रेष्ठ ज्ञान और चरित्र की उच्चता द्वारा सर्वसाधारण से आदर प्राप्त करना।

10. दूसरे पुरूषों को उच्च चारित्रवान बनाने का प्रयत्न करना।

इन नियमों का सदैव पालने का उन्हें आदेश दिया। जनता के बालकों को शिक्षण देना, उनके वैवाहिक कार्यों को सम्पन्न कराना और अन्य श्रेष्ठ क्रियाओं के करने की व्यवस्था रखने का कार्य उनके लिये सौंप, फिर उन्हें उत्तम भोजन और वस्त्रों का दान दिया।

उन्होंने क्षत्रियों को अपने सदाचार की रक्षा रखते हुये, राज्यनीति और धर्मशास्त्र के अध्ययन का उपदेश दिया और आत्मरक्षण, प्रजापालन तथा अन्याय दमन करने का विधान बतलाया।

सम्राट् भरत ने भगवान् ऋषभदेव की निर्वाण भूमि पर विशाल चैत्यालय भी स्थापित किये। और उनमें योगेश्वर ऋषभ की महान् मूर्ति को स्थापित किया।

(4)

संध्या का सुहावना समय था। सम्राट् भरत अपने वैजयंत भवन के मनोरम स्थान पर बैठे हुये महारानी के साथ विनोद कर रहे थे अनायास उनकी दृष्टि महल में चित्रित मनोरम दर्पण पर जा पड़ी। उन्होंने उसमें अपना मुख मंडल देखा, अपने सिर में एक श्वेत बाल देखकर वह अत्यंत चकित हुये।

वह सोचने लगे, यह क्या ? इस मृत्युदेव के दूत ने मेरे मस्तक में कहां से प्रवेश किया ? क्या संसार बंधन में फंसे हुये मुझ असावधान पथिक को यह अपने मालिक यमराज के पास ले जाने का संदेश लाया है ? या मुझे विषय वासना में पडा हुआ देखकर आत्मोद्वार करने के लिये सावधान करने की सूचना देने आया है ? तब क्या इसकी सूचना पाकर मुझे अपना कर्तव्य स्थिर नहीं करना चाहिये ? क्या मैं अखिल भारत पर अपना अखंड प्रभुत्व स्थापित करने वाला चक्रवर्ती इस यमराज के दूत की आज्ञा का पालन करूं या अपनी आत्मध्यान की शक्ति से उसे पराजित करूं ? क्या संसार के सभी प्राणियों को अपने आधीन करने वाला मृत्युदेव मुझे भी अपना गुलाम बना लेगा ? नहीं यह कभी नहीं होगा। मैं उसकी आज्ञा पालन कभी भी नहीं करूंगा ।

मैं अजेय संयम के गढ़ में प्रवेश करूंगा, महाव्रत सैनिकों का संगठन करके ध्यान के दिव्य शस्त्रों को सजाऊंगा और मृत्युदेव पर भीषण आक्रमण करके उस पर विजय स्थापित करूंगा। मैं भारत विजयी सम्राट् मुक्ति स्थल का भी सम्राट् बनूंगा, उनके हृदय में इसी तरह आत्मज्ञान की निर्मल तरंगें लहराने लगी।

पहिले से ही निर्बल और शक्तिहीन हुये सांसारिक स्नेह और वैभव तथा भोगविलास पर होने वाली उपेक्षा के कारण वासना बंधन के जर्जर रज्जु तड़ातड़ टूटने लगे। मोह का जाल भ्रष्ट होने लगा, हृदय में न फसने के कारण काम विकार विदा मांगने लगा, और राग द्वेष का साम्राज्य भंग होने लगा।

सम्राट् भरत ने व्रतों के महाक्षेत्र में प्रवेश करने का दृढ़ संकल्प किया और ज्येष्ठ पुत्र युवराज अर्ककीर्ति को अयोध्या का सिंहासन देकर अपने को दीक्षा देवी के करकमलों में समर्पित किया।

सम्राट् भरत महात्मा भरत बन गए, उनका हृदय सज्यावास्था से ही वैराग्य युक्त था। उनकी वासनाएं पहले से ही मरी हुई थी। इसलिये दीक्षा लेने के कुछ समय पश्चात ही उन्होंने अपनी दिव्य आत्म शक्ति से बल से कैवल्य प्राप्त कर लिया, जिसके लिये योगी सहस्रों वर्षों तक तीव्र तपश्चर्या करते हैं अनाहार सहन करते हैं, वही पूर्णज्ञान उन्हें कुछ समय में ही प्राप्त हो गया।

कैवल्यज्ञान प्राप्त होने पर भरत जी ने भारत में भ्रमण किया और धर्मोपदेश देकर मानवों को कल्याण पथ पर लगाया, फिर संपूर्ण कर्मों के जाल को नष्ट कर वे अक्षय सुख के अधिकारी बने।

⌘⌘⌘

दानवीर श्रेयांसकुमार

दान-प्रथा के प्रथम प्रचारक

(1)

प्रत्येक युग का अपना कुछ इतिहास होता है, इसी तरह हर एक सामाजिक रीति रिवाजों और पद्धतियों के प्रचलन का भी कुछ इतिहास हुआ करता है। भले ही समय पाकर उनमें की कुछ प्रवृत्तिएं आगे चलकर साधारण रूप रख लें किन्तु उनकी महत्ता तो समय की मांग है, उन लौकिक पद्धतियों का जन्म उस समय किन जटिल परिस्थितियों में होता है, वे कितनी बुद्धि और त्याग चाहती है ? इसे उनकी जन्म कथा जानने वाला ही बतला सकता है और जन्मकथा जानकर ही उनकी महत्ता स्थापित की जा सकती है।

कुन्ड से आगे बढ़ने पर गंगा की धारा को किन विषम परिस्थतियों का अनुभव करना पड़ा होगा, कितनी कठोर और निर्मम भूमि को उसे अपने हृदय में रखकर उस पर चलना पड़ा होगा, और कितने वर्षों की एकांत साधना से आगे बढ़कर उसने अपनी शीतलता का विस्तार किया होगा। इसको आज कौन जानना चाहेगा, पानी के लिये तड़पते हुये किसी प्यासे को इस इतिहास के जानने से क्या प्रयोजन ? किन्तु इससे उसके इतिहास की महत्ता कम नहीं होती।

संसार में सभी आवश्यक क्रियाएं कर्मवीर पुरुषों के कठिन त्याग और प्रतिभाशाली बुद्धि के फल स्वरूप प्रचलित हुआ करती है और वे उस समय हुआ करती हैं जबकि उनकी मांग अनिवार्य होती है। कभी कभी आवश्यता रहते हुये भी साधारण मनुष्यों के मन में उनकी कल्पना ही नहीं पैदा होती। लेकिन जब किसी महापुरूष द्वारा उनका रहस्योद्घाटन होता है और संसार का अधिक से अधिक कल्याण होने लगता है तब संसार को उनका अनुभव होता है, लेकिन ऐसे कितने पुरुष हैं जो उन उद्धारकर्त्ता महात्माओं के नाम को स्मरण रखते हैं। स्वार्थी संसार उनके सत्कृत्यों को भूल जाता है और उन प्रातःस्मरणीय पुरुषों के याद रखने की कोई आवश्यकता नहीं समझता।

पूर्व समय में अनेक सुरीति प्रचारक और पुण्यसंचय कराने वाली प्रवृत्तियों के प्रचारक महात्मा हो चुके हैं , जिनके द्वारा प्रचारित क्रियाओं से आम समाज का उद्धार हो रहा है, उनकी पवित्र कीर्ति का स्मरण रखना हमारा कर्तव्य है।

श्रेयांसकुमार का जन्म ऐसी परिस्थतियों में हुआ था जब समय को कुछ आवश्यकता थी । हस्तिनापुर जैसे विशाल राज्य के स्वामी सोमप्रभ व्याकुल थे। राजकुमार होने पर भी उनकी प्रकृति कोमल थी दया उनके रोम रोम में भरी थी। किसी का दुख देख सकना उनके लिये असह्य था। वे हर एक पीड़ित व्यक्ति की सेवा के लिये सदैव तैयार रहते थे इन्हीं गुणों के कारण जनता उन पर अपना प्राण न्योछावर करती थी ? महाराज सोमप्रभ उन्हें अपने राज्य की विभूति समझते थे उनकी प्रत्येक दयालु प्रवृत्ति में सहायक बनते थे उनके हृदय में भ्रातृ-प्रेम का निःछल प्रेम का झरना बहता रहता था।

सोमप्रभ का कोष जनता की सेवा के लिये था श्रेयांश कुमार को पूर्ण अधिकार था कि वे उसका मनचाहा उपयोग कर सकें। सोमप्रभ को विश्वास था वे जानते थे श्रेयांस द्वारा द्रव्य का कभी दुरुपयोग नहीं होगा श्रेयांस, राजा के विश्वासपात्र जनता के सेवक और देश की विभूति थे।

रात्रि आधी बीत चुकी थी। राजकुमार श्रेयांस निद्रा की शांतिदायक गोद में था उस समय उसने कुछ विचित्र स्वप्नों को देखा। पहले तो सुमेरु के चमकते हुये उच्च शिखर को देखा और फिर मधुर फल और नेत्ररंजक फूलों से सजे हुये विशाल डालियों वाले कल्पवृक्ष निरीक्षण किया-इसके बाद केशरी-सिंह, सूर्य और चन्द्र-मंडल, गंभीर समुद्र, ऊंचे कंधों वाला बैल, और मंगल द्रव्यों से सुशोभित देव मूर्ति देखी। आज तक उसने कभी स्वप्न नहीं देखे थे इन्हें देखकर उसे कुछ आश्चर्य हुआ। स्वप्नों का रहस्य हल किए बिना उसे चैन नहीं था। सबेरा होते ही भाई सोमपुत्र से इन स्वप्नों का हाल कहा-उन्हें भी स्वप्नों के फल जानने की इच्छा हुई, उन्होंने स्वप्न के फल बतलाने वाले विद्वान् को बुलाया उनके सामने स्वप्नों को कहा स्वप्न का फल बतलाते हुये वे बोले-

राजन् ! कुमार ने बहुत ही सुन्दर स्वप्न देखे हैं । स्वप्न विज्ञान की दृष्टि से यह किसी महान् फल की सूचना करते हैं। स्वप्न बतलाते हैं कि आपके यहां शीघ्र ही किसी महापुरुष का आगमन होगा जिसके आने से आपको संसार में कीर्ति और सम्मान मिलेगा। वह पुरुष मेरू जैसा उन्नत शरीर वाला, कल्पवृक्ष जैसा महान् फल देने वाला सिंह जैसी स्वतंत्र प्रवृत्ति वाला और विशाल कंधों वाला होगा, उसका प्रताप-सूर्य जैसा और यश चन्द्रमा जैसा निर्मल होगा, वह गुणरत्नों का समुद्र होगा। और उसके आने पर मंगल द्रव्यों से भूषित देव आप की प्रशंसा करेंगे। मैं विश्वास पूर्वक कहता हूं, मेरे बतलाए स्वप्नों का यह फल भी मिथ्या नहीं होगा। दोनों भाई स्वप्न का फल सुनकर प्रसन्न हुये और उन्हें इच्छित द्रव्य देकर स्वप्न फल को शीघ्र ही पाने की कामना करने लगे।

जो लोग परलोक मानते हैं, उनका यह अखंड विश्वास है कि संसार की श्रेष्ठ विभूतिएं ऐच्छिक सुख भोग, और विश्व विख्यात कीर्ति पूर्व जन्म में दिए हुये शुभदान के ही प्रतिफल हैं। दान देने वाला व्यक्ति स्वयं भी यशस्वी और वैभवशाली होता है। साथ ही दान मिलने वाले मानव का जीवन बनता है, और लोक कल्याण होता है। वह व्यक्ति जो किसी तरह के प्रत्युपकार की भावना न रखते हुये शांत भाव से सत्पात्रों को इच्छित दान देता है, संताप पूर्ण हृदयों को खिलाता है और उन्हें प्रसन्न होते देख स्वयं प्रसन्न होता है, कितना सौभाग्यशाली है, उसे क्या महात्मा नहीं कहना चाहिये ? जिसका हृदय दूसरों की सेवा के लिये उत्सुक रहता है जो दूसरों के दुःख दूर करने के लिये सब कुछ त्याग करता है, और जो दूसरों को आपत्ति में फंसा देखकर द्रवित हो उठता है, और तब तक शांति नहीं ही पाता जब तक वह उसके कष्टों का छुटकारा नहीं कर देता है। ऐसे ही दयालु और परोपकारी नरों से संसार के इतिहास का मुंह उज्वल होता है।

क्या वह मनुष्य देवता नहीं है जो दूसरों की सेवा के पथ पर अपने शरीर, वैभव और त्याग को फेंक देता है। मानव संसार एक दूसरों की सहायता पर निर्भर है, मानव जितनी भी अधिक दूसरों को सहायता पर

निर्भर है, मानव जितनी भी अधिक दूसरों को सहायता दे सकता है उतना ही वह उच्च बनता है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि हमें मानव जीवन दूसरे की सहायता के लिये ही मिला है, हमें यह समझना चाहिये कि शरीर मन और वाणी से हमने संसार का जितना कल्याण किया है उतना ही हमारे जीवन का मूल्य है।

मानव में दान देने की भावना उस समय पैदा होती है जब उसकी दृष्टि संसार में दुखी अंग की ओर जाती है, उसका कारण हृदय कष्टों को देखकर कुछ चोट खाता है। तब वह करूण भाव से दूसरों का सुख दूर करने की दृष्टि से अपने धन वैभव और शरीर का जो कुछ भी त्याग करता है, वह दान से पुकारा जाता है। स्वयं भोजन करने में कितना सुख है, जब हम क्षुधित होते हैं तब हमे भोजन मिल जाने पर कितनी प्रसन्नता होती है ? लेकिन जब हम अपना भोजन किसी दूसरे हमसे भी अधिक भूखे को देकर उसे प्रसन्नता देते हैं तब उसकी प्रसन्नता से हमें जो हर्ष होता है, उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

आज का सुन्दर प्रभात सौभाग्य शाली था, वैसे तो नित्य ही प्रभात होता है मध्यान्ह होता है, संध्या होता है, और फिर दिन समाप्त होता है, किन्तु आज के प्रभात को कुछ और ही दृश्य दिखलाना है इसलिये हम इसे सौभाग्यशाली ही कहेंगे।

कठिन तपस्या में मग्न रहने वाले योगीराज ऋषभदेव ने आज के सुन्दर प्रभात में अपना ध्यान समाप्त किया। आज तक उन्होंने छह माह के अनाहार व्रत को रखा था। उनके हृदय में एक ही कामना थी पूर्ण स्वतंत्रता की, वे शक्तिशाली थे। इन्द्रियाँ पर काबू रखना उनके लिये आसान था, किन्तु सब तो ऐसा नहीं कर सकते। सबके कल्याण की कामना से उन्होंने आज सोचा था मुझे आहार लेना चाहिये आगे चलकर साधुओं के लिये आहार लेना आवश्यक होगा, किन्तु भोजन कैसा हो ? उन्हें लोग किस तरह भोजन दे यह जानना भी तो आवश्यक है। मुझे इस प्रथा का परिचालन करना ही चाहिए, वे प्राणीमात्र पर समता की दृष्टि से देखने वाले संसार में मुनि आहारदान की प्रथा प्रचलित करने को भोजन के लिये निकले थे सरल स्नेह को मेदिनी तल पर विखेरते हुए, वे हस्तिनापुर की ओर आए।

तीव्र तपश्चरण की आग में तपा हुआ उनका तेजमय स्वर्ण शरीर देखकर मानवों के मस्तक उनके चरण में पड़ने लगे भक्ति के वेग से संपूर्ण नगर निवासी उन्हें आया देख अपने को कृतार्थ समझने लगे। पहले समय की लोक कल्याण की गाथाएं गाते हुये उनके सम्मान के लिये सुन्दर और बहुमूल्य पदार्थ भेंट में लाए, कोई उनकी कीर्तिमान गाकर और कोई उनकी जय बोलकर उन्हें प्रसन्न करने लगा। इस तरह उनके चारों ओर एक बड़ी भीड़ एकत्रित हो गई। यह कार्य उनके उद्देश्य विरुद्ध थे, परन्तु इनसे योगीश्वर ऋषभ का हृदय शोभित नहीं हुआ। उन्होंने इन बातों पर लक्ष्य तक नहीं दिया, वे अपनी भावना में मग्न थे। अपने उद्देश्य के पथ पर अडिग थे इस तरह चलते हुये वे राजपथ पर उपस्थित हुए।

सोमप्रभ और श्रेयांश ने उन्हें दूर से आते देख। भक्ति विनय नम्रता से उन्होंने चरण में प्रणाम किया उनकी पूजा की, चरणों का प्रक्षालन किया और उनकी चरणरज को अपने मस्तक पर चढ़ा कर अपने को कृतार्थ समझा। फिर वे उनके मन की भावना जानने के लिये और उनकी आज्ञा चाहने के लिये उनके

सामने नतमस्तक खड़े हो गये।

महात्मा वृषभ ने कुछ नहीं चाहा कुछ याचना नहीं की। जैन साधु कुछ नहीं चाहते कुछ याचना नहीं करते, भोजन तक भी वे नहीं मांगते, यह भी गृहस्थ की इच्छा पर अवलंबित है। वह उन्हें भक्ति से अयाचित वृत्ति से देगा वे उसे अनुकूल होने पर लेंगे, नहीं तो नहीं लेंगे व धन, पैसा और वैभव तो उनके लिये उपसर्ग है। जिसका वे त्याग कर चुके उसकी चाहना कैसी ? जिस पथ से वे आगे बढ़ चुके उस पर से फिर वापिस लौटना कैसा ?

धर्म संकट का यह समय था, सभी निस्तवध थे, कोई सोच नहीं सकते थे कि इस समय क्या करना ? कुछ क्षण इस तरह बीत गया।

श्रेयांस ने सोचा यह तपस्वी कुछ नहीं चाहेंगे न कुछ अपने आप कहेंगे तब इस समय क्या करना ? उनकी विचारक बुद्धि ने उनका साथ दिया, उन्होंने इस समय की उलझन को शीघ्र ही सुलझा लिया। इन्हें भोजन चाहिये यह समय भोजन का ही है, फिर पवित्र पदार्थ भी होना चाहिये पवित्रता के साथ ऐसा भी हो जो इनके शरीर को स्राता भी दे सके, वे सोच चुके थे। उनका हृदय हर्ष से भर गया हृदय ही में बोले मेरा सौभाग्य है। आज मैं इन तपस्वी को भोजन दूंगा पवित्र भावना से उनका मन भर गया। भक्ति के आवेश ने उन्हें गद् गद् कर दिया, वे शीघ्र ही बोलें-भगवन्! विराजें, आहार पवित्र है ग्रहण करें। फिर अपने भाई सोमप्रभ और रानी लक्ष्मीमती के साथ साथ उन्होंने ताजे गन्ने के रस का आहार दिया, अनुकूल समझकर महात्मा ने उसे ग्रहण किया। वे तुष्ट हुए, इसी समय महात्मा के भोजन दान के प्रभाव से सारे नगर में जय जय शब्द गूंज उठा, देवता प्रसन्न हुये और प्रकृति ने उनके कार्य को सराहा, गगन से पुष्प वृष्टि होने लगी, मलय-वायु बहने लगा और मानवों के मन हर्ष से फूल उठे।

श्रेयांस और सोमप्रभ ने तपस्वी ऋषभदेव को भोजन दे अपने को कृतार्थ समझा भोजन ले तपस्वी वन को चल दिए और आत्मध्यान मे तन्मय हो गये।

आज की जनता की दृष्टि में इस आहार दान का कोई महत्व न हो और इस घटना की ओर कुछ भी न दिया जाए। आज का सुशिक्षित समाज और अपनी विद्वता को सर्वश्रेष्ठ समझने वाले लोग इसे एक साधारण घटना समझकर भले ही भुला दें , लेकिन उस समय की परिस्थितियों और लोक प्रणालियों का जिन्होंने अध्ययन किया है वे इस घटना के महत्व को अवश्य मानेंगे।

श्रेयांस द्वारा दिए गए भोजन दान का यह अभूत पूर्व दृश्य हस्तिनापुर की जनता ने अपने जीवन में आज प्रथमवार ही देखा था। उन्होंने इसे बड़ा महत्वपूर्ण समझा, और समस्त जनता ने एकत्रित होकर उनके इस दान की प्रशंसा की। वे बोले-राजकुमार, हम लोग यह समझ नही सके थे कि इस समय हमें क्या करना चाहिए ? यदि आज अपने उन महात्मा को भोजन दान न दिया होता तो उन्हें भूखे ही लौटना होता और हम लोगों के लिये यह बड़े कलंक की बात होती। आज से छः माह पहले अयोध्या से उन्हें भूखा ही लौटना पड़ा था, और छह मास कठिन अनाहारक व्रत फिर से लेना पड़ा था। हम लोग यह नहीं

जानते थे कि उन्हें कौन सी वस्तु किस तरह देना चाहिए ? आपके बढ़ते हुये ज्ञान ने यह सब कुछ समझा अतः आप हमारे धन्यवाद के पात्र हैं । फिर हर्ष से फूली हुई हस्तिनापुर की जनता ने इस दिन को चिरस्मरणीय बनानके के लिये महोत्सव मनाया। इस महोत्सव में चक्रवर्ती भरत ने उपस्थित होकर श्रेयांस कुमार को अभिनंदन पत्र प्रदान किया। उपस्थित जनता ने दान के विशेष नियम और उपनियम जानने की इच्छा प्रकट की। कुमार श्रेयांस ने अपने बढ़े हुये ज्ञान के प्रभाव से दान की पद्धतियों का विशेष परिचय कराया। वे बोले-नागरिकों ! आगे चलकर साधु प्रथा की बहुत वृद्धि होगी और तपस्वी लोग भोजन के लिये नगर में आया करेंगे इन तपस्वियों को किसी तरह की इच्छा नहीं होगी ? यह धन, वैभव अथवा किसी वस्तुको नहीं चाहेंगे ये तो केवल अपने शरीर रक्षा के लिये भोजन चाहेंगे। इन्हें आदर से अपने घर बुलाकर श्रद्धा और भक्ति से अनुकूल भोजन देना होगा। इन साधुओं को शरीर से मोह नहीं होता, इन्हें तो केवल आत्म कल्याण की धुन रहती है। लेकिन अपने शरीर को दूसरों के उपकार के लिये वे स्थिर रखना चाहते हैं और आत्मध्यान के लिये जीवित रहते हैं ।

इसके लिए किसी को न सताकर भोजन लेते हैं । वह भोजन भी ऐसा हो जो खास तौर से उनके लिये न बनाया गया हो, क्योंकि वे अपने लिए किसी गृहस्थ को आरंभ में नही डालना चाहते। इसलिये हर एक गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि वह उन्हें भोजन दे। इसके सिवाय आगे ऐसा भी समय आयेगा जब कुछ मनुष्य अपने लिये पूरा भोजन उपार्जन न कर सकेंगे, और वे भोजन की इच्छा से किसी के पास जायेंगे। जब आपका कर्तव्य होगा कि आप उन भूखे पुरुषों को चाहे वे कोई भी हों भोजन दान दें। आगे चलकर अब कर्म क्षेत्र का विस्तार होगा उसमें आपको दूसरों की सहायता का भार लेना पड़ेगा। कुछ व्यक्ति ऐसे होंगे जिनके पास भोजन की कमी हो अथवा जो अपने बालकों के लिये योग्य शिक्षा का प्रबंध न कर सकें, रोग पीड़ित होने पर वे अपने उपचारों में असमर्थ हों, और बलवान पुरुषों द्वारा सहायता भी आप लोगों को करना होगी। इस सहायता के चार विभाग होगें, जिन्हें चार दान के नाम से कहा जायेगा। एक विभाग भोजन दान का दूसरा विद्यादान, तीसरा औषधिदान और चौथा अभय दान।

दान देकर अपने आप को बढ़ा नहीं समझना होगा। दान को केवल मानव कर्तव्य ही मानना पड़ेगा। अपनी शक्ति के माफिक थोड़ी अथवा अधिक जितनी सहायता हम दे सके उससे जी नहीं चुराना होगा, तभी हम लोक में शांति और सुख स्थिर रख सकेंगे, और हमारे नगर और ग्रामों में कोई भूखा, रोगी, अज्ञानी और पीड़ित नहीं रह सकेगा । हमें प्रतिदिन अपने लिये कमाये हुये धन में से कुछ अंश इस दान के लिये बचाकर रखना होगा, समय पर उसका सदुपयोग करना होगा।

दान की इन पद्धतियों को उपस्थित जनता ने समझा और उस दिन को चिर-स्मरणीय बनाने के लिये उसे अक्षय-तृतीया का नाम दिया।

चक्रवर्ती भरत ने उपस्थित जनता के सामने श्रेयांस कुमार को दानवीर पद से विभूषित किया।

उस समय की बताई हुई दान व्यवस्था समय के साथ फूली फली और बढ़ी, ओर आज तक उसका प्रचार होता रहा। आज का मानव समाज भी उनकी उस दिन की प्रचारित दान प्रथा का आभारी रहेगा।

महाबाहु बाहुबलि

(महायोग और स्वाभिमान के स्तंभ)

(1)

आज भारत अहिंसा और सत्य के पथ पर चलने के प्रत्यक्ष में है किन्तु आज भी अधिकांश भारतीयों का यह मत है कि पूर्व समय में भारत की बढ़ती अहिंसा ने कायरता और पुरुषार्थ हीनता के अंकुरों को पैदा किया है।

भारत में कुछ ऐसा विचार प्रवाह स्थान पा रहा है कि भारत के पतन का मुख्य कारण उसकी अहिंसा रही है, जो न्याय और दंड देने से रोकती है और जैन धर्म की अहिंसा ने भारतीय वीरों को अपनी आत्मरक्षा करने में असमर्थ और निर्बल बनाया है। लेकिन यह उनका एकांगी निर्णय है। उन्होंने जेन धर्म के अहिंसा पहलू पर ठंडे दिल से विचार नहीं किया है। उसकी शक्ति और उपयोग की ओर उन्होंने नहीं देखा। वास्तव में वे अहिंसा सिद्धान्त के तल तक पहुंचे ही नहीं हैं, अन्यथा उन्हें ऐसा कहने का साहस ही नहीं होता।

अहिंसा सिद्धांत वीरत्व शक्ति की नीवं पर खड़ा हुआ है। जो वीर नहीं है जिसमें साहस और आत्मबल नहीं है वह अहिंसा का पुजारी ही नहीं बन सकता। अहिंसा का स्थान कायरता और निर्बलता के बहुत ऊपर है। सच्चा शूरवीर और आत्मविजयी योद्धा ही अहिंसक बन सकता है। अहिंसा वीरत्व की प्रदर्शक है। अहिंसक वेकार किसी की हत्या नहीं करेगा। अपने मन बहलाने के लिये निर्बल प्राणियो को अपने शस्त्र का निशाना नहीं बनायेगा। निर्बल और कमजोर व्यक्तियों के सामने अपने बल और शस्त्र का नृशंस प्रयोग नहीं करेगा, वह हत्यारा और जालिम नहीं बनेगा। अहिंसा और जैन अहिंसा को समझने वाला वीर सैनिक निर्बल को कभी न सतायेगा, कमजोरों की हत्या नही करेगा, बेकार किसी का प्राण नहीं लेगा और अपने विनोद के लिये मुक्त प्राणियों का वध नहीं करेगा। वह निर्बलों की रक्षा करेगा। वह अन्याय और अत्याचार को कभी सहन न करेगा, और अपने अधिकारों की रक्षा और अन्याय के लिये वह शस्त्र धारण करेगा, युद्ध करेगा और युद्ध का संचालन करेगा।

निर्बलरक्षा, अन्यायदमन, स्वत्वरक्षण यह जैन अहिंसक का कर्तव्य है। स्पष्ट शब्द में जैन अहिंसक, स्वाभिमानी, वीर और शक्तिशाली सैनिक होगा।

जैन साहित्य ऐसे वीरों के गौरव पूर्ण चरित्रों से भरा पड़ा है, जिन्होंने राष्ट्ररक्षा और जनता के लिये अपने महान् वीरत्व का परिचय दिया है, भयंकर युद्ध किए है, और अत्याचारियों को दंड दिया है। संसार के प्रचंड वीरों में उन जैन वीरों का प्रधान स्थान रहेगा।

(2)

महाबाहु बाहुबलि का जन्म वीरता के प्रतिनिधि के रूप में हुआ था वे लंब-बाहु थे, उनका विशाल वक्षस्थल और उन्नत ललाट दर्शनीय था। उनके प्रत्येक अंग से अपूर्व तेज, उत्साह और वीरत्व प्रदर्शित होता था। वे तेजस्वी स्वाभिमानी और स्वातंत्र्य थे। उनके जीवन का ध्येय महान था, वे सोचते थे कि जीवन चाहे नष्ट हो, सांसारिक सुख भी न मिले, कठिनाईयों का सामना करना पड़े, किन्तु सत्य से विचलित नहीं होना। अपनी स्वाधीनता नहीं खोना और स्वाभिमान को जागृत रखना, बनावट उन्हें प्रिय नहीं थी, शौक मौज के जीवन से उन्हें घृणा थी, सादा जीवन और उच्च विचार यह उनके जीवन के मुख्य सिद्धांत थे। आत्म प्रशंसा वे पसंद नहीं करते थे। खुशामदी और व्यर्थ बातों में समय खोने वाले व्यक्तियों का उनके यहां स्थान नहीं था। किसी बात का निर्णय करने के पहिले वे अपनी तर्कपूर्ण बुद्धि का पूरा प्रयोग करते थे, लेकिन अपने स्वयं निर्णय के विरूद्ध वे किसी शक्ति का सामना करने के लिये तैयार रहते थे। अपने पिता ऋषभदेव जी से उन्हें पोदनपुर का राज्य मिला था। पोदनपुर राज्य की सीमा थोड़ी सी ही थी, किन्तु उन्हें कोई अन्य उत्कंठा नहीं थी, वे अन्याय अथवा बलपूर्वक किसी के राज्य पर अधिकार नहीं चाहते थे, अपने राज्य से उन्हें जो आय होती थी उसी पर संतोष रखते थे।

बाहुबलि के बड़े भाई भरत अयोध्या के राजा थे किन्तु वे उनसे कोई सहायता नहीं चाहते थे ओर न किसी तरह की कामना रखते थे। उन्हें उनके वैभव से विद्वेष भी नहीं था, अपना अग्रज मानकर के उनका उचित आदर करते थे।

समय दोपहर का था। बाहुबलि का राज्य दरबार लगा हुआ था। मंत्री गण किसी एक विचार में मग्न थे, इसी समय द्वारपाल ने आकर निवेदन किया -

महाराज ! अयोध्या का एक दूत आपके दर्शन की इच्छा रखता हुआ द्वार पर खड़ा है। उसे आने की आज्ञा मिली। दूत दरबार में आया, प्रणाम करके उसने अपने आने का कारण बतलाया। वह बोला- आपके अंग्रज भरत के चक्रवर्ती सम्राट् भरत नरेश भारत विजय करके लौट आए हैं , उनके प्रचंड पराक्रम के सामने सभी मंडलेश्वर राजाओं ने अपने मस्तक झुका दिए हैं उन सबका क्षीण पौरूष आज चक्रवर्ती के चरणों पर लौट रहा है आपके पास उन्होंने एक पत्र भेजा है और निवेदन किया है कि आप इसका शीघ्र ही उत्तर प्रदान करें। बाहुबलि जी ने पत्र ले लिया। उन्होंने उसे पढ़ा। पत्र में लिखा था-

तुम्हें यह मालूम हो गया होगा कि मैं आज भारत विजय प्राप्त करके लौटा हूं, तुम मेरी इस विजय यात्रा से अवश्य प्रसन्न होंगे। मैं तुम्हें इस विजयोत्सव में सम्मिलित हुआ देखना चाहता हूं। साथ ही मैं यह भी चाहता हूं जिस तरह भारत के सभी राजाओं ने मेरे प्रभुत्व को स्वीकार किया है उसी तरह तुम भी मेरे प्रभुत्व को स्वीकार करो मेरी आज्ञा में रहकर मेरा अनुशासन मानो। मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूं, साथ ही भारत का चक्रवर्ती सम्राट् हूं, इसलिये तुम्हें मेरे महत्व को मान कर मेरे पास आकर मुझे प्रणाम करना

चाहिये और अपने राज्य को सुरक्षित रखना चाहिये। यह मेरा निश्चिय है। मैं चाहता हूं कि पत्र मिलते ही तुम मेरी आज्ञा का पालन करो।

तुम्हारा-भरत(चक्रवर्ती)

पत्र पढ़ते ही बाहुबलि का चेहरा रक्तवर्ण हो गया। मस्तक ऊंचा हो गया। नेत्रों में वीर ज्योति झलकने लगी। वे चक्रवर्ती कूटनीति समझ गए, वे सोचने लगे भारत विजय करके भी चक्रवर्ती की विजय लालसा पूर्ण नहीं हुई, और अब वे मेरे राज्य को हडपना चाहते हैं। मुझे अपना गुलाम बनाना चाहते हैं, लेकिन यह कभी नहीं होगा। बाहुबलि की आत्मा कभी गुलाम नहीं बन सकती। वह किसी का प्रभुत्व स्वीकार नहीं कर सकती फिर चाहे वह चक्रवर्ती और मेरा बड़ा भाई ही क्यों न हो। उससे मेरा भाई का अब क्या नाता जो मेरी स्वाधीनता छीनना चाहता है। राज्यनीति में नातेदारी का क्या संबंध, जो भी हो मैं अपनी स्वाधीनता की रक्षा करूंगा , अपने प्राण सर्वस्व न्योछावर करके भी अपनी स्वतंत्रता स्थिर रखूंगा।

मुझे यह राज्य मेरे पिता ने दिया है जिस तरह उन्हें दिया था। मैं अपने राज्य का उसी तरह स्वामी हूं जिस तरह वे हैं। मेरा यह पैतृक अधिकार है, अपने अधिकारों की रक्षा के लिये मैं भाई का कृपा पात्र नहीं बनना चाहता, मुझे उनके विजयोत्सव में क्यों सम्मिलित होना चाहिए, जब कि इस उत्सव का लक्ष्य प्रभुत्व प्रकाशन है। उनकी विजय से मुझे ईर्षा नहीं है। फिर उन्हें मेरी स्वाधीनता से द्वेष क्यों है ? वे मेरी स्वाधीनता क्यों नही देखना चाहते ? क्या मेरी स्वाधीनता छीने बिना उसका चक्रवर्ती स्थिर नहीं रह सकता ? इसका क्या अर्थ है कि भारत के सभी राजाओं ने उनका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया है और अपनी स्वाधीनता खो दी है तो मैंभी उसे नष्ट हो जाने दूं ? वे राजा लोग यदि आजादी का रहस्य नहीं समझते उनके हृदय यदि इतने निर्बल हो गए हैं तो में उसके रहस्य को समझता हुआ भी क्यों गुलाम बनूं ? नहीं, यह कभी नहीं होगा, भले ही इसके लिये मुझे अपने भाई का विरोधी बनना पड़े और चाहे सारे संसार का विरोध करना पड़े, मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूंगा, और आजादी का मूल्य चुकाऊंगा।

उन्होंने उसी समय पत्र का उत्तर लिखा-

प्रिय अग्रज ! अभिवादनम्।

भारत विजय के उपलक्ष्य में बधाई ! एक भाई के नाते मुझे इस विजयोत्सव में अवश्य सम्मिलित होना चाहिये था लेकिन नहीं हो रहा हूं इसका उत्तर आपके पत्र का अंतिम भाग स्वयं दे रहा है। मैं एक स्वतंत्र राजा हूं, मेरे पूज्य पिता ऋषभदेव जी ने मुझे यह राज्य दिया है, फिर मुझे आपकी आधीनता स्वीकार करने की क्या आवश्यकता ? आप मेरी स्वाधीनता नष्ट करने पर तुले हुये हैं। ऐसी परिस्थिति में आपकी कोई भी आज्ञा पालन करने से मैं इंकार करता हूं। आप मेरे बड़े भाई हैं। भाई के नाते मैं आपकी प्रत्येक सेवा के लिए तैयार हूं, लेकिन जब मैं सोचता हूं कि आप चक्रवर्ती हैं और इस चक्रवर्ती के प्रभुत्व

के नाते मुझ पर अपनी आज्ञा चलाना चाहते हैं तब आपकी सेवा करना में अपना अपमान समझता हूं। मैं जानता हूं मेरी यह स्पष्टता आपको अवश्य खलेगी लेकिन इसके सिवाय मेरे पास ओर कोई प्रत्युत्तर नहीं है। आपका- बाहुबलि।

पत्र लिखकर उन्होंने उसे बंद किया और दूत को देकर उसे चक्रवर्ती के लिये देने को कहा-

दूत ने पत्र ले जाकर चक्रवर्ती को दिया। उन्होंने पत्र पढ़ा। पढ़ते ही उनका हृदय क्रोध से प्रदीप्त हो गया। वह बोल उठे, बाहुबलि की इतनी धृष्ठता ? वह मेरा भारत विजयी चक्रवर्ती का प्रभुत्व स्वीकार नहीं करना चाहता ? एक साधारण राज्य के स्वामित्व का उसे इतना अहंकार है ? अच्छा मैं अभी उसका यह अभिमान शिखर टुकड़े टुकड़े कर दूंगा। यह कहते हुये उन्होंने बाहुबलि से युद्ध करने के लिये अपने प्रधान सेनापति को सेन्य सजाने की आज्ञा दी।

चक्रवर्ती के विद्वान् मंत्रियों ने इस बन्धु विरोध को सुना। भाई भाई में बढ़ती हुई इस युद्धाग्निको उन्होंने रोकने का प्रयत्न किया। वे चक्रवर्ती से बोले-सम्राट् ! आप राजनीति विशारद हैं, दोनों भाइयों के परस्पर के युद्ध से भीषण अनिष्ट होने की आशंका है। कुमार बाहुबलि न्यायप्रिय और विवेकशील हैं, इसलिये उनके पास एक बार दूत भेजकर फिर से उन्हें समझाया जाये, यदि इस बार भी वे न समझें तो फिर सम्राट् जैसा उचित समझें वैसा हुक्म दें।

मंत्रियों की सम्मति को चक्रवर्ती ने पसन्द किया और एक पत्र लिखकर उसे दूत को देकर बाहुबलि के पास भेजा। पत्र में उन्होंने लिखा था-

प्रिय अनुज ! सस्नेहाशीर्वाद !

तुम्हारा पत्र मिला, पढ़कर आश्चर्य हुआ। तुम मेरे भाई हो, मैं चाहता था तुम्हारे सम्मान की रक्षा हो और मुझे तुमसे युद्ध न करना पड़े। तुम स्वयं आकर मेरा प्रभुत्व स्वीकार कर लो, किन्तु मैं देख रहा हूं, तुम बहुत उद्दंड हो गये हो। मैं तुम्हें समझा देना चाहता हूं, कि राज्यनीति में बंधुत्व का कोई स्थान नहीं है वहां तो न्याय की ही प्रधानता है। न्यायतः भारत की प्रत्येक भूमि पर मेरे अधिकार को मानकर ही कोई राजा अपना राज्य स्थिर रख सकता है, तुम यह न समझना कि बंधुत्व के आगे मैं अपने न्याय अधिकारो को छोड़ दूंगा।

एक बार मैं तुम्हारी उदण्डता के लिये क्षमा प्रदान करता हूं और मैं तुम्हें फिर लिखता हूं कि अब भी यदि तुम मेरे सामने उपस्थित होकर मेरा प्रभुत्व स्वीकार कर लोगे, तो तुम्हारा राज्य और सम्मान इसी तरह सुरक्षित रहेगा। लेकिन यदि तुमने फिर ऐसी धृष्टता की तो मुझे यह सहन नहीं होगा और उसके लिये मुझे तुमसे युद्ध करना होगा मैं तुम्हें चेतावनी देता हूं। तुम्हारे सामने दो चीजें उपस्थित हैं, आधीनता अथवा युद्ध। दोनों में से तुम जिसे भी चाहो स्वीकार कर सकते हो। **तुम्हारा भरत (चक्रवर्ती)**

दूत ने पत्र लाकर बाहुबलि को दिया, पत्र पढकर बाहुबलि का आंतरिक आत्म सम्मान जागृत हो

उठा, लेकिन वे इतने बड़े युद्ध का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेना चाहते थे इसलिये उन्होंने मंत्रियों से परामर्श कर लेना उचित समझा।

मंत्रियों ने कहा-महाराज! हम युद्ध के इच्छुक नहीं हैं, लेकिन हमें अपनी आजादी की भी रक्षा करना चाहिये। यह प्रश्न जनता और देश की स्वतंत्रता का है, इसके लिये हमें अपना सब कुछ बलिदान करने से नहीं हिचकना होगा। अपनी प्रजा को दूसरों को गुलामी करते हुऐ हम नहीं देख सकेंगे। हमें अपनी आत्म रक्षा करना होगी, उसका चाहे कितना मूल्य देना पड़े।

बाहुबलि भी यही चाहते थे, उन्होंने मंत्रियों के उत्तर की प्रशंसा और फिर उत्तर पत्र लिखना प्रारंभ किया।

प्रिय अग्रज, अभिवादनम्।

पत्र मिला। जीवन रहते हुये मैं किसी की आधीनता स्वीकार करना नहीं चाहता यह मेरा निश्चित मत है। आपने मुझे युद्ध की धमकी दी है, और यदि आपको युद्ध ही प्रिय है, आप युद्ध करके मेरी स्वाधीनता नष्ट करने में ही अपना गौरव और न्याय समझते हैं, तो मैं इसके लिये तैयार हूं। मैं युद्ध से नहीं डरता। यह तो वीरो का एक खेल है, इस आतंक का मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं लेकिन मैं आपको चेतावनी देता हूं कि युद्ध में बाहुबलि का यदि कोई प्रतिद्वन्दी है, तो वह चक्रवर्ती ही हैं, फिर भी आप बहुत सोच समझ कर युद्ध में उतरें नहीं तो यह युद्ध आपको बहुत महंगा पड़ेगा। **आपका बाहुबलि।**

दूत को पत्र दिया वह शीघ्र ही उसे चक्रवर्ती के पास ले गया। उन्होंने पड़ा, अग्नि में घृत की आहुति पड़ी। उनके क्रोध का पास अंतिम डिग्री तक पहुंच गया, नेत्र अग्निज्वाला की तरह जल उठे, भुजाएं फडक उठीं, वे अपने भड़कते हुये क्रोध को रोक नहीं सके उन्होंने सेनापति को संपूर्ण सेना सजाकर पोदनपुर पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। युद्ध का बाजा बज उठा। भूमंडल को अपने प्रचंड वेग से कंपाती हुई चक्रवर्ती की सेना ने पोदनपुर को चारों ओर से घेर लिया।

चक्रवर्ती की सेना ने नगर को घिरा हुआ देखकर बाहुबलि ने भी अपनी सेना संगठित की और चक्रवर्ती से युद्ध करने के लिये तैयार हो गए। दोनों ओर के सिपाही आज्ञा मिलते ही एक दूसरे से भिड़ने को तैयार थे, लोहा से लोहा बजने को था, युद्ध की बलिदेवी सैनिकों का रक्तगत करने को लालयित थी। इसी समय दोनों ओर के मंत्रियों ने आपस में एक सलाह की। दोनों भाई शक्तिशाली और बलवान है, झगड़ा भी दोनों भाइयों का है इसलिये भाइयों के इस विवाद में निरपराध सैनिकों का रक्तपात क्यों किया जाय ? दोनों भाई आपस में द्वन्द युद्ध करके अपनी शक्ति का अनुमान लगा लें और हार जीत का निर्णय कर लें।

मंत्रियों के निर्णय दोनों वीरों ने स्वीकार किया। दोनों ओर के सैनिक ज्यों के त्यों अपने स्थान पर खड़े रहे।

युगल बन्धुओं ने हार जीत के लिये तीन युद्ध निश्चित किए। नेत्रयुद्ध, जलयुद्ध और मलयुद्ध। वीर

बन्धु अखाडे में उतरे। दोनों ही शक्तिशाली और सुगठित शरीर वाले थे, दोनों का युद्ध देवताओं के भी देखने योग्य था।

सबसे पहले नेत्र युद्ध हुआ। बाहुबलि का शरीर भरत से कहीं अधिक ऊँचा था इसलिये अपने नेत्रों को भरत के सामने निर्निमेष और स्थिर रखने में उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ, किन्तु चक्रवर्ती को अपनी दृष्टि अधिक समय तक ऊपर उठाए रखने में कष्ट का अनुभव होने लगा, वे अपनी दृष्टि को स्थिर नहीं रख सके और उन्हें इस युद्ध में अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी।

अब जल युद्ध की बारी आई। दोनों ही जलयुद्ध के लिये सरोवर में उतरे और एक दूसरे पर जल के छींटें डालकर हराने की कोशिश करने लगे। बाहुबलि के शरीर की ऊंचाई ने यहां भी उनको विजयी घोषित किया। वे अपने हाथों के छीटों से चक्रवर्ती के मुंह आंखों तक उड़ाकर उन्हें बेकल करने लगे जबकि चक्रवर्ती के उड़ाए हुए जलकण के प्रहार से बाहुबली का कुछ नही हुआ और इस जल युद्ध में भी उन्हें अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी।

अब मल्लयुद्ध की बारी, यह अंतिम युद्ध था। दोनों वीर योद्धा रंगभूमि में उतरे ओर अपनी मल्लविद्या का चमत्कार दिखाने लगे। युगल वीर मल्ल विद्या में निपुण थे, दोनों ही युद्ध के दांव पेंच को जानते थे इसलिये अधिक समय तक युद्ध करके भी एक दूसरे को पराजित नहीं कर सके। युद्ध कुछ अधिक समय तक चलता। इसी समय दर्शकों ने देखा दीर्घ शरीर वाले बाहुबलि ने अपने विशाल बाहुपाशों द्वारा चक्रवर्ती को ऊपर उठा लिया और फिर उनके दृढ़ शरीर को अपने कंधों पर रख लिया। यदि वे चाहते तो चक्रवर्ती का शरीर पृथ्वी छूता दिखलाई देता लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया और उनके शरीर को अपने कंधो पर से धीरे धीरे भूतल पर उतार दिया।

बाहुबलि इस अंतिम युद्ध में भी विजयी हुए इस विजय ने सभी दर्शकों को आश्चर्य में डाल दिया।

चक्रवर्ती तीनों युद्ध में पराजित हुए। संपूर्ण भारत पर अपनी विजय की पताका फहराने वाला चक्रवर्ती अपनी इस हार को सहन नहीं कर सका, उसका प्रताप पूर्ण मुंह मंडल कुछ समय में प्रभाहीन हो गया। न्याय का नाटक समाप्त हो गया था, अब अन्याय की बारी थी। अविवेक ने चक्रवर्ती का साथ दिया, वे अपनी संपूर्ण राजनीति को तिलांजलि दे बैठे। उन्होंने क्रोधित होकर अपने चक्र को संभाला और उसे अपनी अंगुली पर घुमाकर देखते ही देखते बाहुबलि के ऊपर चलाया। इस अन्याय को देखकर दर्शकों का मन ग्लानि से भर गया, वे उसके प्रतिकार के लिये कुछ कहना ही चाहते थे कि इसी समय उन्होंने देखा चक्रवर्ती का चलाया हुआ चक्र बाहुबलि शरीर को छू भी न सका, वह उनकी प्रदक्षिणा देकर चक्रवर्ती के पास वापिस लौट आया।

बाहुबलि के धैर्य की यह अंतिम सीमा थी, सभी राजाओं ने उनके इस धैर्य को देखा, वे चक्रवर्ती को इस अन्याय युद्ध के लिए धिक्कार देने लगे।

अपने भाई चक्रवर्ती इस अन्याय और राज्य लोलुपता का बाहुबलि के पवित्र हृदय पर बड़ा प्रभाव

पड़ा। उनका हृदय इस कुकृत्य से विचिलित हो उठा। उन्होंने स्वप्न में भी उनके इतने नीचे गिरने की बात नहीं सोची थी। युद्ध इस अध्याय ने उनके मन को बदल दिया वे सोचने लगे, इस प्रकार अन्याय और कुकृत्य कराने वाली इस राज्य लिप्सा को सैकड़ों धिक्कार हैं। आह ! देखो, इस राज्य तृष्णा में पागल हुआ मनुष्य अपने अंतरात्मा के विवेक और कर्त्तव्य को किस तरह ठुकरा देता है, और दूसरों के रक्त का प्यासा बन जाता है। यह भरत मेरा भाई है, हम दोनों की जन्मदात्री एक ही जननी है। हमारे शरीर में एक ही मां का खून वह रहा है, लेकिन राज्य लोलुपता ने इसे भुलाकर मेरा वध करने को मजबूर कर दिया। तब क्या यह अपने को अमर समझता है ? क्या यह समझता था कि मुझे मारकर भारत का विजयी सम्राट् कहलाकर इस जीति हुई वसुधा का अनंतकाल तक उपभोग करूंगा ? लेकिन इसमें बेचारे इस चक्रवर्ती का क्या अपराध है, यह तो सब इसके मन की अनुचित महत्वाकांक्षा का प्रभाव है, यह तो उसका गुलाम है, यह बिलकुल निर्दोष है। विचार करते हुये वे अपने हृदय की निर्दोष सरलता का परिचय देते हुये बोले-

भाई भरत ! मेरे अखंड शरीर पर चक्र का प्रहार करके आपने उचित कार्य नहीं किया। संसार में अपना निर्मल यश फैलाने वाले भगवान् ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र के लिए गौरवशाली नहीं। यह कार्य करके आपने अपने वंश की निर्मल कीर्ति को कलंकित किया है, लेकिन इसके लिये भी आपको क्षमा करता हूं। आप समझते होंगे मुझे राज्य की आकांक्षा है, लेकिन ऐसा नहीं है, यह चंचला राज्य लक्ष्मी मेरे लिये आकर्षण की वस्तु नहीं है, यह तो आपके लिये सौभाग्य शालिनी बनी रहे। मैंने यह युद्ध राज्य लालसा से नहीं किया था, मेरे युद्ध का उद्देश्य तो अन्याय का प्रतिरोध और अपनी स्वाधीनता रक्षण का था। स्वाधीनता के इतिहास में मेरा यह युद्ध प्रथम पृष्ठ का काम देगा और आगे आने वाले स्वाधीन वीरों के लिये स्वाधीनता की दिशा में मार्ग प्रदर्शक होगा। मैं राज्य लोलुपी नहीं हूं, यह मैं केवल शब्दों से ही नहीं कह रहा हूं, मैं आज से ही इस राज्यलक्ष्मी का त्याग करता हूं। मैं तो अब अपना डेरा जंगल में जमाऊंगा, यह राज्य-लक्ष्मी आप जैसे लोलुपों के लिये मैं छोड़े जाता हूं। आप इसका आजादी से उपभोग कीजिए।

बाहुबलि जी ने यह सब कहा और फिर अपने वीर पुत्रों को बुलाकर उसी युद्ध भूमि में उन्हें राज्यतिलक किया और वे प्रचंड आत्मवीर अपने सभी राज्य चिन्हों और वस्त्रों को फेंककर उसी समय तपस्वी बन गए।

चक्रवर्ती भरत का हृदय आत्म ग्लानि से भर गया, उन्हें अपने इस कुकृत्य पर हार्दिक पश्चाताप हुआ, और उन्होंने भाई बाहुबलि से क्षमा याचना की। उन्हें राज्य में लाने के लिये बहुत आग्रह किया किन्तु अब तो समय निकल चुका था, कमान से तीर छूट चुका था, बाहुबलि ने क्षमा प्रदान तो की परंतु वे अपने निश्चय को नहीं बदल सके और सबके देखते ही देखते वे जंगल की ओर चल दिए।

(3)

योगी बाहुबलि निर्जन गुफा में कठिन साधना निमग्न थे। आत्मचिंतन में वे पूर्ण संलग्न थे। नश्वर शरीर के स्नेह जाल को उन्होंने तोड़ दिया था, जगज्जयिनी सुधा को जीत लिया था। वे विश्वास की तरह अटल व

सुधा की तरह निश्चल, और गगन की तरह निर्मल थे उन्होंने एक वर्ष का अनाहारक व्रत धारण किया था। ध्यान में अचल खड़े हुये, वह योगीश अकृत्रिम मेरु दंड की तरह मालूम पड़ते थे। ग्रीष्म की प्रचंड ज्वालाएं, शीतऋतु की बर्फ को गला देने वाली ठंडी हवा और वर्षा काल की मूसलधार मेघवर्षा उन्हें ध्यान से चलित नहीं कर सकी थी। वृक्षों से वेष्ठित लता मंडपों ने उनके सारे शरीर को आच्छादित कर लिया था। सर्पों ने उनके शरीर के निकट ही गहरे बिल बना लिये थे, उनके ऊंचे फणों से जहर की तीव्र ज्वालाएं निकलती थी लेकिन योगी बाहुबलि निर्भय थे, वह टस के मस नहीं होना चाहते थे।

कठोर तपश्चरण के प्रभाव से उनके दिव्य शरीर में अनेक चमत्कारिणी ऋद्धियों ने स्थान लिया था। कठिन उपसर्गों और यातनाओं के सामने तपश्चर्या की आग में तपा हुआ उनका स्वर्ण वर्ण शरीर तनिक भी चलित नहीं हुआ था। तप के बल से तपे हुये उनके अलौकिक आत्म प्रभाव के आगे देवों और विद्याधरों के मुकुट झुक जाते थे लेकिन उन्हें इसका कुछ भी भान नहीं मानो उनका आत्मा किसी अद्‌भुत आनंद के गहरे समुद्र में गोते लगा रहा हो ऐसे थे वे योगीराज बाहुबलि।

आज उनका एक वर्ष का अनाहार व्रत समाप्ति पर था, आज ही चक्रवर्ती भरत उनके दर्शनार्थ आए थे। योगीराज सारा शरीर दिव्य प्रकाश से जगमगा उठा था। चक्रवर्ती ने उनके दिव्य शरीर को देखा, उनकी पवित्र आत्मा के दर्शन किए। फिर वे सोचने लगे-एक वर्ष के अनाहारक व्रत और कठोर तपश्चरण करने पर भी इन्हें अब तक कैवल्य क्यों नही हुआ, और वे शीघ्र ही इसका कारण जान गए। उन्होंने योगेश्वर की मन की भावना को समझा, वे मन ही मन कहने लगे-ओहो ! योगी बाहुबलि के हृदय में अब भी यह भावना बनी हुई है। वे अब भी समझ रहे हैं कि मैं चक्रवर्ती भरत की भूमि पर खड़ा हुआ हूं इसी छोटे से कांटे ने उनके मन को व्यथित कर रखा है, मैं उनके हृदय के इस शूल को निकालूंगा।

चक्रवर्ती भरत का मन पहले ही बदल चुका था। राज्य लक्ष्मी का अब उन्हें वह मोह नहीं रह गया था, वे शीघ्र ही उनके चरणों में नत होकर बोले-योगीराज ! यह पृथ्वी स्वतंत्र है, इसका कोई भी स्वामी नहीं है। मानव के मन का अहंकार ही इस निश्चल वसुंधरा को अपना कहता है, मेरे मन का अहंकार अब गल गया है। आप अपने हृदय के कांटे को निकाल दीजिए यह समस्त भूमि आपकी है, भरत तो अब आपका दास है, उसका अब अधिकार ही क्या रह गया है ?

भरत जी के सरल शब्दों ने योगेश्वर के हृदय का शूल निकाल कर फेंक दिया, उन्हें उसी समय कैवल्य के दर्शन हुए। केवलज्ञान प्राप्त कर उन्होंने विराट विश्व के दर्शन किए।

देवताओं ने उनकी पवित्र आत्मा पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की और उनकी चरण रज को मस्तक पर चढ़ाकर अपने जीवन को सफल समझा।

⌘⌘⌘

द्वितीय खंड- युगाधार

योगी सगरराज

(मोगमार्ग से निकलकर योग में आने वाले महापुरुष)

(1)

राजा सगर का राज्य दरबार लगा हुआ था, वे सिंहासन रूढ़ थे। रत्नों की प्रभा से उनका सिंहासन चमक रहा था । मणि ओर मोतियों के सुन्दर चित्र उनमें अंकित किए गये थे । सिंहासन एक ओर प्रधानमंत्री और दूसरी ओर प्रधान सेनापति थे। इसके बाद मंत्री और अंतरंग परिषद के सभासद थे। देश और विदेशों के नरेश आकर उन्हें भेंट प्रदान करते थे, राजा उन्हें आदर से योग्य स्थान पर बैठने की आज्ञा देकर उनका सन्मान करते थे। श्रावकगण उनके अटूट ऐश्वर्य का मधुर शब्दों में गान कर रहे थे- वे कह रहे थे-पृथ्वीपति! आपके प्रबल पराक्रम से अखिल भारत के राजाओं के हृदय कंपित होते हैं , आपके ऐश्वर्य और वैभव की तुलना करने की शक्ति कुबेर में नही है, देव बालाएं आपके ऐश्वर्य निवास में रहने की अभिलाषा रखती है। भारत में ऐसा कौन व्यक्ति है जो आपके सामने नतमस्तक न हुआ हो ? जिसकी ओर आपकी कृपा-दृष्टि होती है वह क्षण में महान् बन जाता है।

राजा सगर अपने अनंत वैभव और अखंड प्रताप के गीतों को सहर्ष सुन रहे थे । महामंडलेश्वर राजाओं ने उनकी कृपा -प्राप्ति लिये विनीत भाव से उनकी ओर देखा, उन्होंने मंत्रियों से कार्य सम्बन्धी कुछ परामर्श किया, जनता के सुख दुख की बातें सुनी और दरबार समाप्त किया।

पार्श्व रक्षकों के साथ उन्होंने राज्यमहल मे प्रवेश किया उसी समय उनके कानों में एक मधुर ध्वनि गूंज उठी-

पथिक माया में मग्न न होना ।
मिथ्या विश्व प्रलोभन में रे, आत्म शक्ति मत खोना ।
मोहक दृश्य देख यह जग का इस पर तनिक न फूल ।
मतवाला होकर रे मानव ! इसमें तू मत भूल ।
पथिक ! माया में मग्न न होना ।।

गीत तन्मयता के साथ गाया जा रहा था, चक्रवर्ती ने उसे सुना। गीत की मधुर ध्वनि पर उनका मन मचल उठा, वे उसके पदलालित्य पर विचार करने लगे। उन्होंने जानना चाहा कि यह मधुर गीत कौन गा रहा है ? विचार करते हुये अपने राज्य महल में प्रवेश कर चुके थे। यौवन के वेग से उन्मत्त सुन्दरियों ने

उनकी ओर सस्नेह देखा, मधुर भावों की झंकार उठी, वे उनके स्नेह बंधन में जकड़ गए।

(2)

योगीराज चतुर्मुख जी नगर में उद्यान में पधारे थे। उनका कल्याणकारी उपदेश सुनने के लिये नगर की जनता एकत्रित होकर जा रही थी। सम्राट् सागर ने भी उनका आना सुना, वे उनके उपदेश से वंचित रहना नहीं चाहते थे, मंत्रियों और सभासदों के साथ वे योगीराज का उपदेश सुनने गए।

मणिकेतु नामक देव भी उनका उपदेश सुनने आया था, वह राजा सगर के पूर्वजन्म का साथी था, उसने इन्हे देखा और पहिचाना। पूर्व स्नेह के तार झंकरित हो उठे । पूर्व जन्म की वे क्रीड़ाऐं, विनोद लीलाएं और स्नेह वार्ताएं हृदय-पटल पर अंकित हो उठीं। उसे वह प्रतिज्ञा भी याद आई जो उन्होंने एक समय की थी। कितना मधुमय समय था, वह दोनों वसंत की लीला देख रहे थे, अचानक एक वृक्ष पात से उनका विनोद भंग हो उठा था, उस समय उन दोनों ने अपने परलोक के संबंध मे सोचा था। फिर उन्होंने आपस में निर्णय दिया था। हम लोगों को भी यह स्वर्ग का स्थान छोड़ना होगा तब जो व्यक्ति मानव शरीर धारण करेगा, देवस्थान में रहने वाले देव का कर्तव्य होगा कि संसार की माया में मग्न होने वाले उस अपने मित्र को आत्मकल्याण के पथ पर चलाने का प्रयत्न करे। आज मणिकेतु के सामने वह प्रतिज्ञा प्रत्यक्ष होकर खड़ी थी। उसने सोचा-

सगरराज वैभव के नशे में मदोन्मत हो रहा है , विलास की मदिरा पीते तृप्त नहीं होता। उसने अपने आपको इन्द्रियों और मन की आज्ञा के अधीन कर दिया है, वह अपने कर्तव्य को बिलकुल भूल गया है।

पूर्वजन्म की प्रतिज्ञा के अनुसार मुझके उसके इस झूठे स्वप्न को भंग करना होगा, मुझे उसे लोक कल्याण के पथ पर लगाना होगा। आज यह अवसर प्राप्त है, मैं इसे जाग्रत करने का प्रयत्न करूंगा।

योगेश्वर का उपदेश समाप्त होने पर वह सगरराज से मिला ओर अपने पूर्वजन्म का परिचय दिया। पूर्वजन्म के बिछुड़े हुऐ युगल मित्र आज मिलकर अपने आपको भूल गए। उन्होंने उस आनंद का अनुभव किया जिसका अवसर जीवन में कभी ही आता है। फिर उन्होंने अपने जीवन की अनेक घटनाओं का परस्पर विनिमय किया। सब बातें समाप्त हो जाने के बाद मणिकेतु ने पूर्वजन्म की हुई प्रतिज्ञा की याद दिलाई और साथ ही साथ उनसे कहा-सम्राट् ! आज आप महान् ऐश्वर्य के स्वामी हैं यह गौरव की बात है। आपके जैसा वैभव, सौन्दर्य और विलास की सामग्रिएं किसी विरले ही पुण्याधिकारी को मिलती हैं किन्तु इनका एक दिन नष्ट होना भी निश्चित है। यह वैभव और साम्राज्य मिलकर बिछुड़ने के लिये ही है। इसके उपयोग से कभी तृप्ति नहीं होती। मानव जितना अधिक इसकी इच्छाएं करता है और जितना अधिक अपने को इसमे व्यस्त कर देता है उतना अधिक वह अपने को बंधन में पाता है और अतृप्ति का अनुभव करता है। अब तक आपने स्वर्गीय भोगों के पदार्थों का सेवन

करके अपनी लालसाओं को तृप्त करने का प्रयत्न किया है किन्तु क्या वे तृप्त हुई हैं ? नहीं। सम्राट् ! इच्छा पूर्ण की लालसा में मग्न हुआ मानव अपनी अपूर्ण कामनाओं को साथ लेकर ही संसार से कूचकर जाता है। आपका कर्त्तव्य है कि जब तक आपकी इन्द्रियें बलवान हैं उन्होंने आपको नहीं छोड़ा है और जब तक आपकी शक्ति और सामर्थ्य आपसे विदा नहीं मांग चुकी है, उसके पहले आप इस विलास की आंधी को शांत कर लें, नहीं तो यदि फिर सामर्थ्य नष्ट हो जाने पर, विषयों ने ही आपको त्याग दिया तो फिर आपके ज्ञान और विवेक का क्या मूल्य रहेगा। इसलिये आप अब संसार की चिंताए छोड़कर लोककल्याण की चिंता करें, और जनता के हित के लिये सर्वस्व त्याग करें ।

सम्राट् ने मित्र मणिकेतु के परामर्श को सुना, लेकिन उससे वे प्रभावित नहीं हुए, उनके मन पर उसकी बातों का कोई असर नहीं हुआ। उनका मन तो इस समय वैभव के जाल में फंसा था, पुत्रमोह में मोहित हो रहा था और विलास का नशा अभी उन पर चढ़ा था, फिर उन्हें त्याग की बात कैसे पसन्द आती ?

मणिकेतु उनके अंतरङ्ग भावों को समझ गया, उसने अंत में अपने कर्त्तव्य की स्मृति दिलाते हुए उनसे कहा-मित्र ! मेरा कर्त्तव्य था कि मैं तुम्हें सचेष्ट करूं। तुम इस समय ममत्व में फंसे हुये हो इसलिये मेरी बातों की वास्तविकता को नहीं समझ रहे हो, लेकिन एक दिन आएगा जब तुम उसे समझोगे। अच्छा अब मैं आपसे विदा लेता हूं, यदि आपका मन चाहे तो कभी मेरा स्मरण कर लेना। मणिकेतु चला गया और सम्राट् सगर भी अपने नगर को लौट आए।

(3)

सगरराज के एक से एक सुन्दर सौ पुत्र थे। अपने पिता के विशाल साम्राज्य में वे आनंद और स्वतंत्रता का उपभोग कर रहे थे। कभी कभी मनुष्य अपनी बेकारी से भी ऊब उठता है, राजकुमार अपनी बेकारी से घबड़ा उठे थे। एक दिन सबने मिलकर विचार किया- पिता के सौभाग्य से हमें किसी बात की कमी नहीं है, लेकिन हमें उनके सौभाग्य पर ही अवलंबित नहीं रहना चाहिए, हमें भी कुछ न कुछ कर्त्तव्य करना चाहिये। कर्त्तव्यहीन मानव का मन निर्बल बन जाता है और निर्बल मन को अनेक रोग आपत्ति घेर लेती हैं फिर कर्त्तव्य रहित और पौरूष विहीन मनुष्य कायर कहलाता है और कायर पुरुषों को कहीं सम्मान नहीं मिलता। संसार कर्मक्षेत्र हैं, इसमें कर्मशील मानव ही सफलता, यश, गौरव और सम्मान प्राप्त करता है, हमें निष्कर्मण्य नहीं बनना चाहिए, और अपने जीवन का बोझ किसी के कंधे पर डालकर कायरों की जिन्दगी व्यतीत नहीं करना चाहिए। इन विचारों से सभी एकमत थे, उन्होंने इस विषय में पिताजी से परामर्श करना उचित समझा। और वे सब मिलकर सम्राट् सगर के समीप आए।

उन्होंने विनीत स्वर से चक्रवर्ती से कहा-पिताजी ! प्रत्येक मनुष्य को अपने योग्य कार्य करना आवश्यक है। कर्मशीलता से ही मानव जीवन सफल होता है। हम सब युवक अब कार्य करने योग्य हो गए हैं, हम क्षत्रिय कुमारों का यह कर्त्तव्य नहीं है कि अकर्मण्य बनकर आलस्य की गोद में ही अपना अमूल्य समय समाप्त कर दें, इसलिये आज हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। आप हमारे लिये योग्य कार्य की योजना बनाकर दीजिए जिसे हम श्रम और साहस से पूरा करें।

वीर पुत्रों के योग्यता पूर्ण वचन सुनकर चक्रवर्ती ने कहा-पुत्रो ! सागरान्त पृथ्वी पर मेरा अधिकार है, पृथ्वी के सभी राजा मेरी आज्ञा का पालन करते हैं। साम्राज्य में पूर्ण शांति है, शत्रु के नाम से आज तक किसी ने अपना सिर नहीं उठाया है। संसार का वैभव आंख उठाते ही मेरे सामने आ जाता है, फिर मैं तुम्हें क्या आज्ञा दूं ? तुम बताओ तुम्हें किस बात की कमी है और किस चिन्ता ने तुम पर आकर आक्रमण किया है जिसकी वजह से आज तुम्हारे हृदय में इस तरह की भावनाएं उठी हैं। यदि तुम्हें किसी वस्तु की कमी का अनुभव हुआ हो तो उसे मेरे सामने प्रकट करो मैं उसे शीघ्र पूर्ण करूंगा ।

राजकुमार बोले-पिताजी ! आपके कृपापूर्ण अनुग्रह से हम सब सुख-सम्पन्न हैं, हमें किसी वस्तु का अभाव नहीं है फिर भी हम समझते हैं कि कर्त्तव्य के बिना मानव जीवन निरर्थक है। हम यह भी जानते है कि जो मनुष्य प्राप्त सुखों में अपने आपको भुला देता है और भविष्य के लिये कुछ उपार्जन नहीं करता उसका संचित पुण्य नष्ट हो जाने पर उसे अंत में कठिन यातनाएं ही भोगना पड़ती हैं। परावंलबी बनकर और हाथ पर हाथ रखकर निष्क्रिय जीवन व्यतीत करना और उसे विषय लालसा में ही लिप्त रखकर समाप्त कर देना तो मानव का कर्त्तव्य नही है। इसलिये हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप हमें कोई कार्य दीजिए हम उसे पूरा करके अपने कर्तव्य का पालन करेंगे।

राजकुमारों की बात सुनकर सम्राट् फिर भी बोले-पुत्रो ! मैं जानता हूं कि तुम्हें कार्य करने की इच्छा है। मैं तुम्हारी इस इच्छा को दबाना उचित नहीं समझता। तुम्हारे हृदय उठी हुई कर्त्तव्य भावनाओं को मैं कुचलना नही चाहता, लेकिन मैं तुम्हें क्या कार्य बतालाऊँ। फिर कुछ समय तक सोचने के बाद वे बोले-अच्छा सुनो ! मैं तुम्हें एक कार्य देता हूं। देखो, कैलाश पर्वत पर सम्राट् भरत ने सुन्दर चैत्यालयों का निर्माण कराया है, उसमें भगवान ऋषभदेव की विशाल मूर्ति स्थापित की है। भविष्य में उन मंदिरों की रक्षा के लिये तुम कैलाश पर्वत के चारों ओर एक खाई बना दो और उसमें गंगा की धारा को लाकर मिला दो, तुम यह कार्य अच्छी तरह से कर सकते हो इसलिये मैं यह कार्य करने की तुम्हें आज्ञा देता हूं। आज से ही तुम इस कार्य में लग जाओ। सगरराज की आज्ञा का शीघ्र पालन हुआ। सभी राजकुमारों ने हर्षध्वनि के साथ कैलाश की ओर प्रस्थान किया और वज्र दंड की सहायता वे पर्वत को तोड़कर उसके चारों ओर खाई का निर्माण करने लगे।

(4)

कर्मवीर पुरुष एक बार अपने प्रयत्न में निष्फल होने पर निराश नहीं होते, वे आगे बढ़ते हैं और फिर अपने कर्त्तव्य को करते हैं और जब तक वे पूर्ण सफलता हासिल नहीं कर लेते तब तक उसे नहीं छोड़ते।

मणिकेतु को एक बार अपने कर्त्तव्य में सफलता नहीं मिली थी। लेकिन वह अपने मैत्री धर्म को भूला नहीं था। वह समय और साधन के प्रयत्न में था। आज समय ने उसे पुकारा था, साधन भी उसके सामने उपस्थित हो गए थे। आज वह कैलाश पर्वत के पास से गुजर रहा था वहां उसने खाई खोदते हुए सगर पुत्रों को देखा। उसने कुछ सोचा और सोचकर मन ही मन प्रसन्न हो उठा। उसका अंतरात्मा बोल उठा आज इस मौके को मुझे अपने हाथ से नहीं खोना चाहिए - वह राजकुमारों के निकट आया और उनसे बोला-राजकुमारों ! इस स्थान पर खाई खोदने की आज्ञा तुम्हें किसने दी है ? मैं यहां का स्वामी हूं और तुम्हें आज्ञा देता हूं कि तुम खाई खोदना बंद करो।

राजकुमारों ने उसकी इस घृष्ठता का कुछ उत्तर नहीं दिया- और वे अपने काम में लगे रहे।

मणिकेतु ने कहा-राजकुमारों ! तुम सुनते नहीं ? मैं कहता हूं कि तुम मेरे इस स्थान पर खाई नहीं खोद सकते।

अब राजकुमारों ने उसकी उद्दंडता का उत्तर देना उचित समझा। वे बोले-मूर्ख ! सगर राजपुत्रों को उनके कार्य से रोकने वाला तू कौन है ? इस पृथ्वी के स्वामी सगरराज के प्रभाव कों तू नहीं जानता ? जो इस तरह अपने को मालिक बनने का स्वप्न देख रहा है। मालूम पड़ता है तेरा मस्तिष्क विकृत हो गया है नहीं तो इस तरह पागलपन की बाते करने का साहस तुझे नहीं होता। हम लोगों को सम्राट् सगरराज ने खाई खोदने की आज्ञा दी है, हम अपना कार्य करेंगे, तू रोकने वाला कौन होता है ?

मणिकेतु बोला- तुम नहीं जानते, मैं इस पृथ्वी का स्वामी हूं मेरे सामने सगरराज कौन होता है ? तुम खाई खोदना शीघ्र बंद कर दो, यदि तुम अपनी इस इच्छा को नहीं रोकना चाहते तो तुम्हें मृत्यु के मुख में जाने को तैयार हो जाना चाहिए।

राजकुमार इसके लिये पहलसे ही तैयार थे, वज्रदंडता लेकर मणिकेतु के सामने खड़े हो गए। मणिकेतु तो यह चाहता ही था- उसने अपने दिव्यास्त्र के प्रभाव से उन सभी राजकुमारों को मूर्छित कर दिया, वे सबके सब ऐसे मालूम पड़ने लगे मानों किसी महान् निद्रा की गोद में सो रहे हों। उनमें से एक राजपुत्र ही बचा था जिसे मणिकेतु ने सगरराज से यह सब समाचार सुनाने के लिये छोड़ा था। उन सभी राजकुमारों को मूर्छित दशा में छोड़ कर वह सगरराज के समीप पहुंचा।

(5)

सगरराज भोजन कर चुकने के बाद अपने विश्राम गृह की ओर आए थे, इसी समय उन्होंने किसी

पुरुष का करूण रुद्रन सुना। वे उसके रुदन को अधिक देर तक नहीं सुन सके, उन्होंने द्वारपाल से उस व्यथित पुरुष को अपने पास लाने की आज्ञा दी। द्वारपाल ने एक मलिन वेषधारी जर्जर शरीर वृद्ध को लाकर उनके सामने खड़ा कर दिया। वह बहुत ही मलिन वस्त्र पहिने हुए था, उसकी सभी इन्द्रियें वे काबू हो रही थीं और बड़े जोर से वह कांप रहा था। सम्राट् के सामने आने पर उसका रोना और भी बढ़ गया, उसकी हिंचकिए बंध हो गई और गला रूद्ध हो गया।

वृद्ध को धैर्य देते हुये सम्राट् ने कहा-वृद्ध ! शान्त होकर। बोलो-तुम इतने दुःखी क्यों हो रहे हो ?

वृद्ध ने अब तक अपने आप को संभाल लिया था, वह कुछ देर रूककर बोला-सम्राट् ! आप भारत के सम्राट् हैं, आप सभी दुखियों का दुःख दूर करते हैं। आपका हृदय करूणा से भरा हुआ है मुझे विश्वास हो रहा है आप मेरी व्यथा अवश्य सुनेगे। आह ! पर में अपने कष्ट का कैसे वर्णन करूं ? मेरा तो कलेजा मुंह को आता है। सम्राट् आज मेरा जीवन ही नष्ट हो गया, मेरे बुढ़ापे का सहारा मेरा एकमात्र जवान पुत्र था। अपने जीवन का खून वहा कर मैंने उसका पालन किया था। मेरी सारी आशायें उसी पर अवलंबित थीं। आह ! आज उस निर्दय ने मुझसे मेरे लालको छीन लिया। वह मेरे आंखों का तारा और मेरे जीवन का सहारा था। सम्राट् आप मेरी रक्षा कीजिए, वह आगे बोल नहीं सका, आंसूओं को धारा से उसका मुंह रूद्ध हो गया। चक्रवर्ती का हृदय वृद्ध के करूण रूदन से पिघल गया। वे बोले वृद्ध ! धैर्य रक्खों मुझे बतलाओं वह कौन पुरुष है, मैं उसे इस अन्याय का दंड दूंगा।

वृद्ध ने कहा-सम्राट् आपके सान्त्वना पूर्ण शब्दों से मुझे बड़ा संतोष हुआ। मुझे अब विश्वास हो गया कि मेरा कष्ट अवश्य दूर होगा, मैं आपको अपने पुत्र के छिन जाने का हाल सुनाता हूं- राजाधिराज ? मैं अपने पुत्र को अपनी आंखों से कभी बिलग नहीं करता था। आज मैं किसी कार्य को जंगल गया था, कुछ समय बाद जब मैं वापिस लौटा तब मैंने देखा कि मेरा वह जवान लड़का जमीन पर पड़ा हुआ है। मैंने समझा वह सो रहा है और जगाने का काफी प्रयत्न किया। घंटो तक जगाने पर भी जब वह नहीं जागा, तब मैंने उसे बड़े प्यार से हिलाया डुलाया। जब वह टससे मस नहीं हुआ तब मैंने अपने पड़ोसियो को उसे जगाने के लिये बुलाया। उन्होंने पुत्र को देखा और फिर मुझ पर करुणा दृष्टि लाकर वे बोले-वृद्ध ! तुम्हारा यह पुत्र अब नहीं जगेगा। इसके प्राणों को यमराज छीन ले गया है, वह बड़ा दुष्ट है वह किसी की कुछ नहीं, सुनता उसके हृदय में किसी के लिए करुणा नहीं है। अब तुम इसके जगाने का उपाय मत करो, यह मृतक हो गया है। जब मैंने यह सुना तब मेरे हृदय को बड़ा शोक हुआ और अब मैं आपके पास आया हूं। आप उस दुष्ट यमराज से मेरे प्रिय पुत्र के प्राणों को लौटा दीजिए। मैं आपकी शरण में हूं आप मेरी रक्षा कीजिए।

वृद्ध की बात सुनकर सम्राट को उसके भोलेपन पर बड़ा तरस आया वे उसकी सरलता से बहुत

प्रभावित हुए और उसे समझाते हुये बोले-हे वृद्ध महोदय ! आप बड़े ही सरल हैं, आप यह नहीं जानते कि मृत्यु के द्वारा छीने गए मनुष्य को बचाने की किसी में ताकत नही है, महोदय ! मृत्यु तो यह नहीं देखती कि वह जवान है, अथवा किसी का इकलौता पुत्र है। उसकी आज्ञा संसारी मनुष्य पर अंखड रूप से चलती है। चाहे सम्राट् हो अथवा दीन भिखारी, समय आने पर वह किसी को नहीं छोड़ता। तुम्हारे पुत्रकी आयु समाप्त हो गई है, वह मृतक हो गया है। मृतक को जिलाने की ताकत किसी में नही है, इसलिये अब तुम्हें उसके प्राणों का मोह त्याग कर शांति की शरण लेना चाहिए।

सम्राट् के वचनों से वृद्ध को शांति नहीं मिली। वह बोला- सम्राट् ! मेरे हृदय को पुत्र प्राप्ति के बिना शांति नहीं। मेरा हृदय पुत्र वियोग को सहन करने के लिये किसी तरह भी समर्थ नहीं है। पुत्र के मिलने की इच्छा से मैं आपके पास आया था, उपदेश सुनने के लिये नहीं, लेकिन मैं देखता हूं मुझे आपके यहां से निराश होकर लौटना पड़ेगा। आप चक्रवर्ती सम्राट् होकर भी मेरी रक्षा नहीं कर सकेंगे ? सम्राट् ! आप ऐसा न कीजिए, आप शक्तिशाली हैं , आप उस यमराज से अवश्य ही युद्ध कीजिए और मेरे पुत्र को लौटा दीजिए।

वृद्ध तुम नहीं समझते ? यमराज से युद्ध करना मेरी शक्ति से बाहर है अब तुम्हारा रोना धोना व्यर्थ है उसे बंद कीजिए और इस वृद्धावस्था में शांति की शरण लीजिए। महोदय ! अब आप पुत्र मोह को छोड़िए। यह ममत्व ही आत्मबंधन की वस्तु है। तुम यह नहीं जानते कि सारा संसार स्वार्थमय है, सांसारिक स्नेह के अंदर स्वार्थ ही निहित रहता है नहीं तो वास्तव में न कोई किसी का पुत्र है और न पिता है। न कोई किसी की रक्षा करता है और न कोई किसी को मारता है। यह सब संसार का माया मोह है, जिसके कारण हम ऐसा समझते है। आपको तो अब मोह त्याग कर प्रसन्न होना चाहिए। आज आपकी आत्मोन्नति के मार्ग का कटंक निकल गया, अब आप बंधन मुक्त हैं। आज से अब अपने जीवन सफल बनाने का प्रयत्न कीजिए। यह मानव जीवन आत्म कल्याण का श्रेष्ठ साधन है, उसे पुत्र मोह में पड़कर नष्ट मत कीजिए। अब तक पुत्र मोह के कारण आप अपना कल्याण न कर सके, लेकिन अब तो आप स्वतंत्र हैं इसलिये शोक त्याग कर साधु दीक्षा लीजिए और आत्मकल्याण में संलग्न हो जाइए।

सम्राट् ! वृद्ध को इस तरह सान्तवना दे रहे थे इसी समय अपने भाइयों की मृत्यु से शोकित राजकुमार ने प्रवेश किया। उसका मन विकल हो रहा था। उसने आते ही अपने सभी भाइयों को खाई खोदते हुए मृत्यु प्राप्त होने का समाचार सुनाया। प्रिय पुत्रों की मृत्यु सुनकर सगरराज मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। जब वह चैतन्य हुए तब उन्होंने देखा कि सामने वृद्ध खड़ा हुआ है। वह कह रहा है- सम्राट्। उपदेश देना सरल है लेकिन उसका पालन करना कठिन है। दूसरों को पथ बतला देना कुछ कठिन नहीं परंतु उस पर स्वयं चलना टेड़ी खीर है। आप मुझे तो उपदेश दे रहे थे आत्म कल्याण करने का लेकिन आप खुद पुत्र

वियोग की बात सुनते ही बेहोश हो गए।

वृद्ध के इस व्यंग का सम्राट् के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके मन से मोह का बोझ उतर गया। वे सोचने लगे वास्तव में वृद्ध का कथन सत्य है। सांसारिक मोह महाबलवान है, मेरे ऊपर भी इस मोह का प्रबलचक्र चल रहा है, और मैं उसी में चक्कर लगा रहा हूं। आज मेरा मोह का नशा भंग हो गया। फिर वे वृद्ध से बोले-वृद्धमहोदय ! सम्राट् जो कहते है उसे करते हैं। बेशक मोह ने मुझे बेहोश बना दिया था, लेकिन अब मैं स्वस्थ हूं। मैंने आत्मकल्याण और लोक सेवा के पथ पर चलना निश्चित कर लिया है, चलिए आप भी मेरे इस पथ के पथिक बनिए।

सम्राट् के शब्दों से वृद्ध चौक पड़ा, वह उठा और बोला-सम्राट् ! आज आप उस पथ पर आए हैं, जिस पर कुछ समय पूर्व मैं आपको लाना चाहता था। आप मुझे नहीं पहचानते, मैं आपका पूर्वजन्म का साथी वही मणिकेतु हूं। मैंने आपको लोककल्याण के मार्ग पर लाने के लिये ही यह सब कार्य किया है। मैंने ही खाई खोदते हुए आपके पुत्रों को बेहोश कर दिया था, और मैं ही वृद्ध का रूप रखकर यहां आया हूं। पूर्वजन्म की प्रतिज्ञा पूर्ण करना मेरा कर्त्तव्य था, मैंने मित्र के एक कर्त्तव्य को पूर्ण किया है। मेरा कार्य अब समाप्त हो गया, आप जब आत्म-कल्याण के पथ पर हैं ।

मैं अब जाता हूं, आप अपने निर्धारित पथ पर चलकर लोक कल्याण भावना को सफल बनाइए। बेहोश हुए आप के पुत्रों को मैं होश में लाता हूं। यह कहकर उसने वृद्ध का रूप बदल डाला। अब वह मणिकेतु के रूप में था। सगरराज ने उसे हृदय से लगा लिया ओर उसके मैत्री धर्म की प्रशंसा करते हुए कहा-मणिकेतु ! तुम मेरे पूर्व जन्म के सच्चे मित्र हो। मित्र का यह कर्तव्य है कि वह सत्य-मार्ग का प्रदर्शन करे और अपने मित्र को श्रेष्ठ सलाह दे। तुमने मोह-जाल में बेहोश रहने वाले मित्र को समय रहते सचेत कर दिया इससे अधिक मैत्री धर्म और क्या हो सकता है ? अब मैं कल्याणपथ का पथिक हूं, मुझे अब कोई उससे उन्मुख नहीं कर सकता। यह कहते हुये सम्राट का हृदय मित्र प्रेम से भर आया, वे फिर एक बार हृदय से मिले।

मणिकेतु अपना कार्य समाप्त करके देवलोक चला गया ओर सम्राट् सगर योगी सम्राट् बन गए।

⌘⌘⌘

निस्पृही सनतकुमार।

(आत्म-सौन्दर्य के परीक्षक)

(1)

सम्राट् सनत्कुमार भारत के चक्रवर्ती राजाओं में से थे वह अखंड ऐश्वर्य के स्वामी थे साथ ही अनंत सौन्दर्य के स्वामी भी वह थे। उनका सौन्दर्य और मनोहर रूप दर्शनीय था। विश्व के सम्पूर्ण सुन्दर मोहक लावण्यमय परमाणुओं को एकत्रित कर प्रकृति ने उनके शरीर की रचना की थी। ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो उनके सौंदर्य की प्रशंसा न करता, उनके सुगंधित शरीर पर उनके नेत्र मोहित न होते और उनके देखने की इच्छा न करता। उनके शरीर की प्रभा के आगे सूर्य और चन्द्र लज्जित होते थे। मानव क्या देवता भी उनके आकर्षक सौन्दर्य की प्रशंसा करते थे।

कामदेव को उनकी निर्दोष सुन्दरता देखकर मन में जलन हुआ करती थी। सुरबालाएं उनके दर्शन के लिये उत्कंठित रहती थी और कविगण उनके सौन्दर्य की प्रशंसा में अपनी लेखनी को यशस्विनी बनाते थे। लेकिन सम्राट को अपने सौन्दर्य का तनिक भी अभिमान नहीं था, वह उसे प्रकृति की एक देन समझते थे।

(2)

मानव जगत के अद्‌भुत पदार्थों का वर्णन करने में इन्द्रराज कभी नहीं चूकते थे, उन्हें भारत की महिमा और उसके ऐश्वर्य की प्रशंसा करने में बड़ा आनंद आता है। उन्हें भारत से प्रेम था, भारतवासियों के महत्व को वे जानते थे और देवताओं को भारत की महिमा बतलाने वाले प्रसंगों को वे समय समय पर वर्णन किया करते थे।

उन्होंने सनत्कुमार के आकर्षक सौन्दर्य को देखा था उससे बहुत ही प्रभावित हुये थे। वे सौन्दर्य वर्णन की लालसा को त्याग नहीं सके, और आज इन्द्रासन पर बैठे हुऐ उन्होंने सुर समूह के सामने उनके सौन्दर्य की तारीफ कर ही डाली। वे बोले-आह! सनत्कुमार का रूप, उनकी सुन्दरता अवर्णनीय है। देवताओ ! मैंने पृथ्वी पर इतना एकत्रित सौन्दर्य कहीं नहीं देखा। भारत मे उनके सौन्दर्य की क्षमता करने वाला कोई व्यक्ति खोज करने पर भी नहीं मिलेगा। सचमुच में सौन्दर्य पर उनका अधिकार है। उनके सौन्दर्य को देखकर कोई भी मनोमुख हुए बिना नहीं रह सकता।

सम्राट् के सौन्दर्य की यह वास्तविक प्रशंसा थी, सुरराज ने अपनी ओर से किसी अलंकार अथवा अत्युक्ति गंध नही मिलाई थी, किन्तु देवताओं के इन्द्र के मुंह से एक मानव की यह प्रशंसा नहीं रूची। उनके हृदय में विद्वेष की भावनाएं जाग उठीं। अमर लोक निवासी देवताओं के विश्वजयी सौन्दर्य के

आगे नरलोक के एक व्यक्ति की सुन्दरता की प्रशंसा करना उनके सौन्दर्य का उपहार था, वह उन्हें सहन नहीं हो सका। वे इस प्रशंसा का समर्थन नहीं करना चाहते थे, मन नहीं बोलता था, किन्तु मुंह खोलना तो आवश्यक था। फिर उन्हें इन्द्र देव के रूष्ट होने का भी भय था। स्वामी के आगे साधारण मनुष्यों को कभी कभी अपने मन की आवाज को भी दबाना पड़ता है। यही हुआ न चाहने पर भी उन्होंने दबे कंठ से इन्द्र की इस सौन्दर्य प्रशंसा का समर्थन किया।

देवताओं के समूह में एक प्रभादेव ही ऐसा था जिसने सम्राट् के सौन्दर्य का हृदय से समर्थन किया था। दरबार समाप्त होते ही उसके हृदय में सम्राट् के सौन्दर्य दर्शन की उत्कट इच्छा हुई। वह उनके सौन्दर्य का परीक्षण भी करना चाहता था, वह स्वर्गलोक चलकर सम्राट् सनत्कुमार के भवन की ओर आया।

(3)

सबेरे का समय था-प्रतापी मार्तंड अपनी सुनहरी किरणों से सारे विश्व मे सौन्दर्य सृष्टि की रचना कर दी थी।

नित्य की तरह सम्राट् सनत्कुमार उस समय अपनी व्यायामशाला में थे। अखाड़े में उतरकर वे व्यायाम क्रिया कर रहे थे। उनका सुन्दर शरीर धूल में सना हुआ था। धूल धूसरित शरीर से सौन्दर्य की दिव्यप्रभा निकलकर उस स्थान को दीप्तवान बना रही थी। खुले शरीर पर बिखरी हुई लालिमा और ओज एक विचित्र चमक पैदा कर रही थी, उसी समय प्रभादेव वहां पहुंचा। उसे मालूम हो गया था कि सम्राट् इस समय व्यायामशाला में हैं, वह वहां पहुंच कर उनके नग्न सौन्दर्य को देखना चाहता था! उसने गुप्त रूप से व्यायामशाला में प्रवेश किया और अतृप्त नेत्रो से सम्राट् के सौन्दर्य को देखा। स्वाभाविक सौन्दर्य अपने अंदर एक अद्भुत आकर्षण रखता है, किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कराने की शक्ति उसके अंदर रहती है। यह असंभव है कि वह अपने आकर्षण से किसी का मन न खींच ले। मानव क्या देवता भी रूप राशि के जाल से अपने को बचा नही सकते, फिर चाहे वह सौन्दर्य किसी युवती बाल का हो अथवा किसी युवक का। वह अपना आकर्षक प्रभाव रखता है। बनावटीपन, कृत्रिमता और भढ़काहट इस शक्ति से बिलकुल शून्य हैं, वह कुछ समय के लिये नेत्रों में एक चकाचौंध अवश्य पैदा कर सकती है। संभव है कुछ अज्ञानी और भोले मानव उसके बनावटी आकर्षण में फंस जाये लेकिन परीक्षक और देवता उसके जाल में नहीं फंस सकते।

प्रभादेव ने सम्राट् के उस अकृत्रिम रूप को देखा, वह उनके सौंदर्य पर मुग्ध, चित्रित और आश्चर्य चकित सा होकर देखता ही रह गया। न मालूम कितने समय तक वह उन्हें देखता रहा, परन्तु उसे तृप्ति नहीं हुई। किन्तु अब उसे इस सौन्दर्य दर्शन से अपने नेत्रों को रोकना पड़ा। सम्राट् का व्यायाम समाप्त हो चुका था, उन्होंने स्नान किया, वस्त्र धारण किये और अपनी राजसभा को चल दिए।

सम्राट् सनत्कुमार अपनी राज्यसभा में थे, इसी समय द्वारपालने किसी अपिरिचित पुरुष के आने की सूचना दी, अपरिचित राज्यसभा में लाया गया। महाराज के सामने आकर अपरिचित ने उन्हें प्रणाम किया और फिर एक अर्थपूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखा। इससे पहिले उसने सनत्कुमार को व्यायामशाला में देखा था और अब उन्हें सुन्दर वस्त्रों से भूषित राज्य सभा में देखा। उसने देखा कि जो सौन्दर्य व्यायामशाला में उनके शरीर पर था अब नहीं है, यह देखकर उसे कुछ आश्चर्य भी हुआ और विचार भी। वह सोच रहा था- सौन्दर्य और रूप क्या इतना कृत्रिम, क्षणिक और नश्वर है ? यह एक क्षण में ही कितना परिवर्तित हो जाता है। इसी रूप और सौन्दर्य पर मुग्ध होकर मानव अपना आत्मसमर्पण कर देता है, और इसी रूप के जाल में पड़कर सद्विवेक और सुबुद्धि को खो बैठता है। इस क्षणिक सुन्दरता पर मुग्ध होने वाले मानव को क्या कहा जाय। विचारमें वह इतना व्यस्त हो गया था कि सम्राट् के द्वारा दिए गए स्थान पर बैठना भी वह भूल गया। जब वह विचार निद्रा से जागा तब अपने स्थान पर बैठ गया।

अपरिचित के चेहरे पर उठने वाली तरंगों को सम्राट् ने देखा था। वे उससे बोले-महोदय ! आपने इस राज्य सभा में आने का कष्ट किसलिए किया है ? और यहां आकर आप किस विचार में व्यस्त हो गए हैं, कृपया अपने आने का स्पष्ट कारण बतलाइए।

अपरिचित अब विचार-जाल से मुक्त हो चुका था। उसने सम्राट् के प्रश्न का उत्तर दिया। वह बोला-सम्राट् ! आज देवराज के मुंह से आपके सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर मैं आपके दर्शन के लिये यहां आया था। मैंने कुछ समय पहले आपको व्यायामशाला में देखा था और अब इस राज्य सभा में देख रहा हूं। मैंने आपके सौन्दर्य को तुलनात्मक दृष्टि से देखा है। सम्राट् मुझे सत्य कहने के लिये क्षमा करेंगे। मैंने इन दोनों स्थानों में एक विचित्र परिवर्तन के दर्शन किए हैं इसी परिवर्तन ने मुझे एक चिंता में डाल दिया है।

अपरिचित के कथन पर परिषद सभासदों को संतोष नहीं था। वे बोले-अपिरिचित ! आप देवता ही क्यों न हो, लेकिन आपके कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। हम अपने सम्राट् को नित्य प्रति देखते हैं, हमें उनके सौन्दर्य में कोई परिवर्तन नहीं दिखता। फिर आपने इतने थोड़े से समय में उनके सौन्दर्य में परिवर्तन के दर्शन कहां से कर लिए ?

प्रभादेव ने कहा-परिषद महोदय ! आप धैर्य रखिए, आपका कथन भी किसी अंश तक सत्य है, आप नित्यप्रति सम्राट् के सौन्दर्य को देखते हैं लेकिन आप देखने के लिये देखते हैं, आपने उस दृष्टि से नहीं देखा है जिस दृष्टि मैं यहां देखने आया हूं। मेरा देखना केवल परीक्षण के लिये है और इस परीक्षण की कसौटी पर कसकर मैं यह स्पष्ट रूप से कह सकता हूं कि सम्राट् में जिस सौन्दर्य के दर्शन मैंने व्यायामशाला में किए थे वह अब यहां नहीं है।

सभासदों ने कहा- आपके कथन पर उस समय तक विश्वास नहीं किया जा सकता जब तक आप

प्रमाण द्वारा सिद्ध न कर दें। भले ही आपका कथन सत्य हो, लेकिन हम इसका प्रमाण चाहते हैं, कहिए आप इसका कोई प्रमाण दे सकेंगे ?

प्रभादेव दृढ़ता से बोला-प्रमाण ! हां दे सकूंगा। लेकिन यह अंतर इतना सूक्ष्म होगा कि आप उस पर विश्वास नहीं करेगें फिर भी मैं आपको प्रमाण दूंगा।

प्रभादेव ने सम्राट् की ओर देखकर कहा-सम्राट् ! मैं अपनी बात का प्रमाण सभासदों को देना चाहता हूं इसके लिये मुझे आप आज्ञा दीजिए, सम्राट् ने आज्ञा प्रदान की। तब प्रभादेव ने प्रधानमंत्री की ओर लक्ष्य करते हुये कहा-प्रधानमंत्री महोदय ! आप जल से पूर्ण भरा हुआ एक कटोरा मंगवाइए। कहने के साथ ही जल का कटोरा सामने आ गया तब उस जल के कटोरे को दिखलाते हुये प्रभादेव ने सभासदों से कहा-महोदय ! आप जल से भरे हुये इस कटोरे को इच्छी तरह से देख लीजिए, देखिए यह जल से संपूर्णतः भरा हुआ है, अब मैं इस जल के कटोरे को लिये जाता हूं। प्रधानमंत्री महोदय ! आप भी मेरे साथ आइए। अब वह एकान्त में था, वहां उसने प्रधानमंत्री के सामने ही जल के कटारे से एक तिनके भर जल निकाल लिया, और जल के कटोरे को राज्य सभा में ज्यों का त्यों लाकर रख दिया। जल के कटोरे को लक्ष्य कर वह सभासदों से बोला-महोदय। आपने इस जल के भरे कटोरे को पहले देखा था, और अब आप फिर देख रहे हैं, क्या आप में से कोई सभासद बतला सकेगा कि इसका जल पहले से अब कितना कम है ?

सभासदों ने जल से भरे कटोरे को पहले देखा था और अब भी देखा उन्हें उसमें कोई कभी मालूम नहीं हुई। वह बोले-अपिरिचित महोदय ! हम इस कटोरे के जल में किसी तरह की कमी का अनुभव नही करते।

प्रभादेव ने कहा-महोदय ! अब आपको मेरे कथन का प्रमाण मिल जायेगा। देखिये इस कटोरे में से एक तिनका जल निकाला गया है, इसके साक्षी आपके प्रधानमंत्री महोदय हैं , लेकिन आपको जल की कमी का अनुभव नहीं हुआ। जिस तरह एक तिनके जल की कमी का आप अनुभव नहीं कर सकते, उसी तरह सम्राट् के परिवर्तित होने वाले सौन्दर्य का भी आप अनुभव नहीं कर सकते। लेकिन मैंने उसका अनुभव किया है। आप अब मेरे कथन पर अवश्य विश्वास करेंगे।

सभासदों के पास इस तर्क का कोई उत्तर नहीं था, प्रभादेव की बात को उन्हें स्वीकृत करना पड़ा। विवाद समाप्त हुआ, सनतकुमार के निर्दोष सोन्दर्य की प्रशंसा करके प्रभादेव अपने स्थान को चला गया।

(4)

सम्राट् सनतकुमार ने इस विवाद को सुना था। सौन्दर्य परिवर्तन की बात को उनके मन ने स्वीकार किया था। उनका मन केवल स्वीकार करके ही नहीं रह गया, उसने और आगे भी सोचा। उसने सोचा

सौन्दर्य की क्षण क्षण में होने वाली नश्वरता को। हां वास्तव में यह सौन्दर्य नश्वर है, एक दिन यह अवश्य नष्ट हो जायेगा और जिसका यह सौन्दर्य है वह शरीर भी तो नश्वर है। उन्होंने और भी सोचा-यह शरीर नश्वर नहीं संसार के सभी पदार्थ नाशवान हैं, और संसार की इस नश्वर लीला को देखकर मैं उसमें मुग्ध हो रहा हूं। अब मुझे संसार के इस सौन्दर्य की ओर न देखकर अपने अन्दर विराट् सौन्दर्य का दर्शन करना चाहिए, वह सौन्दर्य जो अनंत है, अगाध है, जो कभी क्षीण नहीं होता, जो कभी नष्ट नहीं होता तो अब मैं उसी सौन्दर्य का दर्शन करूंगा ।

संसार से वह विरक्त हो गए। उन्होंने अपने पुत्र को राज्यसिंहासन सौंपा और साधु दीक्षा ग्रहण की। अयोध्या का सौन्दर्य चक्रवर्ती सनतकुमार के बिना अब शून्य सा हो गया था।

(5)

सम्राट् सनतकुमार नहीं महात्मा सनतकुमार योगीश्वर सनतकुमार अब योगसाधना में तन्मय थे। तपश्चरण में निरत थे। उन्होंने इस जन्म के सांसारिक बंधनों को तोड़ डाला था, लेकिन पूर्व जन्म के संस्कारों को वह नहीं तोड़ पाए थे, वे अभी जीवित थे। पूर्व कर्म फल पाना अभी शेष था, वह प्रकट में आया, उन्हें कोढ़ हो गया। उनका वह सुन्दर और दर्शनीय शरीर कोढ़ की कठिन व्याधि से आज ग्रसित था सारे शरीर से मलिन मल और रक्त निकल रहा था। तीव्र दुर्गंधि के कारण किसी को उनके निकट जाने का साहस नहीं होता था, लेकिन इसका उन्हें कोई खेद नहीं था, कोई ग्लानि नहीं थी। वे शरीर की अपवित्रता को जानते थे, वे निर्ममत्व थे, शरीर की बाधा उन्हें आत्म-ध्यान से विलग नहीं कर सकी थी। उनकी आत्मतन्यमयता पर उसका कोई प्रभाव नहीं था, वे पूर्व की तरह स्थिर थे।

देवताओं को उनकी इस निर्ममत्वता पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने जानना चाहा, सनत्कुमार का यह निर्ममत्व बनावटी तो नहीं है वह जो कुछ बाहर से दिखला रहे हैं वह उनके अंदर भी है अथवा नहीं , उन्हें परीक्षण की कसौटी पर कसना चाहा।

हम वैद्य हैं, व्याधि कैसी ही भयानक क्यों न हो भले ही वह कोड़ की क्यों न हो हम उसे निश्चय से नष्ट करने की शक्ति रखते है। वह ध्वनि योगीराज के कानों पर बार बार आघात करने लगी। उन्हें इससे क्या था, वे तो आत्म-समाधि मग्न थे।

निश्चित समय पर योगीश्वर ने अपना ध्यान समाप्त किया। वैद्यराज उनके सामने उपस्थित थे। उनके चरणों में पढ़कर बोले- योगीश्वर ! मानता हूं आपके ध्यान में यह व्याधि कोई बाँधा नहीं पहुंचाती होगी, लेकिन व्याधि तो व्याधि ही है, उसकी वेदना तो आपको होती ही होगी। मेरे रहते हुए आपकी यह व्याधि बनी रहे यह बड़े दुःख की बात होगी। योगीश्वर ! आप मुझे आज्ञा दीजिए। आपकी यह व्याधि कुछ क्षणों में ही मैं नष्ट कर दूंगा।

ऋषीश्वर ने सुना-वे बड़ी शांति से बोले- वैद्यराज ! जान पड़ता है आप बड़े दयालु हैं आपको मेरी व्याधि नष्ट करने की बहुत चिंता हो रही है। मैं समझता हूं आप वास्तव में ऐसे वैद्य हैं जो मेरी व्याधि को नष्ट कर सकेंगे।

आपकी कृपा से मुझमें व्याधि नष्ट करने की शक्ति मौजूद है वैद्य रूपधारी देवता ने कहा।

वैद्यराज ! लेकिन क्या मेरी मूल व्याधि को आप पहचानते हैं ? जिसकी वजह से यह ऊपरी व्याधि जिसे देखकर आपका मन करूणा से पिघल रहा है, जीवन पा रही है उस व्याधि का भी निदान कर सकेंगे ? वैद्यराज ! यह व्याधि तो कुछ नहीं मुझे उसी व्याधि के नष्ट करने की चिंता है- वह महाव्याधि है जन्म-मरण उसका मुख्य कारण है कर्मफल। क्या आपमें उसके नष्ट करने की शक्ति है ?

वैद्य अब मौन या, योगी सनतकुमार के प्रश्न का उसके पास कोई उत्तर नहीं था। वह अब अपने को अधिक समय तक प्रछन्न नहीं समझा, वह पराजित हो चुका था। महात्मा के चरणों में पढ़कर वह बोला-महात्मन् ! क्षमा कीजिए। महावैद्य का परीक्षण करने मैं आया था वैद्य बनकर। मैं आपकी व्याधि को निर्मूल करना तो दूर उसका निदान भी नहीं जानता। इस व्याधि के विनाशक तो आप ही हैं। आपमें ही कर्मफल और जन्म मरण नष्ट करने की शक्ति है। मै तो आपकी निष्पृहता देखने आया था उसे देख चुका। आपकी योग साधन, आपकी आत्म तन्मयता, आपकी निर्ममत्वता आदर्श है, वास्तव में आप निस्पृह योगी हैं। मैं तो आपका चरण सेवक हूं, आपका अपराधी हूं, क्षमा का पात्र हूं। प्रार्थना करके देव अपने स्थान को चला गया।

योगीराज ने तीर्व कर्म के फल को योगी की प्रचंड उष्णता में पका डाला, उसके रस को ध्यानाग्नि से नष्ट कर दिया। तीक्ष्ण व्याधि को वे पी गये। योग की महान् शक्ति के सामने कर्मफल स्थिर नहीं रह सका वह जलकर भस्म हो गया। योगीराज ने दिव्य आत्मसौन्दर्य के दर्शन किये, उसमें उन्होंने अपने को आत्मविभोर करा दिया, उनका मानस पटल आत्म-सौन्दर्य की उस अद्भुत प्रभा से जगमगा उठा था जो अविनश्वर थी, स्थायी थी और अमर थी।

⌘⌘⌘

महात्मा संजयंत

(सुदृढ़ तपस्वी)

(1)

गंधमालिनी देश की प्रधान राजधानी वीतशोका थी। उसके अधीश्वर थे महाराज वैजयन्त। उनका वैभव स्वर्गीय देवताओं की तरह अतुलनीय था। वे अपने वैजयन्त नाम को चरितार्थ करते थे। साहस और पराक्रम में भी वे एक ही थे। लक्ष्मी की तरह महाभाग्या महारानी भव्य श्री उनकी प्रधान पटरानी थी।

वैजयन्त न्याय और नीति से अपनी प्रजा का संरक्षण करते थे। वे उदारमना थे। विद्वानों का योग्य सम्मान करके, सुहद् बंधुओं को निःस्वार्थ प्रेम से और आश्रितों को द्रव्य देकर संतुष्ट रखते थे।

अत्याचारियों और अन्याय के लिये उनके हाथ में कठोर दंड था। इसीलिये उनके राज्य में व्यसनी और दुराचारी पुरुषों का अस्तित्व नहीं था।

उनके दो पुत्र थे-एक संजयंत दूसरे जयंत! राज्य प्रांगण की शोभा बढ़ाते हुये वे दोनों बालक दर्शकों का मन मुग्ध करते थे। दोनों ही प्रतापशाली सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाशवान थे। दोनों कुमारों ने बड़े होने पर न्याय और साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था। सिद्धांत और दर्शनशास्त्र के वे मर्मज्ञ थे, वे अब यौवनसम्पन्न थे, शरीर संगठन के साथ साथ सौन्दर्य और कला का पूर्ण विकास उनमें हुआ था।

उस समय का शिक्षण आज जैसा दोषपूर्ण नहीं था। आज का शिक्षण मानसिक विकास और चारित्र निर्माण के लिये न होकर केवल उदरपूर्ति और विलास का साधन बना हुआ है। आत्मिक विज्ञान और उसके विकास की ओर उसका थोड़ा भी लक्ष्य नहीं है। उसका पूर्ण ध्येय भौतिक विज्ञान और उसके विकास की ओर ही है। युवकों के मन में गुप्त रूप से विकसित होने वाली वासना ओर कामलिप्सा को वह पूर्ण सहायता देता है। स्वदेश, जातिसम्मान, स्वाधीनता और आत्मगौरव की भावनाओं को आज का शिक्षण छूता भी नहीं है, उसने युवकों के सामने एक ऐसा वातावरण पैदा कर दिया है जो उनके भयंकर विनाशकारी है। विदेशी सभ्यता और भावनाओं को यह उत्तेजित करता है और पूर्व गौरव के संस्कारों की जड़ को नष्ट करता है। इस भयानक शिक्षण के मोह में भारतीय युवकों का जीवन और देश की संपत्ति स्वाहा हो रही है, और उसके बदले उन्हें गुलामी, मानसिक पाप और भोगविलास का उपहार मिल रहा है। इस शिक्षण के साथ ही युवकों के मानसिक पतन और चरित्र हीनता के अनेक साधन आज एकत्रित हो रहे हैं , सिनेमा और नाटक फैशन और श्रृङ्गारप्रियता कोढ़ में खाज का काम कर रही है। आज युवकों में चरित्र संगठन, समाज निर्माण, आत्म निर्णय, सद्ज्ञान और विवेक की भावना ही नहीं रह गई है। अल्पज्ञान और थोड़े से वैभव को पाकर ही वे वासना की चरम सीमा का उल्लंधन कर जाते हैं।

आमोद प्रमोद, हास्यविलास, कामोद्दीपन और इन्द्रिय तृप्ति के साधनों में ही वे अपने यौवन के गर्म खून को खो देते हैं। समाज और राष्ट्र को ये अमूल्य निधियां राष्ट्र के लिये उपयोगी न बनकर उसके लिये घातक होती हैं ।

प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण आत्मतृप्ति और आदर्श स्थापित करने का था। वह केवल उदरपूर्ति के लिये नहीं था। यही कारण उनका था कि उस समय के शिक्षित अपने कर्त्तव्य को अच्छी तरह पहचानते थे।

युवक संजयंत और जयंत का शिक्षण इसी दिशा में था, उनकर मस्तिष्क पवित्र ज्ञान से परिपूर्ण था। विलास और इन्द्रिय वासना की भावनाएं ही उनमें नहीं जगी थीं। उनका जीवन देशसेवा, परोपकार और सत्य प्रचार के लिये धरोहर रूप था उनका लक्ष्य एक था, धार्मिक विवेचन और लोकसेवा। वे आदर्श युवक थे।

(2)

वर्षाकाल की संध्या का समय था। मेघमंडल अपने अंधकार पूर्ण वातावरण में सूर्य के संपूर्ण प्रताप को ढक लिया था। उसने अपनी घनी और काली चादर से आसमान को आवृत्त कर लिया था। यह उसके जलदान का समय था। मेघों के हृदय की उदारता स्रोत आज अनिवार्य गति से फूट पड़ा। वे भीषण गति से भूमंडल को आर्द्र बनाने का प्रयत्न करने लगे। अरे ! यह क्या अपने प्रचुर दानकी सीमा का आज वे उल्लंघन ही कर गए। वे मूसलघार वर्षा से नदी तालाब और सागर को एक करने लगे। इस जलदान में बड़ी गड़बड़ी हुई और मेघगण आपस में भिड़कर टकराने लगे, उनकी आपस की टक्कर से एक भयंकर शब्द उत्पन्न होकर मनुष्यों के कानों के परदे फाड़ने का प्रयत्न करने लगा। बालक और कायर-हृदय महिलाओं के मन भय से भर गए। घनघटा में छिपी हुई सौदामिनी अब अपने वेग को न सम्हाल सकी, वही अपनी चंचल गति से नृत्य करती हुई मानवों के नेत्र में चकाचौंध पैदा करने लगी, आह ! यह नृत्य करती हुई अपने चंचल वेग को नहीं संभाल सकी और मेघमंडल से च्युत होकर प्रचण्ड नाद करती हुई महाराजा की अश्वशाला में गिरकर पृथ्वी में विलीन हो गई।

जलवर्षा समाप्त होने पर अश्वपाल ने देखा-बिजली ने गिरकर महाराज के विशाल हाथी के शरीर को नष्ट कर दिया है। हाथी के इस अकाल निधन ने उसे बहुत ही दुःख दिया-उसने महाराज को जाकर इसकी सूचना दी। वह बोला- महाराज ! आज आपकी अश्व शाला पर भीषण वज्राघात हुआ है और उसने आपके प्रधान हाथी के पर्वत जैसे शरीर को टुकड़े टुकड़े कर डाला है। प्रधान हाथी के अभाव से अश्वशाला शून्य सी मालूम हो रही है। मृत्यु ने एक क्षण में ही उसे अपना ग्राम बना लिया। अहा! प्रिय गजेन्द्र की मृत्यु मुझे दुखित बना रही है।

अश्वपालक के मुंह से अपने प्रिय गजेन्द्र की मृत्यु सुनकर राजा का हृदय बहुत ही दुखित हुआ। वह उनका अत्यंत प्रिय गजेन्द्र था। अनेक भयंकर युद्धों में उसने उनकी प्राण रक्षा की थी। वे सोचने लगे - ओह! भयंकर काल ने मेरे प्रिय गजेन्द्र को इतने शीघ्र नष्ट कर डाला क्या! यह कल्पना भी की जा सकती कि एक क्षण में ही उसका उन्नत शरीर इस तरह नष्ट हो जायेगा। ओह! काल का शस्त्र कितना अमोघ है, यह पता नहीं यह कब चल जाये और कब प्राणी के प्राणों को छिन्न भिन्न कर दे। अरे! मैं भी तो इसी काल के शस्त्र के नीचे बेधड़क होकर क्रीड़ा कर रहा हूं। तब क्या मुझे भी इसकी भयंकर धार का निशाना बनने का प्रयत्न करना चाहिए। इसका एकमात्र प्रयत्न है आत्म साधन और उसके लिये मुझे इस साम्राज्य और वैभव का त्याग करना होगा। हां, तब यही होगा। अब मुझे एक क्षण का विलंब नहीं करना चाहिए। शत्रु को पहचान लेने पर उससे जितनी शीघ्र हो सके अपनी रक्षा का प्रयत्न करना उचित है। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र संजयंत को बुलाया- और उसे राज्यसिंहासन सौंपकर तपश्चरण करने की इच्छा प्रकट की। संजयन्त ने अपने सिर पर राज्य भार लेना पंसद नहीं किया वे बोले-पिता जी! जिसे आप राज्य समझकर छोड़े जा रहे हैं, मैं उसे ग्रहण नहीं कर सकता। मैं तो आपके ही साथ महाकल्याण के पथ पर चलूंगा। आप जिस बंधन से मुक्त हो रहे हैं , मैं अपने को उस बंधन में नहीं फंसाना चाहता, मैं अपने आत्मोन्नति के पथ को अंधकारमय बनाने को प्रस्तुत नहीं, मैं तो आपका ही आदर्श ग्रहण करूंगा । आप इस राज्य मुकुट से जयंत का ही मस्तक सुशोभित कीजिए।

जयंत राज्य का स्वामी बना। संजयंत अपने पिता वैजयंत के साथ दीक्षा लेकर तपस्वी बने।

(3)

महात्मा संजयंत भयंकर वन की गुफा में तीव्र तप निमग्न थे महीनों के अनाहारक व्रत से मन और शरीर को उन्होंने अपने आधीन बना लिया था, वासना और मनोविकारों पर उन्होंने विजय प्राप्त की थी। भयंकर हिंसक जंतुओं के संसर्ग में वे निर्भय निवास करते थे। कठिन से कठिन शारीरिक यातनाएं, घोर से घोरतम पशु और मानव कृत उपसर्गों के सामने वे निश्चल और अकपं थे। ग्रीष्म ऋतु की प्रचड सूर्य-रश्मियें, वर्षाकाल की प्रबल जल वृष्टि और शीलकाल के असहनीय हवा के झकोरे के सामने वे अपने आत्मचिंतन और ध्यान मग्न थे। अध्यात्म रसास्वादन में तन्मय थे। सभी कठिनाइयों के सामने उन्होंने अपने को अजेय बना लिया था।

शीतकाल का समय था महात्मा संजयंत पद्मासन से योग साधन में मग्न थे, वह अभूतपूर्व अध्यात्म पियुष का पान कर रहे थे।

विद्युद्दंष्ट अनेक विद्याओं का स्वामी क्रोध प्रकृति का उद्दंड युवक था, वह अपने सुन्दर वायुयान द्वारा आकाश में गमन कर रहा था, महात्मा संजयंत के ऊपर उसका विमान आया। तपश्चरण के महान प्रभाव के कारण उसका वायुयान वही रुक गया। विद्युद्दंष्ट ने उसे आगे चलाने का बहुत प्रयत्न किया,

अपनी संपूर्ण विद्याशक्ति लगा दी, लेकिन यह एक इंच भी आगे न बढ़ सका, लाचार होकर उसने अपने विमान को नीचे उतारा। नीचे उतरकर उसने देखा उसके विमान के नीचे एक महात्मा तपश्चरण कर रहे थे, वह विमान न चलानेका कारण समझ गया। इस मूढ़ तपस्वी ने ही मेरे विमान को आकर्षित कर दिया है उसने सोचा मैं आज इसकी तपश्चरण की शक्ति को देखूंगा। उसे तपस्वी पर बड़ा क्रोध आया, और वह अपने विद्याबल से उन्हें तपश्चरण से चलित करने का निंद्य प्रयोग करने लगा। उसने भयंकर आंधी और जलवृष्टि द्वारा योगीश्वर को ध्यान से चलित करना चाहा, लेकिन जब उसे इसमें तनिक भी सफलता नहीं मिली तब उसने पैशाची विद्या के बल ये भयानक मुंह वाले भूतप्रेतों को नचाना प्रारंभ किया। फुफकार भरते हुये जहरीले सर्पों के झुंड उन पर छोड़े। भयंकर गर्जना करने वाले सिंहों को छोड़कर उसने उनके मन को भयभीत बनाने का प्रयत्न किया, लेकिन उसके सभी प्रयत्न निष्फल हुए। योगिराज संजयंत सुमेरू से भी अधिक अचल और स्थिर बने रहे। भयानक उपद्रव की आंधी उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकी।

दुर्जन की प्रकृति दुष्ट हुआ करती है। जब वह अपनी दुष्ट प्रवृत्ति से किसी सज्जन के मन का कष्ट नहीं दे पाता तब वह अत्यंत निराश और दुखित होता है। विद्युद्दंष्ट का भी यही हाल था। उसकी दुष्टता तपस्वी के सामने परास्त हो चुकी थी। अब उसका क्रोध चरम सीमा पर था। पशु प्रवृत्ति ने उसके मन पर अधिकार कर लिया था, कुछ समय को वह विचारशून्य हो गया। फिर उसने अपनी पाशविक वृत्तियों को जगाना प्रारंभ किया। अत्यंत स्थिर, शांत और गंभीर बने हुये महात्मा संजयंत को उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर कंधे पर उठाया और भीषण वेग से रहने वाली सिंहवर्ती नदी के संगम पर उनको छोड़ दिया। अब वह अपना पूरा बदला ले चुका था। उसका मन प्रसन्न था, प्रसन्न मन से यह अपने वायुयान पर बैठकर चल दिया।

(4)

संध्या का समय था, सांयकालीन ठंडी वायु से मिलकर शीत ने भयानक रूप धारण किया था। बर्फ की तरह जमे हुये जल में पड़े हुये महात्मा संजयंत का शरीर गलने लगा। हृदय को विचलित कर देने वाली प्राणनाशक वेदना का उनके शरीर पर आक्रमण हुआ। उस समय की दारूण व्यथा का अनुभव करते ही हृदय करूणा से आर्द्र हो उठता है। ओह ! कहां एक ओर गर्म दुशालों से अंगुलियों को बाहर न निकालने वाली सुकुमारता और कहां उन महात्मा के बर्फ सरीखे शीतल जल में व्याप्त होने वाली सहनशीलता।

धन्य थे वे महात्मा संजयंत, असहनीय वेदना से ग्रस्त होने पर भी उनका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। अविचलित आत्म ध्यान के वज्रपटल को भेदकर कष्ट वायु उनका स्पर्श नही कर सका।

पूर्वजन्म के अशुभ कर्म जिस समय अपना फल देने के लिए कटिबद्ध होते हें, उस समय वह अपना बहुत ही भयानक रूप बना लेते हैं, वह बहुत ही निर्भय और कठोर हो जाते हैं। उसके लिये किसी भी

व्यक्ति के प्रति चाहे वह महात्मा योगी सन्यासी कोई भी हो तनिक मोह ममता नही रहती। कर्मो का वज्रदंड प्रत्येक के सिर पर चलता है, उसे रोकने की शक्ति किसी देव, दानव अथवा मानव में नहीं है। यदि कोई उपाय है तो वह है समता भाव , आत्मचिंतन और कष्ट को भूल जाने की भावना।

मानव के उत्थान का समय तब आता है, जब वह कष्टों की कसौटी पर खूब कस लिया जाता है। पूर्ण आत्मशुद्धि के समय कर्म अपनी संपूर्ण शक्तियों को समेट कर आत्मशक्ति पर आघात करता है। वह परीक्षण का समय बड़े धैर्य और साहस का होता है, इस पार या उस पार की समस्या सामने खड़ी होती है। थोड़ी सी आत्मा की कमजोरी वर्षों की तपश्चर्या को मिट्टी में मिला देती है, और एक क्षण का धैर्य उसे सफल बना देता है। जब स्वर्ण शुद्धि का समय आता है तब अग्नि की भयंकरता चरम सीमा हो पहुंच जाती है, कठोर आंखों को सहते हुये तीक्ष्ण ज्वाला में दग्ध होना पड़ता है, तब कभी अंत में शुद्ध होता है।

महात्मा संजयंत पर पूर्व जन्म के कर्मों ने अपना कठोर शासन चलाने में थोड़ी सी कमी नही की थी, लेकिन अभी उनके हाथ का कठोर दंड नीचे नहीं झुका था। महात्मा के आत्म कल्याण में अभी भी कुछ कमी रह गई थी उसे पूरा होना था, कर्म फल ने अब उन्हें अंतिम दंड देने के लिये अपना कठोर हाथ ऊपर उठाया था।

सिंहवर्ती नदी के किनारे बर्बर जाति के भील लोग रहते थे, उनका भूतप्रेतों पर अंध विश्वास था, वे बड़े कठोर और निर्दय हृदय थे। आज संध्या को कुछ लोग नदी के किनारे आए थे शीत से संकुचित महात्मा संजयंत के नग्न शरीर को उन्होंने देखा, उसे देखते ही उनकी कंपकंपी मच गई। प्रेत का भयानक भय उनके हृदय में प्रवेश कर गया। वे वहां से भागना चाहते थे किन्तु कठोर हृदय वाले निर्दय भीलों ने उनके हृदय के साहस को बढ़ाया। उन्होंने कहा-भाइयों ! भागो नहीं, आज हमें इस पिशाच को यहां से हटाना ही होगा। हाथ में पत्थरो को लेकर वे सब आगे बढ़े। उन्होंने महात्मा संजयंत को पत्थरों से मारना प्रारंभ किया। पत्थरों की वर्षा उस समय तक नहीं रूकी जब तक उन्होंने महात्मा को जीवित समझा, अंत में मृतक समझ कर वे उन्हें वही छोडकर अपने नगर को भाग गए।

महात्मा संजयंत ने इस उपसर्ग को बड़ी शांति से सहन किया। कर्मफल समाप्त हो चुका था, स्वर्ण को अंतिम आंच लग चुकी थी, अब उनका आत्मा शुद्ध हो चुका था, उन्हें विश्वदर्श केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

उनके संपूर्ण कर्म एक साथ नष्ट हो चुके थे, शरीर से आयुक्त संबंध नष्ट हो चुका था इसलिये उन्होंने उसी समय निर्वाण प्राप्त किया।

मानव और देवताओं ने मिलकर उनका निर्वाण उत्सव मनाया और उनके अद्‌भुत धैर्य का गुणगान किया।

⌘⌘⌘

महात्मा रामचन्द्र।

(भारत-विख्यात महापुरुष)

(1)

मंडप का मुख्य द्वार बड़ी सुन्दरता से सजाया गया था, अनेक देशों से निमंत्रित नरेश यथास्थान बैठे थे। निश्चित समय पर एक सुन्दरी बाला ने सभामध्य में प्रवेश किया, सभी राजाओं की दृष्टि उसके मुखमंडल पर थी। सुन्दरी वास्तव में सुन्दरी थी, उसके प्रत्येक अङ्ग से मादकता छलक रही थी, हाथ में सुगंधित पुष्पों की माला थी, साफ वस्त्रों से अपने अंगों को ढके हुए एक रमणी उसका मार्ग प्रदर्शन कर रही थी।

अनेक नरेशों के भाग्य का फैसला करती हुई वह एक स्थान पर रूकी। दर्शकों के नेत्र भी उसी स्थान पर रूक गए। व्यक्ति का हृदय हर्ष से फूल उठा, कपोलों पर हँसी दौड़ गई, विशाल वक्षस्थल तन गया। बाला ने उसके प्रभावशाली मुखमंडल पर एक बार अपनी विशाल दृष्टि आरोपित कर दी, फिर लज्जा से संकुचित हुए अंगों को समेट कर उसने अपनी बाहुओंको कुछ ऊपर उठाया, और हृदय की धड़कन को रोकते हुए अपने सुकुमार करकी पुष्पमाला व्यक्ति के गले में डाल दी।

कार्य समाप्त हो चुका था, अयोध्या नरेश दशरथ विजयी हुए। स्वयंवर मंडल में कुमारी केकई ने उनके गले में वरमाला डाल दी थी।

वरमाला डालकर अपने संकुचित और लज्जाशील शरीर को लेकर वह झुकी हुई कल्पलता की तरह कुछ क्षण को वहां खड़ी रही, फिर मंदगति से चलकर वह विवाह देविका के समीप बैठ गई।

केकई का चुनाव योग्य था। उसने श्रेष्ठ पुरुष को अपना पति स्वीकार किया था, सुहृदय और कुटुम्बी जन इस संबंध से प्रसन्न थे, लेकिन स्वयंवर मंडल में पराजित नरेशों को यह सब असह्य हो उठा। वे अपने को अपमानित समझने लगे और अपने अपमान का बदला युद्ध द्वारा चुकाने को तैयार हो गए।

राजा दशरथ इसके लिये तैयार थे, उन्होंने अपने रथ का संचालन किया, केकई को उसमें बिठलाया और राजाओं से युद्ध के लिये अपने रथ को आगे बढ़ा दिया।

नरेशों ने एक साथ मिलकर उनके ऊपर धावा बोल दिया। दशरथ युद्ध क्रिया-कुशल थे, लेकिन उन्हें युद्ध और रथ संचालन दोनों कार्य एक साथ करना पड़ रहे थे, एक क्षण के लिये उन्हें इस कार्य में कुछ कठिनाई हुई और उनका रथ आगे बढ़ने से रुक गया। शत्रु का आक्रमण जारी था, उनका हृदय इस आक्रमण से हताश नहीं हुआ था, वे आगे बढ़ने का मार्ग खोज रहे थे। इसी समय उन्होंने देखा केकई उनके हाथ की सुदृढ लगाम को अपने हाथों में ले लिया था, अब युद्ध संचालन के लिये वे स्वतंत्र थे।

वीर रमणी की सहायता से उनका साहस दूना बढ़ गया, उन्होंने प्रबल पराक्रम के साथ शत्रुओं पर बने विजय ने उनके मस्तक को ऊंचा उठा दिया।

विजय के साथ वीर बाला केकई को उन्होंने प्राप्त किया, उनका उन्मुक्त हृदय केकई की वीरता पर मुग्ध था, आज की विजय का संपूर्ण श्रेय वे केकई को देना चाहते थे, बोले-वीरनारी ! तेरी रथ चातुर्यता ने मेरे हृदय को जीत लिया है। अपने जीवन में आज प्रथम बार ही मैं इतना प्रसन्न हूं, इस प्रसन्नता का कुछ भाग मैं तुझे भी देना चाहता हूं, आर्ये ! आज की इस विजय स्मृति को चिर स्मरणीय बनाने के लिए मैं इच्छित वरदान देना चाहता हूं, तेरे लिये जो भी इच्छित हो उसे मांग, मैं तेरी प्रत्येक मांग को पूर्ण करूंगा ।

मैं आपकी हूं, मेरा कर्त्तव्य आपके प्रत्येक कार्य में सहयोग देना है, मैंने आज अपना कर्तव्य ही पूरा किया है। यह प्रसन्नता की बात है, मैं अपने कर्तव्य में सफल हुई।

आप मुझ पर प्रसन्न हैं, मुझे इच्छित वरदान देना चाहते हैं, नारी के लिये इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती हे। मैं इस सौभाग्य को स्वीकार करती हूं, आप मेरे वरदान को अपने पास सुरक्षित रखिए इच्छा होने पर मैं उन्हें मांग लूंगी, केकई ने हर्षित हृदय से यह कहा। विनीता में आज आनंद का सिंधु उमड़ पड़ा। प्रत्येक नागरिक का चेहरा हर्ष से झलक उठा था।

राजा दशरथ का राजमहल हर्षगान से गूंज उठा, उनके यहां आज राम जन्म हुआ था।

राम जन्म का उत्सव अवर्णनीय था, कौशल्या का हृदय का उत्सव से आनंद मग्न हो गया। यह उत्सव उस समय अपनी सीमा का उलंघन कर गया, जब जनता ने रानी सुमित्रा के भी पुत्र होने का समाचार सुना जिसका नाम लक्ष्मण रखा गया।

दोनों बालक राम लक्ष्मण अपनी बालक्रीड़ा से दशरथ के प्रांगण को सुशोभित करने लगे।

कुछ समय जाने के बाद रानी केकई ने पुत्र जन्म दिया, पुत्र का नाम भरत रक्खा गया। इस तरह रानी सुमित्रा के द्वितीय पुत्र हुआ, जिसका नाम शत्रुघ्न पड़ा।

कला, बल, पुरुषार्थ विद्यावृद्धि के साथ साथ चारों कुमार वृद्धि पाने लगे।

गुरु वशिष्ठ ने चारों कुमार को शस्त्र और शास्त्र विद्या में अत्यंत कुशल बनाया। उनके यश की सुरभि देश के चारो कोने भरने लगी।

मिथुला नरेश जनक इस समय सुखमग्न दिख रहे थे, रानी विदेहा ने एक पुत्र और पुत्री को साथ ही जन्म दिया था। राजमहल में आनंद के नगाड़े बजने लगे, लेकिन संध्या समय का यह आनंद सवेरे तक स्थिर नहीं रह सकता। जो राजमहल संध्या के क्षीण प्रकाश में दीपकों में जगमग उठा था, नृत्य और गान से उन्मादित बन गया था। उसी में आज सबेरे शोक पूर्ण वातावरण व्याप्त था। राजमहल के सभी कर्मचारी चारों ओर किसी खोज में व्यस्त थे, आखिर यह हुआ क्या ? बालक कहां गया, उसे कौन ले गया। प्रत्येक व्यक्ति के मुंह पर यही आवाज थी।

बात यह थी रात्रि को रानी विदेहा ने बालक और बालिका दोनों को अपने पास सुलाया था। आज उन्हें रात्रि में गाढ़ निद्रा आ गई थी, निद्रा भंग होने पर जब उन्होंने देखा बालिका सो रही थी लेकिन बालक पास में नहीं था। उनके दुःख का कोई ठिकाना नहीं था, चारों ओर बालक की खोज की गई लेकिन कहीं पता नहीं लगा।

राजा जनक और रानी विदेहा को पुत्र वियोग का गहरा घाव लगा लेकिन बालिका की सरल मुख मुद्रा ने उनके घाव को बहुत कुछ भर दिया, उसके सौन्दर्य और बाल लीलाओं में अपने को व्यस्त कर उन्होंने संतोष कर लिया।

लेकिन बालक का हुआ क्या ? यह एक रहस्य था, जो अब तक अप्रकट था।

अर्द्ध रात्रि को दैत्यराज सुकेतु अपने वायुयान पर उडता जा रहा था- उसने जनक के राजमहल पर आकर उसे उत्सव मग्न देखा। उसने चाहा यह सब क्या है ? उसे अपने ज्ञान से मालूम हुआ कि राजा जनक के पुत्र जन्म हुआ है इससे आगे उसने यह भी जाना, मेरा पूर्वजन्म का यह वही शत्रु है जिसने मेरी पत्नी का हरण कर मुझे नारकीय वेदना दी थी। उसका पूर्वजन्म के क्रोध का तूफान उमड़ उठा-अपनी माया के बल से रानी विदेह को बेहोश कर वह गुप्तरूप से राजमहल में प्रवेश कर बालक को ले आया। बालक को लाकर वह उसे अपने क्रोध का निशाना बनाना चाहता था, उसका विचार था कि इसे पहाड़ से नीचे डाल दूं लेकिन बालक के भोले मुंह को देखकर उससे यह न हो सका। उसने उसे कानो में कुण्डल पहनाकर एक चट्टान के नीचे सुरक्षित रख दिया।

राजा चन्द्रगति अपनी पत्नी के साथ वायुयान द्वारा प्रातः भ्रमण को निकले थे उनका विमान चट्टान के ऊपर से मंदगति से चल रहा था-उन्होंने बालक के रोने की आवाज सुनी। निर्जनस्थान में बालक के रोने की एकांत आवाज सुनकर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ-उन्होंने अपने वायुयान को नीचे उतारकर देखा-चट्टान के नीचे एक सुन्दर बलवान बालक पड़ा रो रहा था। उन्होंने आश्चर्य से उसे उठाया और अपनी रानी को दिया। रानी निःसंतान थी। उसने हर्ष के साथ उसे लिया और प्यार से उसका मुंह चूम लिया। बालक का मुंह कुण्डलों की प्रभा से चमक रहा था, उसका नाम भामंडल रक्खा गया। रानी की सुनी गोद भर गई-बालक बड़े यत्न से बढ़ने लगा।

(2)

बालिका सीता अब यौवनपूर्ण थी, इसी समय एक घटना हुई-

मयूरमाला देश का राजा आर्तेगल बहुत ही उद्दंड और अभिमानी था, उसकी महत्वाकांक्षाओं ने उसे बहुत ऊपर चढ़ा दिया था। एक दिन अचानक ही उसने मिथुलापुर पर आक्रमण कर दिया। राजा जनक यह आक्रमण रोकने में असमर्थ थे उन्होंने अपने मित्र राजा दशरथ से इस युद्ध के लिये सहायता मांगी। राजा दशरथ स्वयं इस युद्ध में जाना चाहते थे लेकिन वीर बालक राम और लक्ष्मण ने उन्हें युद्ध में

जाने से रोका-वे स्वयं दोनों भाई इस युद्ध में अपनी वीरता दिखलाना चाहते थे, राजा दशरथ को उनके वीरत्व पर विश्वास था, उन्होंने सेना के साथ दोनों पुत्रों को राजा जनक की सहायता के लिये भेज दिया।

राजकुमार राम ने वीरता से शत्रु के छक्के छुड़ा दिए, उसकी फौज राम की सेना की विकट मार से भागने लगी। राम का युद्ध कौशल उस समय देखने ही योग्य था-तलवार घुमाते हुए वे चारों ओर से शत्रु की सेना का संहार कर रहे थे। आर्तंगल उनसे युद्ध करने के लिये सामने आया लेकिन वीर राम ने उसे अपने शस्त्रों के आक्रमण से निरस्त्र करके जीता ही पकड़ लिया।

राम की इस वीरता पर जनक हृदय से मुग्ध थे। उन्होंने अपनी कन्या सीता का पाणिग्रहण वीर युवक राम से ही करने का दृढ़ संकल्प किया और उन्हें आदर सहित उनकी राजधानी को वापिस भेज दिया।

(3)

विनोद प्रिय नारद ने सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी थी, उसके देखने के लिये वे जनक के राजमहल में आए थे। उस समय सीता दर्पण में अपना सुंदर मुंह देख रही थी, पीछे से ही उसने दर्पण में जटाओं से भरे हुए नारद के भयानक मुंह को देखा। ओह! यहां कौन राक्षस हैं ? अचानक ही उसके मुंह से एक आवाज निकली। नारद ने इसे सुना, उनके क्रोधी हृदय के उमड़ने को इसके अतिरिक्त और चाहिए ही क्या था ? क्रोध में पागल होकर वे उसी समय राजमहल से निकल आए।

वे सीता सेअपने अपमान का बदला लेने की बात सोचने लगे उनकी बुद्धि ने उनका साथ दिया। उन्होंने कुमारी सीता का अपनी कला के बल से एक सुन्दर चित्र बनाया। चित्र देखकर वे स्वयं बड़े प्रसन्न थे, उनके हाथ अपनी दुर्भावना पूर्ति का एक साधन हाथ लग गया था। अब वे उसे लेकर आगे बढ़ना चाहते थे। इसी समय उन्होंने बन में विनोद के लिए आते हुए भामण्डल को देखा-कुमार भामंडल तरुण थे, बलवान थे, सुन्दर थे, अपने कार्य के लिये नारद जी ने उन्हें उपयुक्त समझा। जब वे एक वाटिका के निकट क्रीड़ा कर रहे थे, उस समय उन्होंने सीता के उस चित्र को गुप्त रूप से एक वृक्ष के नीचे छोड़ दिया और वे वहां से अन्तर्ध्यान हो गए।

भामण्डल ने घूमते हुऐ उस सीता के चित्र को देखा-उस चित्र पर हृदय से मुग्ध हो गए। भ्रमण में अब उनका मन बिलकुल भी नहीं लग रहा था, बेचैनी हृदय को विकल कर रही थी। हृदय में एक दर्द को लेकर वे अपने राजमहल में आकर शैय्या पर लेट गए। मित्रों ने किसी तरह उनके इस दर्द को पहिचाना, महाराजा चन्द्रगति से उन्होंने यह सब संवाद कहा, बहुत खोज के बाद राजा चन्द्रगति को चित्रपट की कन्या का पता लगा। उन्होंने अपने कुशल दूत द्वारा राजा जनक को अपनी राजधानी में बुलाया और अपने पुत्र भामंडल के लिये उनसे जानकी की याचना की।

कुमार राम को अपनी कन्या देने का राजा जनक दृढ़ संकल्प कर चुके थे। जानकी उनके रूप और गुणों पर हृदय से मुग्ध है, यह भी वे जान चुके थे। उन्होंने राजा चन्द्र के सामने इस संबंध में अपनी

असमर्थता प्रकट की।

राजा चन्द्रगति किसी तरह भी जानकी को लेना चाहते थे, लेकिन जब उन्होंने अपनी इच्छा पूर्ण होते नहीं देखी तो वे रूष्ट होकर बोले-राजा जनक ! आपको अपनी कन्या का संबंध वीर पुरुष से करना चाहिए, भामंडल वीरता में अद्वितीय हैं। वेही कुमारी सीता के लिए योग्य पात्र हैं ।

वीर राम के सामने जनक किसी की वीरता को स्वीकार नहीं करना चाहते थे, तब अंत में चन्द्रगति ने एक निर्णय दिया, वे बोले-राजा जनक ! मुझे देवताओं ने दो धनुष्ट दिए हैं वे धनुष्य बहुत भंयकर हैं, यदि आपके राम वास्तव में वीर हैं तो वे धनुष्य को चढ़ायें, धनुष चढ़ाकर ही वे सीता के योग्य हो सकते है। यदि वे धनुष चढ़ा सके तो आप बिना किसी हिचकिचाहट के सीता का संबंध उनसे कर दीजिए, नहीं तो फिर आपको सीता का विवाह भामंडल से करना होगा।

राम के बल पर जनक को विश्वास था, उन्होंने यह निर्णय मान लिया, दोनों धनुष्य राजा जनक के यहां परीक्षण के लिए लाकर रख दिए गए।

जानकी स्वयंवर की धूम थी, अनेक देशों के राजकुमार मिथुलापुर आए थे, राजकुमारों के साहस की परीक्षण होनेलगा।

जानकी के रूप से आकर्षित राजकुमार धनुष्य चढ़ाने के लिए उठते थे, लेकिन उसकी प्रचंडता को देखकर हृदय थामकर अपने स्थान पर बैठ जाते थे। इस तरह प्रायः सभी राजकुमार अपना प्रदर्शन दिखला चुके थे, लेकिन धनुष उठाकर उसे चढ़ाने का साहस किसी में नहीं हुआ।

यह सब देख राजकुमार लक्ष्मण का हृदय वीर दर्प से उबल उठा उन्हें राजकुमारों की इस कायरता का बड़ा क्रोध आया, वे खड़े हो गए और अपने अग्रज से उन्होंने धनुष चढ़ाने की आज्ञा मांगी।

श्री राम जी अब तक अपने हृदय के वीरत्व को छिपाए बैठे थे, वे स्वयं उठे। उन्होंने वज्रावर्त धनु को उठाया और लक्ष्मण जी को भी धनुष उठाकर चढ़ाने की आज्ञा दी।

राम ने धनुष को चढ़ाया उसके चढ़ाते ही एक भयंकर शब्द हुआ। धनुष में से अग्नि की चिनगारियां निकलने लगी। उन्होंने उस देवों पुनीत धनुष को इतना झुकाया कि वह झुककर टुकड़े टुकडे हो गया। लक्ष्मण जी के हाथ से भी धनुष का यही हाल हुआ।

राम के वीरत्व का परीक्षण हो चुका था। हर्षित हृदय जानकी ने अपने हृदय से श्री राम के गले में वरमाला डाली। सुन्दरी सीता को प्राप्त कर राम प्रसन्न थे। उन्होंने उसे अपने साथ लेकर अयोध्या मे प्रवेश किया।

(4)

एक दिन जब संध्या का समय था, दशरथ जी अपनी अट्टालिका पर से जगन्मोहनी प्रकृति के सौभाग्य का दर्शन कर रहे थे, आकाश में एक स्थल उत्तुंग हाथी के श्वेत शरीर पर उनकी दृष्टि लगी हुई

थी। अचानक ही उसके सभी अङ्ग गलने लगे, उनके देखते देखते गजराज का संपूर्ण रूप विलय हो गया। इस दृश्य ने उन्हें वैराग्य के क्षेत्र में ला पटका। उनका मन अब संसार में एक क्षण को भी रहने को तैयार नहीं था, श्रीराम को अवध का राज्य देकर वे मुक्ति के पथ पर अग्रसर होना चाहते थे।

श्री राम को राज्य तिलक देने की तैयारियां होने लगीं, जनता इस महोत्सव में बड़ी दिलचस्पी से भाग ले रही थी, आज राजतिलक होने वाला था इसी समय एक अंतराय उपस्थित हुआ।

रानी केकई पुत्र भरत बालकपन सेही विरक्त था, अपने पिता को वैराग्य के क्षेत्र में अग्रसर हुआ देख उसके विरक्त विचारों को एक और अवसर मिला। वह भी राजा दशरथ के साथ ही वैरागी बनने के लिये तैयार हो गया। केकई ने यह बात सुनी, उसका हृदय पति के साथ ही पुत्र वियोग से कराह उठा। वह कर्त्तव्य-विमूढ़ होकर कुछ समय को घोर चिंतामग्न हो गई। उसकी सखी मन्थरा थी, मंथरा बहुत ही चालाक और कुटिल हृदय थी, रानी की चिंता का कारण उसे मालूम हो गया था। उसने रानी केकई को एक सलाह दी। वह बोली रानी ! यह समय चिंता का नहीं प्रयत्न का है। यदि इस समय को तूने चिंता में खो दिया तो जीवनभर तुझेअपने जीवन के लिए रोना होगा। तुझे राजा ने वरदान दिए थे, उन वरदानों के द्वारा तू अपने प्रिय पुत्र भरत के लिये राज्य मांग ले, लेकिन ध्यान रखना प्रतापी राम के रहते हुये भरत राज्य नहीं कर सकेगा, इसलिये राज्य की सुरक्षा के लिये राम के बनवास का भी दूसरा वर मांग लेना।

केकई सरलहृदया नारी थी। उसका इतना साहस नहीं होता था लेकिन मन्थरा ने साहस देकर उसे इस कार्य के लिये तैयार कर लिया।

दशरथ वरदान देने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध थे। केकई ने वरदान मांगा और उसे मिला। श्री राम के मस्तक को सुशोभित करने वाला राज्यमुकुट भरत के सिर पर चढ़ाया गया- भरत ने माता का संकोच, पिता की आज्ञा और भाइयों के आग्रह को माना।

पितृभक्त राम ने अपने राज्याधिकार की चर्चा तक नही की। उन्होंने सहर्ष पिता की आज्ञा स्वीकार की। वनवास की आज्ञा से उनका हृदय तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उन्होंने कष्टों को हंसते हंसते अपने गले से लगाया। पतिप्राणा सीता और भ्रातृभक्त लक्ष्मण ने उनका साथ दिया। वनवास की अकथनीय वेदनाएं, एकांतवास का कष्ट और राज्य का प्रलोभन उन्हें सत्य प्रण से नहीं डिगा सका, वे वनवास को चल दिए।

अयोध्या की जनता को उनके जाने का असह्य कष्ट था लेकिन वे इसे मौन रूप से सह रहे थे। माता और जनता के स्नेह बंध को तोड़कर श्रीराम वनवास को चल दिए। माताओं ने अश्रुधार बहाई। लेकिन वे सबके हृदय को धैर्य बंधाते हुए अपने पथ पर बढ़ चले।

(5)

महात्मा रामचन्द्र और अरण्य में विचरण करने लगे, हिसंक जंतुओं से व्याप्त वनो और भयानक

कन्दाराओं को उन्होंने अपना निवासस्थान बना लिया। भयानक जंगलों और गुफाओं में चलते हुए उनका हृदय जरा भी व्याकुल नहीं होता। वे इस भ्रमण से प्रसन्न थे।

वृक्षों के मधुर फल खाकर अपनी क्षुधा शांत करते हुए वे कौंचरवा सरिता को पारकर दंडकारण्य के निकट पहुंचे। गिरि की सुन्दरता ने उनके हृदय को आकर्षित कर लिया। वे कुछ समय को विश्राम लेने के लिए वहीं एक कुटी बनाकर ठहर गए।

लक्ष्मण प्रकृति के उपासक थे। प्रकृति का अबाधित साम्राज्य गिरि के चारो ओर फैला हुआ था। उसकी मनोमोहकता ने उनका हृदय मुग्ध कर लिया था।

एक दिन प्रकृति की शोभा निरीक्षण करते हुये वे बहुत दूर पहुंच गये थे, वहां उन्होंने एक वांस के जंगल को देखा। वांस का वह सारा जंगल एक अद्भुत प्रकाश से प्रकाशित हो रहा था। देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वे उस प्रकाश की खोज करने के लिये वांसों के निकट पहुंचे। उसके अंदर उन्होंने एक चमकती हुई वस्तु देखी। आगे चलकर उन्होंने उसे उठा लिया। वह चमकता हुआ तीक्ष्ण खड्ग था, खड्ग की तीक्ष्ण धारके परीक्षण के लिये उन्होंने उसे वांसों पर चलाया। अब क्या था उनके देखते देखते सम्पूर्ण वांस का जंगल कट गया। उसमें बैठा हुआ शंवुक कुमार का शिर भी कट कर जमीन पर गिर गया।

आश्चर्य चकित लक्ष्मण उस खड्ग को लेकर अपने स्थान को चले आए।

रावण की बहिन चन्द्रनखा का पुत्र वांस के जंगल में बैठा हुआ दैविक खड्ग की उपासना कर रहा था, उपासना करते हुए उसे एक माह हो चुका था, उसकी मां उसे नित्यप्रति भोजन लाया करती थी।

शंवुक की आराधना आज समाप्त हो चुकी थी। खड्ग उसके सामने पड़ा था लेकिन उसका दुर्भाग्य उसके साथ था। वह शंवुक को न मिलकर लक्ष्मण के हाथ लगा। उसे उसके द्वारा मृत्यु ही हाथ लगी।

आज चन्द्रनखा अपने पुत्र के लिये नियमानुसार भोजन लाई थी। उसका हृदय आनंद से विकसित हो रहा था। लेकिन यह क्या ? देखकर उसका मस्तक विकृत हो गया। उसके पुत्र का कटा हुआ सिर उसके सामने पड़ा हुआ था। वह अपने हृदय के दुःख को नहीं सम्हाल सकी और मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी।

जब उसे होश आया तब अपने पुत्र के कटे सिर को गोद में लेकर विलाप करने लगी। रोते रोते जब उसके हृदय की वेदना कुछ हलकी हुई तब वह अपने पुत्र घातक का पता लगाने जंगल की ओर बढ़ी। आगे जाकर उसने एक स्थान पर बैठे हुए रामचन्द्र जी को देखा देखकर वह उनके सौन्दर्य से मोहित हो गई। उसके हृदय का पुत्र शोक वह गया, शोक का स्थान काम देव ने ले लिया। मदन की तीव्रता ने उसको लज्जा को खो दिया। उसने बड़ी निर्लज्जता से अपने काम विकार को श्रीरामचन्द्र जी पर प्रकट किया। लेकिन उसे अपने प्रयत्न में असफल होना पड़ा। निराशा ने चन्द्रनखा के क्रोध को भड़का दिया,

वह शंवुक के कटे सिर को अपनी गोद में लेकर अपने पति खरदूषण के पास पहुंची। रोते रोते उसने पुत्र बध की करूण कहानी सुनाई। वह बोली- उस नृशंस व्यक्ति ने पुत्र बध नहीं किया, किन्तु उसने मेरे सतित्व को भी नष्ट करना चाहा। सौभाग्य था जो मैं अपने सती धर्म की रक्षा कर सकी अन्यथा आप यहां इस समय मुझे जीवित नहीं देख पाते, मेरे धर्म पर जरा सी आंच आने पर मैं अवश्य ही अपना प्राण त्याग कर देती।

पुत्र वध से खरदूषण का हृदय घायल हो चुका था। पत्नी की व्यथा की कहानी ने उस पर नमक छिड़कने का कार्य किया। वह उसी समय अपना संपूर्ण सैन्य लेकर श्रीराम से युद्ध करने के लिये चल दिया।

पति को युद्ध के लिये तैयार कर देने के बाद चंद्रनखा ने अपने भाई रावण को भी उमाढ़ा, वह उसके पास जाकर अपना दुख रोने लगी। रावण ने उसे धैर्य दिया और अपना वायुयान सजाकर खादूषण की सहायता के लिये चल दिया।

(6)

अचानक ही पृथ्वी मंडल को धूल से धूसरित देखकर श्री राम का हृदय किसी अज्ञात आशंका से भर गया। हाथियों के गर्जन और घोड़ो के उच्च नाद से उन्हें किसी सैन्य का आना स्पष्ट ज्ञान हो गया। उनके प्रतिभाशाली मस्तिष्क ने सैन्य के आने के कारण शीघ्र ही सोच लिया। उन्होंने निश्चिय कर लिया कि अपमानित महिला ने पुत्र वध का बदला लेने के लिये ही यह प्रयत्न किया है, वे अपने धनुष को उठाकर युद्ध के लिये आगे बढ़े।

वीर लक्ष्मण ने उन्हें युद्ध के लिये रोकते हुए कहा-पूज्य भाई! मेरे रहते हुए आप युद्ध के लिये जाए यह कभी नहीं हो सकता। आप जानकी की रक्षा कीजिए। मैं इन कायरों का दमन करके अभी लौट आता हूं। यदि मुझे आपकी सहायता की आवश्यता होगी तो मैं सिंहनाद करूंगा उसे सुनने पर ही आप मेरी सहायता के लिये आइए। यह कहकर लक्ष्मण जी अपना धनुष लेकर खरदूषण से युद्ध करने के लिये चल दिए।

खरदूषण की सहायता के लिये रावण आकाश मार्ग से जा रहा था। इसी समय अचानक ही उसकी दृष्टि वन में बैठी हुई सुन्दरी सीता पर पड़ी, उसे देखते ही वह उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। युद्ध की बात भूलकर वह सीता के पाने की बात सोचने लगा। वह अब युद्ध के लिये नहीं जाना चाहता था लेकिन खरदूषण का साहस बढ़ाने के लिये वह अपने आने की सूचना देना चाहता था। अपने आने की सूचना देने के लिये उसने उच्च स्वर से सिंहनाद किया। सिंहनाद ने उसके प्रयत्न में सहायता दी। सिंहनाद सुनकर भाई लक्ष्मण पर संकट की बात जानकर श्रीराम उनकी सहायता के लिये चल दिए सीता अब एकाकी थी।

रावण अत्यन्त प्रसन्न था। वह वायुवान से उतरा और एकाकिनी सीता को बाहुबल से उठाकर विमान द्वारा अपनी राजधानी लंका को ले चला।

खरदूषण का वध करके लक्ष्मण जी युद्ध जीतकर लौट रहे थे, श्रीराम को आते देख उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वे बोले-पूज्य भाई ! एकाकिनी सीता को छोड़कर आप किसलिए आ रहे हैं ? श्रीराम का मन लक्ष्मण के इस प्रश्न से व्यग्र हो उठा, वे बोले-सिंहनाद सुनकर तुम्हारी, सहायता के लिये आ रहा हूं। लक्ष्मण जी को इस उत्तर से संतोष नहीं हुआ। वे बोले-पूज्य भाई ! आपको धोखा दिया गया है, युद्ध तो मैं जीत चुका हूं अब हम शीघ्र चलकर जननी सीता को देखें।

दोनों भाई शीघ्र वापिस लौटे, उन्होंने देखा सीता यहां नहीं है, वे शीघ्र ही समझ गए कि सीता हरण के लिए किसी व्यक्ति ने हमारे साथ छल किया है। इस दुर्घटना का श्रीराम के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा, वे सीता जी के वियोग में पागल बन गए। उसके गुणों का स्मरण करके जंगल में इधर उधर घूमने लगे। लक्ष्मण जी ने समझाकर उनके शोक को कुछ कम किया, तब दोनों भाई सारे जंगल में घूमकर सीता जी की खोज करने लगे, लेकिन सारा जंगल छान डालने पर भी उन्हें जानकी का कुछ भी पता नहीं लगा, तब वे निराश होकर अपनी कुटी को लौट आए।

(7)

किष्किंधापति सुग्रीव बलशाली राजा था, अपनी प्रिय पत्नी सुतारा से उसे अत्यंत स्नेह था, सुतारा सुन्दरी और सुशील थी।

एक दिन विद्यापति साहसगति ने सुतारा को देखा, वह उसी दिन से उसके पाने का प्रयत्न करने लगा। एक दिन मौका पाकर वह सुतारा का हरण कर अपनी राजधानी को ले आया। सुग्रीव को पत्नि हरण का पता लगा, लेकिन उसे साहसगति की विद्याओं और शक्ति का पता था, उससे युद्ध करने का साहस उसमें नहीं था।

खरदूषण के साथ किए गये युद्ध से उसे लक्ष्मण जी की शक्ति का पता लग गया था, वह अपनी सहायता के लिये उनके पास गया। सीता वियोग से श्रीराम का हृदय बेचैन हो रहा था लेकिन शरणागत की सहायता करना अपना कर्त्तव्य समझा, साहसगतिको युद्ध द्वारा जीतकर उन्होंने सुग्रीव की सहायता की। सुतारा सुग्रीव को प्राप्त हो गई।

अपने त्राण कर्त्ता रामचन्द्र जी की पत्नि सीता का पता लगाना सुग्रीव ने अपना कर्त्तव्य समझा और वे उसकी खोज के लिये निकले। लंकापति रावण सीता का हरण कर ले गया है इसका पता उन्हें लगा, वे लौट आए और रावण द्वारा सीता हरण का समाचार श्रीराम को सुनाया। रावण की शक्ति और वीरता का परिचय भी उन्हें दिया।

सीता का पता लग जाने पर उसकी कुशल जानने के लिए श्री राम का हृदय बेचैन हो उठा, उन्होंने सुग्रीव से अपने मन का हाल कहा।

सुग्रीव की शक्ति नहीं थी वह लंका जाकर यह सब समाचार ला सके, उसने अपने पराक्रमी और बलवान मित्र हनुमान से इस कार्य में सहायता चाही। श्री राम की शरण वत्सलता और रावण के इस आत्याचार की कहानी भी सुग्रीव ने उनको सुनाई।

हनुमान जी न्याय के पक्षपाती थे, दुखी की सहायता करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। उन्होंने सुग्रीव को श्री राम की सहायता करने का वचन दिया और सीता की कुशल लेने वे लंका को चल दिए।

अशोक वाटिका के निकट उन्होंने वियोगिनी सीता को देखा श्रीराम को भेजी हुई मुद्रिका उन्होंने सीता जी को दी। सीता के हृदय का दुःख इससे कुछ कम हुआ।

हनुमान जी ने रावण से सीता लौटा देने का बहुत आग्रह किया लेकिन उसने एक बात भी नहीं सुनी और हनुमान का अपमान करके राज्य सभा से निकाल दिया।

रावण ने सीता जी को अपने प्रमद नामक सुन्दर उद्यान में रक्खा था। सैकड़ों दासियां उसकी सेवा में थी स्वर्गीय साम्राज्य उसकी नजर था, लेकिन उसने किसी पर भी दृष्टि नहीं डाली। उसे कोई चाह नहीं थी। उसका मन तो राम में रमा था। राम के अतिरिक्त संपूर्ण संसार का वैभव उसके लिये कुछ भी नहीं था।

रावण ने अपने स्वर्गीय वैभव का लोभ उसे दिखलाया, अपनी अद्‌भुत शक्ति और पराक्रम का परिचय दिया, किन्तु वह प्रतिप्राण जानकी का मन अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका।

हनुमान ने सीता की कुशलता का समाचार श्रीराम को सुनाया, सुनकर उनके हृदय को बड़ी सान्तवना मिली। लेकिन यह जानकर दुःख भी हुआ कि रावण सीता को वापिस नहीं लौटाना चाहता। उन्होंने सुग्रीव आदि विद्याधरों से रावण के साथ युद्ध करने के लिये अपनी अपनी सैनायें संगठित करने के लिये कहा। महाबलि रावण से युद्ध करने की बात सुनकर सभी शूरवीरों के मुंह नीचे हो गए, उन्होंने श्रीराम से निवेदन किया -

रावण विश्व विजेता और महाशक्तिशाली है उससे युद्धकर विजय पाने की आशा आप त्याग दीजिए। यदि यह युद्ध आप अपनी पत्नि पाने के लिये कर रहे हैं तब तो यह बिलकुल बेकार है। हम आपको सीता से अत्यंत सुन्दरी अनेक कन्यायें दे सकते हैं। लेकिन सीता को लौटाकर लाना असंभव है।

राजाओं की कायरता तिरस्कार करते हुए रामचन्द्र जी बोले-राजाओ, हम सीता को ही चाहते हैं, सीता हमारी पत्नी है, अपनी पत्नी के अपहरण का अपमान वीर कभी भी नहीं भुला सकता। आप सब उस अत्याचारी को दण्ड देने से क्यों हिचकिचाते हैं। अन्यायी कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो लेकिन उसका पतन सम्भव है। वीर कभी अन्याय को सहन नहीं करते। रावण क्या, यदि अन्याय के सामने सारा संसार भी होता तो मैं उसका सामना करता। उस अन्यायी की तुच्छ शक्ति मेरे सामने क्या है ? मैं उसकी

शक्ति को नष्ट कर सीता को अवश्य ही लौटा कर लाऊंगा, यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है। यदि तुम्हें उसकी शक्ति का भय और अपने प्राणों का मोह है, यदि तुम अत्याचारी को दंड देने में अपने को असमर्थ पाते हो तो मुझे तुम्हारी सहायता की जरूरत नहीं है, राम अकेला ही अन्याय के दमन के लिये काफी है, तुम अपने प्राणों को लेकर पृथ्वी पर अमर बनकर रहो।

राम के वीर वचनों से विद्याधरों के हृदय गूंज उठे। उनका एक एक शब्द रूधिर में नई गति का संचार करने लगा। सब अपनी सेनायें सजाकर रावण से युद्ध के लिये कटिबद्ध हो गए।

हनुमान, सुग्रीव, नल, नील आदि वीर विद्याधर अन्याय के प्रतिकार के लिये लंका पर आक्रमण करने के लिये आगे बढ़े।

लंकापति को युद्ध ज्वाला के निकट आने का पता लगा। वह इस ज्वाला का सामना करने के लिये तैयार हुआ।

भाई विभीषण ने उसे समझाना चाहा और युद्ध की ज्वाला शांत करने के लिये सीता को दे देने का आग्रह किया। लेकिन उसका दुर्भाग्य यह सब मानने के लिये तैयार न था। विभीषण अपनी सेनाओं के साथ श्री राम से जा मिला। विभीषण के मिलने से श्री राम की शक्ति चौगुनी बढ़ गई। उन्होंने अब तेजी से लंका पर चढ़ाई कर दी।

विवेकशाली मंत्रियों और पत्नी मंदोदरी द्वार समझाये जाने पर भी रावण ने इस युद्ध को स्वीकार किया। वह अपने शक्ति के मद में चूर था- उसे अपने पुत्र और भाईयों की शक्ति पर विश्वास था। उसे अपनी असंख्य सैना पर भरोसा था।

दोनों ओर भयंकर युद्ध की ज्वाला जल उठी, दोनों ओर से अनेक जीव युद्ध में आहत हुए, रावण की शक्ति के स्तंभ कुंभकर्ण और इन्द्रजीत बंदी बना लिये गये।

विभीषण के द्रोह पर रावण अत्यंत कुपित था, उसे युद्ध में अपने सामने देख रावण ने एक भयंकर बाण का प्रहार किया, समीप खड़े हुए लक्ष्मण ने उसे अपने बाण से बीच में काट डाला। इससे कुपित होकर रावण ने इन्द्र द्वारा दिए शक्तिबाण का लक्ष्मण जी पर प्रहार किया। भयंकर बाण की शक्ति को लक्ष्मण सहन नहीं कर सके और कुम्हलाए हुए कुसुम की तरह भूतल पर गिर पड़े।

आज का युद्ध समाप्त हुआ, लक्ष्मण के पतन से रामचन्द्र जी को मारणांतिक पीड़ा हुई, शीध्र ही उनकी चिकित्सा की गई, लेकिन सब निष्फल हुई। इसी समय एक परिचित ने बतलाया कि द्रोणमेव राजा की कन्या विशल्या में अपूर्व शक्ति है, उसका पवित्र तेज मंत्र का कार्य करता है लेकिन उसका इस समय यहां लाना महा शक्तिशाली का काम है। वीर हनुमान ने उसे लाने का भार लिया। वे तेज गति से जाकर सबेरा होने के पहिले सती विशल्या को ले आए। उसके स्पर्श और मंत्रित जल के छिड़कने से शक्ति का प्रभाव नष्ट हो गया।

दूसरे दिन भयंकर युद्ध हुआ। लक्ष्मण द्वारा रावण का पतन हुआ। विजयी राम ने लंका में प्रवेश किया और वियोगिनी सीता को दर्शन देकर उसे नया जीवन दिया।

वनवास के बारह वर्ष व्यतीत हो चुके थे, भरत अब एक क्षण के लिये राज्य भार अपने सिर पर नहीं रखना चाहते थे। उन्होंने नारद जी द्वारा अपने राज्य त्याग का समाचार श्रीराम के समीप भेजा।

भाई की विनय और प्रजा की पुकार से श्री राम का हृदय पिघल गया उन्होंने पूर्ण वैभव के साथ अयोध्या में प्रवेश किया।

(8)

राम के जन्मोत्सव के बाद से अयोध्या अपने सौभाग्य से वंचित थी, आज राम के लौटने पर उसने अपना सौभाग्य फिर पाया, वह सौन्दर्य मय हो उठी।

विरागी भरत ने श्रीराम के चरणों पर अपना मुकुट रख दिया, वे एक क्षण के लिये भी अयोध्या में नही रहना चाहते थे। प्रजा की रक्षा के लिये श्रीराम को राज्यभार स्वीकार करना पड़ा।

रामराज्य से अयोध्या का गया हुआ गौरव पुनः लौट आया, प्रजा ने संतोष की सांस ली। राम प्रजा के अत्यंत प्रिय बन गए। उन्होंने राज्य की सुन्दर व्यवस्था की। प्रत्येक नागरिक को उनके योग्य अधिकार दिए, उनके राज्य में सबल और बलवान, धनी निर्बल और नीच ऊंच का कोई भेदभाव नहीं था, सबको समान अधिकार प्राप्त था।

सुखसागर में अशांति का एक तूफान उठा। तूफान की लहरें धीरे धीरे उठीं। श्री राम ने सीता के सतीत्व की परीक्षा के लिए बिना ही उसे अपने घर में स्थान दे दिया, वह रावण के यहाँ कितने समय तक रहीं, वहीं रहकर क्या वह अपने आपको सुरक्षित रख सकी होंगी ?

लहरें श्री राम के कानों तक जाकर टकराई। भयंकर तूफान उमड़ उठा, इस तूफान में पड़कर श्री राम अपने को संभाल नहीं सके, सीता का त्यागकर उन्होंने इस तूफान को शांत करने का प्रयत्न किया।

सीता जी भयंकर जंगल में निर्वासित थी। वहां उन्होंने प्रतापी लव कुश को जन्म दिया।

नारद द्वारा सीता जी परीक्षा देने के लिये एक बार फिर अयोध्या लाई गई उन्होंने अग्नि में प्रवेश किया और अपने सतीत्व की परीक्षा में सफल हुयीं लेकिन गृहस्थ जीवन उन्हें अब पसंद नहीं था वे श्री राम से आज्ञा लेकर उपस्विनी हो गई।

(9)

सीता के चले जाने पर श्री राम का जीवन शुष्क बन गया था उनका अब सारा मोह लक्ष्मण में आ समाया था।

एक दिन की बात, इन्द्रसभा में राम-लक्ष्मण के अद्‌भुत स्नेह की कहानी सुनकर कीर्तिदेव उनके

परीक्षण के लिये आया। आकर उसने श्री राम के निधन का झूठा समाचार श्री लक्ष्मण को सुनाया, लक्ष्मण का हृदय श्री राम का निधन सुनकर टूट गया, वे मूर्छित होकर भूतल पर गिर पड़े। उनकी वह मूर्च्छा मृत्यु के रूप में परिवर्तित हो गई। कीर्ति देव को स्वप्न में भी इस दुर्घटना की आशंका नहीं थी, लक्ष्मण को मृतक देख उसके हृदय में भूकंप हो गया, उसे अपने कृत्य पर बड़ा पश्चाताप हुआ।

लक्ष्मण पर श्रीराम को हार्दिक स्नेह था, उन्हें पृथ्वी पर पड़े देखकर उनके स्नेह बांध टूट पड़ा, लक्ष्मण जी का शरीर मृतक बन चुका था लेकिन श्री राम उसे अब तक जीवित ही समझ रहे थे। वे लक्ष्मण को मूर्छित समझकर अनेक प्रयत्नों से उनकी मूर्छा हटाने का उद्योग करने लगे।

जनता राम लक्ष्मण के स्नेह को समझती थी, वह यह भी जानती थी कि श्री लक्ष्मण का देहावसान हो चुका है लेकिन मोहमग्न राम को कोई समझा नहीं सका। उनके इस मोह में सबकी सहानुभूति थी, लेकिन सहानुभूति ने अब दया का रूप धारण कर लिया था। धीरे धीरे श्री राम का यह मोह जनता के कौतूहल की वस्तु बन गया। वे लक्ष्मण के मृत शरीर को कंधे पर रखकर घूमते थे। कभी उसे भोजन खिलाते, कभी श्रृंगार कराते और कभी उसे उठाने का निष्फल और हास्जनक प्रयत्न करते थे। राज्यकार्य उन्होंने त्याग दिया था। इस तरह छह मास तक उनका यह मोह का संसार चलता रहा, अंत में उनका मोहबंधन टूटा, उन्होंने अपने भाई के मृतक शरीर का संस्कार किया।

संसार - नाटक के अनेक दृश्योंको देखते देखते श्री राम का दृश्य अब ऊब गया था। राज्य कार्य और वैभव के वातावरण से अब वह अपने को दूर रखना चाहते थे। उनकी निर्मल आत्मा पर से मोह का आवरण हट चुका था। उनकी आत्मोद्धार इच्छा प्रबल हो उठी और एक दिन वे अपने प्रतापी पुत्र को राज्यभार सौंप कर सन्यासी बन गए।

निर्मल आकाश में सूर्य रश्मिएं जिस तरह चमकती हैं उसी तरह श्री राम का शरीर तप के दिव्य तेज से प्रकाशमान हो उठा। देवताओं को उनकी इस निर्ममत्वता पर आश्चर्य होने लगा, उनकी परीक्षा का तीर छूट चुका था। योगी राम के चारों और विलास का वातावरण फैल गया, कोयल का पंचम नाद, मधुकारों का गुंजन, पुष्पों की मत्त सुरभि और बालाओं का मृदु स्वर से सारा वन गूंज उठा।

परंतु राम का मोह तो गल चुका था। सीता का सौन्दर्य भी अब उसे जिला नहीं सकता था, परीक्षण बेकार था। प्रलोभन विजित हुए, श्रीराम के आत्म-तेज की विजय हुई।

योगी राम के निर्ममत्व की देवताओं ने प्रशंसा की। महात्मा राम अब महात्मा राम ही थे।

⌘⌘⌘

तपस्वी वालिदेव

(दृढ-प्रतिज्ञ, वीर और योगी)

(1)

प्रबल प्रतापी सम्राट् दशानन अपने प्रधानमंत्री की ओर निरीक्षण करते हुये कहा मन्त्री! नहीं। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। क्या मेरे अखण्ड प्रताप से वह अवगत नहीं ? भारतवर्ष के नरेश्वरों को किंचित् भृकुटिमात्र के बल से विकंपित कर देने वाले दशानन की शक्ति से क्या वह अपरिचित है ? नहीं , यह असत्य संलाप है।

मंत्री ने कहा- महाराज ! यह अक्षरशः सत्य है, आपका मंत्री मंडल कदापि असत्य संभाषण नहीं करता, उसे अपने कथन पर पूर्ण विश्वास रहता है। सत्य अन्तस्थल में प्रवेश करे ही आपके सम्मुख वाक्य उच्चारण किया जाता है। यह अटल सत्य है कि बालिदेव ने सुमेरु पर्वत जैसी यह निश्चल प्रतिज्ञा ली है, वह जैनेन्द्रदेव, दिगम्बर ऋषि के अतिरिक्त किसी विश्व के सम्राट् को नमस्कार नहीं करेंगे।

दशानन ने कहा-मन्त्री ! तब क्या बालिदेव ने मुझे नमस्कार करने की अनिच्छा से ही ऐसा किया है ? नहीं ! बालिदेव का राज्य मेरे आश्रित है। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वह मुझे प्रणाम न करे और मेरी आज्ञा शिरोधार्य न करें ? मंत्री ! प्रयत्न करने पर भी तुम्हारी इस बात पर मुझे विश्वास नहीं होता।

मंत्री ने कहा-महाराज ! कर कंकण को आरसी की क्या आवश्यकता ? एक दूत भेजकर आप इसका स्वयंनिर्णय कर सकते हैं। लंकेश की मुद्रा से अंकित एक आज्ञापत्र उसी समय वाली देव के पास राज्य दूत द्वारा भेजा गया।

(2)

बालिदेव किष्किन्धा नगर के अधिपति थे। प्रख्यात कपिवंश में उनका जन्म हुआ था, वह बड़े पराक्रमी वीर और दृढप्रतिज्ञ थे। उन्हें यह राज्य दशानन की कृपा से प्राप्त हुआ था। राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही उन्होंने अपने दृढ़ प्रतिक्रम के प्रभाव से अल्प समय में ही अनेक विद्याधरों को अपने आश्रित कर लिया था। तटस्थ समस्त राजाओं में वह महामंडलेश्वर के नाम से प्रसिद्ध थे। निकटस्थ राजाओं पर उनका अद्भुत प्रभुत्व था। उनकी उन सब पर अनिवार्य आज्ञा चलती थी।

बाली देव धर्मनिष्ट कर्मठ और विद्वान् थे। जैन धर्म पर उन्हें निश्चल श्रद्धा थी। नित्यकर्म पालन में वह सतर्कतापूर्वक निरन्तर तत्पर रहते थे।

तपस्वी ऋषियों के वह बड़े भक्त थे। उनके दर्शन से उन्हें अत्यंत आल्हाद, आनंद और भक्ति उत्पन्न होती थी।

प्रभात के सुंदर समय में वन विहार करते हुये एक दिन बालिदेव ने तपस्वी शुभंकर को देखा। उनके दर्शन से वे बहुत प्रसन्न हुए, उनके नेत्रों से आनंदाश्रु बहने लगे, हृदय पुलकित हो उठा। उन्होंने भक्तिभाव से ऋषीश्वर के चरणों में प्रणाम किया। ऋषि ने धर्मस्नेह- पूर्वक उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर वह धर्म की विशद रूप से विवेचना करने लगे। बालिदेव को धार्मिक व्याख्यान सुनने में अत्यंत आनंद आता था। ऋषिराज का विशद और मनोहर धार्मिक व्याख्यान सुन उनका मन तन्मय हो गया। आज के भाषण का उनके हृदय पटल पर अपूर्व प्रभाव पड़ा, उनका हृदय पूर्ण श्रद्धा से परिपूरित हो गया और उन्होंने उसी समय मुनिराज के सामने निम्न प्रतिज्ञा करने की इच्छा प्रकट की। वह कहने लगे-प्रभो! मेरा हृदय जिनेन्द्र देव के चरणों में पूर्णत अनुरक्त हो गया है। आज मैं आपके सामने यह दृढ प्रण लेता हूं कि श्री जिनेन्द्रदेव, दिगम्बर मुनि और चारित्रवान श्रावकों के अतिरिक्त संसार के किसी भी व्यक्ति को मैं प्रणाम न करूंगा। इस प्रतिज्ञा में आप मेरे साक्षी हैं।

मुनिराज ने कहा-वत्स! तुमने यह प्रतिज्ञा ली है सो ठीक किया, किन्तु प्रतिज्ञा लेने के पहले हर एक व्यक्ति को उसके महत्व को जान लेने की पूर्ण आवश्यकता है। मनुष्यों के जीवन में प्रतिज्ञा जीवन मरण की एक परीक्षा है। प्रतिज्ञा सुदृढ़ बंधन है जिसमें बंधकर मनुष्य का मृत्यु के साथ ही छुटकारा पाता है। प्रतिज्ञा प्राणों का एक सारभूत रस है जिसके भङ्ग हो जाने पर प्राणों का रहना निःसार सा हो जाता है। राजन्! प्रतिज्ञा लेना तो आसान है, किन्तु उसका पालन करना असिकी तीक्ष्ण धार के ऊपर चलने के सदृश अतिशय कठिन है।

प्रतिज्ञा वह वस्तु है जिसके बल पर मानव संसार के प्रभुत्व को प्राप्त कर सकता है। और उसे मांग कर वह अपने जीवन को तुच्छ कीट के सदृश निःसार बना सकता है। प्रतिज्ञा पालन में महान आत्म शक्ति की आवश्यकता होती है। तुम्हें यह ज्ञात है कि प्रतिज्ञा भंग करने का कितना महान् पाप होता है। प्रतिज्ञा पालन करके उसके द्वारा उपार्जित पुण्य तो प्रतिज्ञा भंग के पाप के सामने सरसों के समान हैं। वत्स! प्रतिज्ञा बड़ी महत्वपूर्ण वस्तु है। अच्छा! जो प्रतिज्ञा तुमने ली है उसे प्राणप्रण से पालन करना यही मेराअनुरोध है।

बालिदेव ने कहा-भगवन्! आपकी कृपा से मैंने प्रतिज्ञा के महत्व को सम्यग् रूप से समझ लिया है आपकी दया से इस प्रतिज्ञा का मैं प्राण प्रण से पालन करूंगा। मेरी प्रतिज्ञा प्राणों के साथ ही भंग होगी।

मुनिराज ने कहा- वत्स! तेरा कल्याण हो।

बालिदेव ऋषिराज को पुनः प्रणाम किया और वह अपने स्थान को लौट आए।

(3)

लङ्काधिपति की गर्वपूर्ण प्रकृति समस्त नरेश्वरों को विदित थी। बालिदेव भी उनकी अभिमानपूर्व प्रवृत्ति से परिचित थे। उनके हृदय में कभी कभी यह आशङ्का हो उठती थी कि मेरी यह प्रतिज्ञा लंकेश

को अवश्य ज्ञात होगी और तब मुझे एक दिन उनका कोप भाजन बनना पड़ेगा। किन्तु उन्हें अपनी आत्मशक्ति पर विश्वास था, इसीलिये वह अपनी प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में निश्चित थे।

महाराज बालिदेव सिंहासनारूढ़ थे, इसी समय द्वारपाल ने आकर निवेदन किया महाराज-लंकाधिपति का दूत आपके दर्शन करनेकी प्रार्थना कर रहा है।

महाराज उसे आने की आज्ञा देते हुए मंत्री की ओर एक आशय पूर्ण दृष्टि से निरीक्षण किया, मंत्री भी उनकी ओर उसी भांति देखा।

लंकेश के दूते ने राज्य सभा में प्रवेश करके राज्य प्रथानुसार महाराज को प्रणाम किया और अपने प्रभु का संदेश पत्र उन्हें दिया। महाराज की आज्ञा से मंत्री ने पत्र पड़ा, पत्र निमग्नकार था-

राजन्! उभयत्र कुशलं।

आपके और हमारे वंशधरों में अधिक समय से मैत्री भाव चला आता है। आपको पूर्व परम्परा का पालन करने के लिये सावधान रहना चाहिये। आपको स्मरण होगा मैंने आपके पिता को राजा यमक राज्य प्रदान किया था इसलिये तुम्हें यह उचित है तुम हमारी उस कृपा के फलस्वरूप अपनी बहिन श्रीमाला हमें समर्पण करो और मुझे प्रणाम कर मेरे महत्व का प्रदर्शन करो। हितैषी-रावण।

लंकेश के उक्त संवाद को बालिदेव ने ध्यान पूर्वक सुना। उन्हें उसकी उद्धतता पर कुछ कुछ रोष भी हुआ किन्तु अपने मनोगत भाव को दबाते हुये उन्होंने मंत्री से कहा-मंत्री! लंकेश की अन्य समस्त आज्ञाएं माननीय है, उनका सर्वथा रूपेण पालन किया जा सकता है, किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि मैं उन्हें प्रणाम करूं।

मैं अपनी प्रतिज्ञा से नहीं टाल सकता। जब मैंने अपनी प्रतिज्ञा को आजन्म पालन करने का प्रण किया है तब मैं उस अव्रती व्यक्ति को प्रणाम कैसे कर सकता हूं? नहीं। यह कभी नहीं हो सकता। उन्होंने दूत से कहा-दूत! जाओ!! तुम अपने प्रतापी प्रभु को मेरा यह संदेश सुना देना कि बालिदेव प्राण रहते हुये भी आपको नमस्कार करने को तैयार नहीं।

दूत ने कहा -महाराज! आपका यह वक्तव्य अज्ञानता पूर्ण है। भला जिस महाप्रभु के चरणों के प्रताप से पूर्ण पृथ्वी जल के समस्त नरेश्वर वृन्दों के मुकुट स्पर्श करते हैं उनको नमस्कार न करना आपकी उद्धतता नहीं तो क्या है? महाराज! आपकी यह प्रतिज्ञा लंकेश्वर के रहते हुये पूर्ण न हो सकेगी। अस्तु, आपसे यह मेरी विनीत प्रार्थना है कि आप सम्राट् के चरणों में समीप उपस्थित होकर उन्हें सादर प्रणाम करें और राज्य से प्राप्त हुए अनिंद्य-सुखों का अधिक काल तक निरावाध्य रूप से उपभोग करें।

वालिदेव ने कहा- दूत! मेरे सन्मुख तेरा इस प्रकार निरर्थक प्रलाप करना निष्फल है। तू अपने प्रभु की आज्ञा पालन कर अपने कर्त्तव्य को पूर्ण कर चुका। सुन, लंकापति क्या सुरपति भी मेरी अक्षय प्रतिज्ञा को भंग करने के लिये समर्थ नहीं। तू जा, अपने प्रभु को मेरा संदेश सुना देना।

(4)

राज्य सभा में प्रवेश दूतने बालिदेव द्वारा कहा हुआ संवाद लंकाधिपति को श्रवण कराया। उन्होंने बालिदेव के इस उद्धतता पूर्ण आचरण को अक्षम्य अपराध समझा। एक क्षण को उनकी भृकुटी में बल पड़ गया। सभासद् गण उनके रोष पूर्ण मुख मंडल का अवलोकन कर काँप उठे। उन्होंने समझ लिया कि किष्कन्धाशीध का शरीर इस भूमण्डल पर अब अल्प समय को ही स्थित है। फिर मंत्रीगणों की ओर निरीक्षण करते हुए रावण बोला-

बालिदेव की इतनी धृष्टता ? वह मेरे सम्मुख आकर मुझे नमस्कार न करेगा ? वह मेरा आश्रित मेरी कृपा के बल पर राज्य सुख का उपभोग करने वाला-मुझे नमस्कार न करे? उस रङ्क की यह उद्दण्डता ? अच्छा, लंकेश का राज्य दंड उसके उच्च मस्तक को अभी विनम्र करेगा। उसका शिर अभी मेरे चरण तल पर लोटेगा।

सेनापति ! समस्त सेना को युद्ध के लिए तैयार करो। मैं इस समय किष्किन्धापुर पर आक्रमण करूंगा।

सेनापति ने अपने प्रभु की आज्ञा का शीघ्र पालन किया। समस्त सेना अस्त्र शस्त्र से सजकर सुसंगठित हो गई।

प्रलयकाल की तीव्र तरंगों के सदृश दशानन की सेना ने किष्किन्धापुर को चारों ओर से घेर लिया। सेना के उच्च नाद से नगर पूरित हो गया।

मंत्रियों ने वालिदेव के समक्ष उपस्थित होकर विनीत भाव से कहा- प्रभो ! लंकेश की विजयिनी सेना ने युद्ध की घोषणा कर दी है। उसकी अपरिमित सेना के सम्मुख विजय की आशा करना सर्वथा असंभव है, अस्तु। प्रभु ! आपका इसी में इष्ट है कि वह लंकेश की आज्ञा स्वीकार करे, अन्यथा इसी से विपरीतावस्था में भारी हानि होने की आशङ्का है।

वालिदेव ने कहा- मंत्रीगण ! मैं आपके इस कायरतापूर्वक वक्तव्य को श्रवण करने के लिये तैयार नही हूं, मैं यह निश्चय रूप से प्रण कर चुका हूं, कि जिनेन्द्रदेव के अतिरिक्त किसी भी महासत्ता को नमस्कार नही करूंगा, इसके विरूद्ध मैं कदापि नहीं जा सकता। मैं लंकेश से युद्ध करूंगा और अपनी महान् शक्ति का परिचय दूंगा। मेरी समस्त सेना को इसी समय तैयार करो।

काल के सदृश भयङ्कर दोनों ओर के सैनिक युद्ध के सम्मुख उपस्थित हुए। दोनों ओर के हिंसाकाण्ड को रोकने की। इच्छा से मन्त्रियों ने निश्चय किया, कि दोनों महावीर परस्पर युद्ध कर ले। इससे सैनिकों का व्यर्थ वध न हो , युद्ध में जो पराजित हो, वह एक दूसरे को नमस्कार करे। मन्त्रियों की सम्मति दोनों ने स्वीकार की।

लंकेश और वालिदेव में परस्पर भीषण मल्ल युद्ध होने लगा। दोनों महाबाहु अतिशय बलवान युद्धकुशल और शक्तिशाली थे। उनका युद्ध देवताओं के हृदय में आश्चर्य करने लगा। अपने विरोधी

की घात बचाने में दोनों वीर कुशल थे। अतः बहुत समय पर्यंत उन दोनों वीरों का मल युद्ध हुआ, किन्तु दोनों वीरों में से कोई भी विजित नहीं हुआ। भीषण वेग से युद्ध करते हुए महा बलवान बालिदेव ने अंत में दशानन को धराशायी कर दिया। उनका मान गलित हो गया।

वालिदेव विजयी हुए, किन्तु उनके हृदय पर इस विजय का विपरीत प्रभाव पड़ा। उन्हें इस दृश्य से संसार की पूर्ण नश्वरता विदित होने लगी। उनका मन उसी क्षण संसार में विरक्त हो गया।

वह इस द्वेष पूर्ण कृत्य के लिये दशानन से क्षमा याचना करते हुए अपने लघु भ्राता सुग्रीव को किष्किन्धापुर का राज्य समर्पण कर वन को चल दिए। समस्त नरेश्वर मण्डल उनके इस अद्भुत पराक्रम और त्याग की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगा।

वन में जाकर वालिदेव ने जैनेश्वरी दीक्षा धारण की, वह दिगंबर मुनि बन गए।

(5)

कैलाश पर्वत की एक विशाल गुफा में विराजमान हुए वालिदेव निश्चल तपश्चरण में मग्न थे।

इसी समय लङ्काधिपति अपने विमान में बैठे हुए किसी कार्यवशात् शीघ्रता पूर्वक जा रहे थे। उनका विमान आकाश मार्ग में तीव्र गति से गमन कर रहा था। कैलाश पर्वत के ऊपर जाते जाते उनका विमान उस स्थान पर स्तंभित हो गया।

अभिमान, मानव पतन की प्रथम सीढ़ी है। मानव जिस समय प्रथम अभिमान की चोटी पर चढ़ना प्रारंभ करता है उसकी दृष्टि संकुचित हो जाती है। वह दूसरों के बृहदाकार का सम्यक् रीति से निरीक्षण नहीं कर सकता। उसका मन महत्वाकांक्षा की चरम सीमा पर आसीन होने को उत्कंठित हो जाता है। उसे अपने शक्ति, अपने साहस, यहां तक कि मनुष्यता का भी बोध नही रहता, क्रमशः वह साधारण श्रेणी से निकलकर अपने को एक विशाल उच्च स्थान पर आसीन हुआ समझने लगता है, और अंत में वह अपने मिथ्या महत्व के सम्मुख किसी व्यक्ति को कुछ समझता ही नहीं है। यदि उसे अपनी अनुचित शक्ति के विकास के साधन प्राप्त हो जाते हैं तब तो उसके अभिमान का ठिकाना ही नहीं रहता, किंचित् आत्म वैभव अपूर्ण ज्ञान, शारीरिक बल और प्रभाव प्राप्त कर ही वह अपने पैरों को पृथ्वी पर रखने का प्रयत्न नहीं करता।

लंकेश उस समय सार्वभौमिक सम्राट् था, वह असंख्य राज्य वैभव का स्वामी था। उसका राजाओं पर एक छत्र अधिकार था, वह अनेक उत्तमोत्तम विद्याओं का स्वामी था, अपनी विद्याओं का उसे पूर्णतः अभिमान था, अभिमान के लिये और आवश्यक ही क्या है ? सत्ता, वैभव और निपुणता अभिमान-अनल के लिये घृत की आहुतिएं हैं । अपने विमान को आकाश में अटका हुआ निरीक्षण कर उसने अपनी समस्त विद्याओंका उपयोग करना आरंभ किया, अपनी समस्त शक्ति को उसने विमान चलाने में लगा दिया, किन्तु उसका विमान वहां से टससे मस नहीं हुआ। मंत्र-कीलित पुरुष की तरह वह उस

स्थान पर स्तुंभित हो गया। अभिमानी लंकेश का हृदय जल उठा। वह विमान से उतरा। उसने नीचे निरीक्षण किया। वहां उसने जो कुछ देखा उससे उसका हृदय क्रोध और अभिमान से धधक उठा। उसने देखा कि नीचे बालिदेव तपश्चरण में मग्न हुए बैठे हैं।

लंकेश ज्ञानवान व्यक्ति था, उसे शास्त्रों का अच्छा ज्ञान था। वह जानता था कि महत्वशाली ऋद्धि प्राप्त मुनिराजों के ऊपर से विमान नहीं जा सकता है। वह मुनियों की शक्ति से अवगत था, किन्तु हायरे अभिमान ! तू मानवों की निर्मल ज्ञानदृष्टि को प्रथम ही धुंधला कर देता है। तेरी उपस्थिति में मनुष्य के हृदय का विवेक विलग हो जाता है, और अभिमानी प्रेत को हेयादेय का किञ्चित् भी बोध नहीं रहता। अभिमान कुमित्र की ममता में पड़े हुये लङ्केश के हृदय से विवेक विलय हो गया। वह विचारने लगा-

ओह ! यह वही वालिदेव है, जिसने मेरा उस समय मान भंग किया था और आज भी मुझे पराजित करने के लिये ही इसने मेरा विमान रोक रक्खा है। अच्छा देखूँ मैं इसकी शक्ति ? मैं इस पहाड़ को ही उखाड़ कर समुद्र में न फैंक दूँ तो मेरा नाम दशानन नहीं। उस समय इसने समस्त राजाओं के सम्मुख मेरा जो अपमान किया था, उसका बदला आज मैं इससे अवश्य लूँगा। आज मैं इसे अपनी अचिन्त्य विद्याओं की शक्ति दिखला दूँगा। क्रोध और अभिमान के असीम वेग को धारण करने वो दशानन ने अपनी विद्या और पराक्रम के बल पर पर्वत के नीचे प्रवेश किया। उसने अपनी समस्त विद्याशक्ति और पराक्रम की बाजी लगाकर उस पर्वत के उखाड़ने का उद्योग किया।

ऋषीश्वर बालिदेव ध्यानस्थ थे, तपश्चरण मग्न थे। उनके हृदय में कुछ भी द्वेष, अभिमान, अथवा कलुषित भाव न था। उन्होंने देखा कि दशानन एक बड़ा भारी अनर्थ करने को कटिबद्ध हुआ है। उसके इस प्रकार के उखाड़ से इस पर स्थित अनेक दर्शनीय जिन मंदिर नष्टभृष्ट हो जायेंगे, तथा असंख्य प्राणियों का प्राणघात होगा, अनेक प्राणियों को असह्य कष्ट होगा और वह भी केवल मात्र मेरे कारण। मुझे अपने कष्टों की कुछ भी चिन्ता नहीं है। कष्ट मेरा कुछ भी नहीं कर सकते, किन्तु इन क्षुद्र प्राणियों के प्राण निष्प्रयोजन ही पीड़ित हों यह मुझसे कदापि नहीं देखा जा सकता। इस प्रकार करूणा भाव धारण कर उन योगिराज ने अपने बाएं पैर के अंगूठे को किंचित् नीचे दबाया।

आत्म शक्ति त्याग की शक्ति तपश्चरण की शक्ति अचिंतनीय है, अनंत है, अकथ है। जो कार्य संपूर्ण पृथ्वी का अधिपति सम्राट् इन्द्र तथा नरेशों पर अपनी अखण्ड आज्ञा परिचलित करने वाला चक्रवर्ती अद्‌भुत शारीरिक बल से सांसारिक वीरों को कम्पित कर देने वाला अखंड अनंत काल में अगाध उद्योग के द्वारा कर सकने को समर्थ नहीं हो सकता, वही कार्य और उससे अनंत गुणा अधिक कार्य तपस्वी, महात्मा योगी दिगम्बर मुनि अपनी बढ़ी हुई आत्म शक्ति के प्रभाव से क्षण मात्र में कर सकता है। असंख्य संपत्ति शालियों की शक्ति, असंख्य राजाओं से सेवित सम्राट् शक्ति, असंख्य वीरों से सेवित वीर की शक्ति उस योगी की अलौकिक शक्ति के सामने समुद्र में बूंद के समान है।

योगिराज के अंगूठे मात्र के दबाने से ही अखंड परिश्रम द्वारा किंचित ऊपर को उठाया हुआ पर्वत पाताललोक में प्रवेश करने लगा। दशानन का समस्त शरीर संकुचित हो गया, पसीने की धारा बहने लगी, अपने को पृथ्वी तल पर दबता हुआ देखकर उसका मुख चिंता से म्लान हो गया। उसका सारा अभिमान, उसकी सारी शक्ति, उसका समस्त विद्या, बल एक क्षण को कपूर के सदृश हो गया। अभिमानी मानव ! इसी नश्वर वैभव के अभिमान के बल पर, इसी क्षणिक शक्ति के नशे में , इसी किंचित् विद्या के बल के ऊपर संसार का तिरस्कार करने को तुल जाता है। धिक्कार ! तुम्हारी बुद्धि पर, शतवार धिक्कार है उसके अभिमान का सव्र नाश हो रहा था ? क्या आज दशानन के उस अभिमान कुमित्र का कहीं पता था ?

समस्त मानव मंडल बढ़ता है और गिरता भी है, अभिमानी और निरभिमानी एक दिन समय पाकर सभी गिरते हैं, किन्तु निरभिमानी व्यक्ति का वास्तव में पतन नहीं होता। उसे खेद नहीं होता ! अभिमानी खूब चढ़ता है अपने को धड़ाधड आगे बढ़ाता है, किन्तु समय पाकर वह चारों खाने चित्त गिरता है। उसका मन भर जाता है, उसके खेद का कुछ ठिकाना नहीं रहता, और वह असमर्थ हो जाता है।

दशानन पर्वत के असह्य भार को अपने सिर पर नहीं रख सका यह जोर से चिल्लाने लगा। बड़ा भारी कोलाहल उपस्थित हो गया। रोते रोते उसका गला भर आया, वालिदेव दशानन के आर्तनाद को श्रवण नहीं कर सके, उनका हृदय दया से आर्द्र हो गया। उन्होंने उसी क्षण अपने पैर के अंगूठे को ढ़ीला किया, दशानन पर्वत के नीचे से अपना जीवन सुरक्षित लेकर निकल आया। उसी समय ऋषीराज के तीव्र तपश्चरण से उत्पन्न हुए दृढ़ तेज के प्रभाव से देवताओं के आसन भी कंपायमान हो गए। उन्होंने स्वर्ग लोक से आकर ऋषीश्वर वालिदेव को प्रणाम किया। उनकी भक्ति की और स्थिर चित से प्रार्थना की। वह बोले- ऋषीश्वर। आपके अनंत तेज का सामना करने के लिये अभिमान से गर्वित ऐसा कौन व्यक्ति है जो समर्थ हो सके ? देव ! आपकी आत्म शक्ति की महिमा अचिन्त्य है। क्षणिक शक्ति के बल से उद्यत हुये लङ्केश को आप अपनी अनन्त क्षमा वारिसे भरे हुए करुण समुद्र के कुछ कणों का दान कर कृतार्थ कीजिए। उसी समय **रोतीति रावणः** अर्थात् यह रोता रावण इस नाम से लंकेश देवताओं द्वारा संबोधित किया गया। देवताओं ने वालिदेव अद्भुत तपशक्ति का अनुमोदन करते हुए अपने अपने स्थान को प्रस्थान किया।

रावण भी अपने इस अभिमान कृत्य से अत्यंत लज्जित हुआ। उसने नम्र भाव धारण करते हुये वालिदेव की स्थिर चित्त से वंदना की। और अपने अपराध की क्षमा याचना करते हुए लंका को प्रस्थान किया।

बालिदेव ने तपश्चरण की अचिन्त्य शक्ति द्वारा अपने समस्त आत्म गुणों को विकसित किया और पूर्ण सर्वज्ञता से भूषित होकर अनन्त सुख के स्थान मोक्ष को प्राप्त किया।

अखंड आत्म रस से विभूषित वह महात्मा बालिदेव हमारे हृदयों में दृढ धार्मिक श्रद्धा उत्पन्न करें।

दयासागर नेमिनाथ

(महादयालु, दृढ़व्रती जैन तीर्थङ्कर)

(1)

द्वारिका का प्रत्येक द्वार आज बंधनवार से सजाया गया था-प्रत्येक नरनारी के मुंह पर आज अपूर्व उल्हास और आनंद की मुष्कराहट दिख रही थी। उनके सब कार्यों में आज एक निराली मस्ती छाई हुई थी।

एक आंगतुक व्यक्ति ने नगर में आकर किसी से पूछा- महोदय ! आज नगर में यह सजावट क्यों हो रही है ? मैं प्रत्येक से पूछता हूं लेकिन मुझे इसका कोई उत्तर नहीं दे रहा है, मालूम होता है किसी चक्रवर्ती सम्राट् का आगमन होता है।

एक ने अपनी हंसी रोककर कहा-अरे ! तुम सचमुच ही कुछ नहीं जानते लेकिन तुमसे बात करने का समय ही आज किसे हैं। अच्छा मैं तुम्हें सुनाता हूं-आज महाराजा समुद्र विजय के पुत्रजन्म हुआ है उसी का उत्सव मनाने के लिये हम सब व्यस्त हो रहे हैं ।

शौर्यपुर नरेश महाराजा समुद्र विजय सचमुच ही भाग्यशाली थे । जिनके यहां महायोगी और सामर्थ्यशाली महात्मा अरिष्टनेमि का जन्म हुआ हो वह सौभाग्यशाली क्यों न समझे काष ? ऐसा सौभाग्य किसी के ही पल्ले पड़ता है।

रानी शिवादेवी तो महिलाओं के झुंड से घिरी हुई अपने सौभाग्य पर फूली नहीं समा रही थीं।

द्वार पर देवाङ्गनाएं नृत्य कर रही थी, पुरोहित मंगल नाद कर रहे थे और कविगण कविता पाठ द्वारा जनता का मनोरंजन कर रहे थे। बालक अत्यंत प्रभावान था। उसके सुगठित और दृढ़ शरीर को देखकर नेत्र प्रसन्न हो उठते थे। शुभ मुहूर्त में बालक का नामकरण किया गया और उत्सव समाप्त हुआ।

नेमिकुमार अब सोलह वर्ष के हो गए थे। षोड़श कांतिवाले चन्द्रमा की तरह उनकी शरीर में कांति चमक उठी थी।

सेवेरे के सुन्दर समय में वे आज वन बिहार के लिये निकले थे उनके साथ और भी बालक थे। वन की क्रीड़ा में सभी मस्त हो रहे थे। सूर्य की किरणें अब कुछ उष्ण हो चली थीं, वन बिहार से सभी का मन ऊब उठा था। सभी मंडली अब नगर की ओर चल दी।

मार्ग में श्रीकृष्ण की आयुधशाला थी, वे नित्य प्रति उस आयुधशाला को देखते थे। लेकिन आज उनके हृदय में आयुधशाला के शस्त्र देखने की इच्छा हुई। आयुधशाला में श्रीकृष्ण को प्राप्त हुए अनेक दैवी शस्त्र रहते थे, विचित्र शस्त्रों से आयुधशाला संपन्न थी। शस्त्रों के तेज और चमक पर विचार करते हुए वे आयुधशाला के द्वार पर पहुंच गए। आयुधशाला के अधिकारी से उन्होंने शस्त्रादि देखने की

अपनी इच्छा प्रकट की। राज्याधिकारी ने अपनी पराधीनता प्रदर्शित करते हुए कहा- राजकुमार ! प्रतापी श्रीकृष्ण की आज्ञा है कि शस्त्र शाला में किसी व्यक्ति को प्रवेश न करने दिया जाय। आप राजकुमार हैं उनके भाई हैं इसलिये आपको उसके अंदर प्रवेश करने से मैं नहीं रोकता, लेकिन आपको इतना ध्यान ही अवश्य ही रखना होगा कि आप किसी भी शस्त्र के परीक्षण का साहस न करें क्योंकि प्रत्येक शस्त्र अत्यंत तीक्ष्ण और प्रभावशाली है, आप उसके प्रभाव और शस्त्र क्रिया संचालन से अनभिज्ञ हैं , ऐसी स्थिति में शस्त्र का उपयोग करने पर उससे भयंकर हानि हो जाने का डर है।

कुमार नेमि ने राज्याधिकारी के इस व्यर्थ प्रलाप पर कुछ ध्यान नहीं दिया। आयुधशाला में प्रवेश करने पर वे बड़ी निर्भयता से प्रत्येक शस्त्र को हाथ में लेकर और उसे घुमा फिराकर देखने लगे। ऐसा मालूम पड़ता था मानो शस्त्र उनके हाथ में आकर अपना सौभाग्य समझ रहा था। वह उसका निर्भयता से प्रयोग कर रहे थे मानो शस्त्र उनका आज्ञाकारी सेवक था।

अधिकारी उन्हें रोकने का अनेकवार प्रयत्न किया लेकिन सब व्यर्थ था ऐसी स्थिति में वह आयुधशाला को छोड़कर भी नहीं जा सकता था। उसकी दशा बहुत ही दयनीय हो रही थी। शस्त्रों के टूटने और श्रीकृष्ण के कुपित होने का भय उसके मन को मारे डाल रहा था।

संपूर्ण शस्त्रों का परीक्षण कर कुमार नेमि अब चक्र के निकट पहुंच गए थे। अधिकारी का हृदय भय से कांप उठा था। वह सोच रहा था कि कुमार कहीं चक्र घुमाने का प्रयत्न न करे, लेकिन उसका सोचना सच था। महाबलवान योद्धा भी जिसके घुमाने का साहस नही कर सकते, उस सुदर्शन चक्र को उठाकर वे अपनी अंगुली पर घुमाने लगे। उनकी अंगुली का इशारा पाकर वह कुम्हार के चाक की तरह घूमने लगा। अधिकारी के प्राण सूख गए, उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा।

चक्र को घुमाकर उन्होंने उसे उसी स्थान पर रख दिया। अब के उस धनुष की ओर बढ़ चले जो श्रीकृष्ण को देवताओं द्वारा प्राप्त हुआ था, जिसके उठाने का साहस श्रीकृष्ण जी के अतिरिक्त और किसी में नहीं था। अपनी टङ्कार से प्रलय का नाद करने वाले ओर देवताओं का अपना कंपा देने वाले उस धनुष को उन्होंने अपने दृढ़ हाथों से उठाया। उन्होंने उस धनुष को इस आसानी से उठाया जिस तरह हाथी अपनी सूंड से वृक्ष की डाली को उठाता है। उसे उन्होंने ठीक जगह पर रख दिया। अब गंड की नामक वज्र गदा को उठाया और उसे अपनी चंचलता से साधारण दंड की तरह आकाश मंडल में उछाला। शस्त्रों का परीक्षण अब समाप्त हो चुका था। वे आयुधशाला से निकलने वाले ही थे उनकी दृष्टि पांचजन्य नामक शंख पर पड़ी। उन्होंने शंख को उठाया और उसे बजाने लगे।

नेमिकुमार के मुंह की वायु को पाकर शंख भयंकर स्वर से गूंज उठा, उसके विकराल नाद से दशों दिशाएं ध्वनित हो उठीं।

नरेशों से सेवित श्री कृष्ण जी अपनी राज्यसभा से बैठे हुऐ थे। शंख के भयंकर नादने अचानक ही उनके कानों में प्रवेश किया। शंखनाद सुनकर उनका हृदय क्रोध के प्रचण्ड वेग से भर गया, अपने क्रोध के आवेश को वे नहीं रोक सके और तीव्र स्वर से बोले- मृत्यु मुख में प्रवेश करने वाले किस मूर्ख ने मेरा शंख बजाने का साहस किया है। मालूम पड़ता है वह अपने प्राणों का मोह छोड़ चुका है। वे क्रोधित होकर अपने सिंहासन से उठे और सेनापति को अपनी प्रचण्ड सैन्य से सन्नद्ध होनेका हुक्म दिया। उनके नेत्र क्रोध से अरुण वरण हो चुके थे, भृकुटि ऊपर को चढ़ गई थी और ललाट चौड़ा हो गया था। यमराज की तरह वे अपराधी को दंड देने के लिए जा रहे थे। इसी समय भय से कांपता हुआ आयुधशाला का अधिकारी उनके सामने आया। उसने चरणों में गिरकर बड़ी दीनवाणी से कृष्ण से कहा- महाराज! आज सवेरे सेही नेमिकुमार ने आयुधशाला में प्रवेश करके मेरे रोकने पर भी शास्त्रों का प्रयोग किया। उन्होंने चक्ररत्न को घुमाया, धनुष को चढ़ा, गदा को उछाला ओर शंख के भयंकर नाद से पृथ्वी को पूरित कर दिया है। राजकुमार होने के नाते मैं उनका हाथ नहीं रोक सका, इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है।

अधिकारी के मुंह से नेमिकुमार अद्वितीय साहस और वीरत्व की बात सुनकर वे कुछ क्षण को विचार-सागर में बहने लगे। वे सोचने लगे-ओह! नेमिकुमार बड़े शक्तिशाली हैं, उनकी यह शक्ति कभी मेरे लिए, अत्यंत हानिकर हो सकती है, संभव है उनकी दृष्टि कभी राज्य लालसा की ओर जाये तब मेरे इस राज्य का सुरक्षित रहना भी कठिन हो सकता है। **वीर भोग्या वसुंधरा** की नीति के अनुसार कभी वह इस राज्य पर अधिकार कर सकते है। तब मुझे इसके प्रतिकार के लिये अवश्य ही कुछ करना चाहिए, वे यह सोच ही रहे थे, इसी समय अपने सखाओं के साथ नेमिकुमार उनकी ओर आते दिखलाई दिए।

श्रीकृष्ण जी अपने मन के क्रोध और ईर्षा के भावों को रोककर प्रसन्न हृदय से उनसे मिले। उन्हें योग्य आसन पर बिठला कर बोले-कुमार! आज तो आपने मेरे हृदय को बड़ा शंकित बना दिया था। शंखध्वनि सुनकर तो मैं सचमुच ही चौंक पड़ा था, वास्तव में आप बड़े शक्तिशाली हैं, आपकी इस शक्ति और पराक्रम को देखकर मेरा हृदय अभिमान से दुगुना फूल उठा है, मुझे आपके अतुलित बलशालि होने में कुछ संदेह नहीं है लेकिन सभा के सभी सभासद् आपकी शक्ति को प्रत्यक्ष रूप में देखना चाहते हैं। इन लोगों के विश्वास के लिए क्या आप अपनी शक्ति का प्रदर्शन करेंगे ?

नेमिकुमार जी इस तरह की बात सुनने की स्वप्न में भी आशा नही थी। वे भाई कृष्ण के अंदर छिपे हुऐ रहस्य को समझ गए, लेकिन उसे टालते हुए वे बोले-भाई जी! आप मेरी शक्ति का इस तरह सर्वजनों के सामने प्रदर्शन देखना चाहते हैं, आपकी आज्ञा से मैं यह सब दिखलाने को तैयार हूं लेकिन इस प्रदर्शन से आपको लाभ होने की अपेक्षा नुकसान ही अधिक होगा, यदि इस पर भी आपकी उत्कट इच्छा हो तो आपकी आज्ञा का पालन मुझे करना ही होगा।

श्री कृष्ण तो आज उनकी शक्ति का अनुमान करना ही चाहते थे। वे बोले-कुमार ! आपकी शक्ति परिचय से मुझेऔर जनता को प्रसन्नता ही होगी, इसमें किसी तरह हानि की शंका का विचार मत कीजिए। आप निःसंकोच रूप से अपना बल प्रदर्शन कीजिए।

नेमिकुमार को श्री कृष्ण जी के इस आग्रह को स्वीकार करना पड़ा। दर्शकगण नेमिकुमार के अपूर्व पराक्रम और शक्ति का प्रदर्शन उत्सुक दृष्टि से देखने को तैयार हो गए।

श्रीकृष्ण जी ने अपनी विशाल भुज को आकाश में ऊंची उठाते हुए कुमार नेमि से कहा-नेमिकुमार ! आप मेरी उठी हुई भुजा को झुकाने का प्रयत्न कीजिए।

नेमिकुमार ने किसी तरह का बल प्रयोग किए बिना ही श्री कृष्ण की ऊपर उठी भुजा को अपने हाथ के स्पर्श मात्र से कमल की डंडी की तरह नीचे झुका दिया। सारा सभामंडप उनकी इस अद्वितीय शक्ति को देखकर आश्चर्य से भर गया। अब नेमिकुमार की बारी थी उन्होंने अपनी तर्जिनी अंगुली को आगे बढ़ाते हुए कहा-भाई जी ! आप मेरी भुजा तो नहीं, लेकिन इस अंगुली को झुकाने का प्रयत्न कीजिए।

श्री कृष्ण जी ने साधारण रूप से उनकी अंगुली झुकाने का प्रयत्न किया। लेकिन वे असमर्थ रहे तब वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उसे झुकाने का प्रयत्न करते लगे। लेकिन उन्हें स्वयं बड़ी लज्जा का अनुभव हुआ, जबकि वे अपनी सारी शक्ति लगाकर भी उनकी अंगुली न झुका सके। नेमिकुमार इस प्रदर्शन को अंतिम सीमा पर पहुंचाना चाहते थे। उन्होंने अपनी अंगुली को थोड़ा और ऊपर उठाया। जनता ने आश्चर्यभरी दृष्टि से महाबलशाली की श्रीकृष्ण जी को उनकी अंगुली पर झूलते हुए देखा-दर्शकों के आश्चर्य की अब सीमा नहीं रही, उन्होंने दांतों के नीचे अंगुली दबाकर इस मुग्धकारी प्रदर्शन को देखा- वे एक क्षण को आत्मविस्मृत होकर सोचने लगे-ओह ! इतनी शक्ति ! इतना पराक्रम ! क्या हम लोग जागृति में है अथवा स्वप्न में ? इस सुकुमार शरीर में इतनी शक्ति की कभी कल्पना की जा सकती थी। वास्तव में इस सारे संसार में नेमिकुमार अपनी शक्ति में अद्वितीय हैं।

शक्ति प्रदर्शन समाप्त हुआ। श्री कृष्ण को हृदय पर इस शक्ति प्रदर्शन से गहरी चोट लगी। बहुत प्रयत्न रोकने पर भी अपने चेहरे पर के निराशा के भावों को वे नहीं रोक सके। उनका चमकता हुआ चेहरा एक क्षण को मलिन पड़ गया। एक गहरी निराशा की सांस लेकर उन्होंने अपने मन में कहा- अब सचमुच ही मेरे राज्य की कुशल नहीं है उनके निकट ही खड़े हुए बलभद्र जी ने उनकी भावना को समझा। वे बोले-भाई कृष्ण ! आप अपने हृदय की चिंता त्याग दीजिए, आप जो सोच रहे हैं वह कभी नहीं होगा। नेमिकुमार तो बालकपने से ही वैरागी हैं, भला एक वैरागी को राज्यपाट से क्या मतलब है ?

बलभद्र जी के संबोधन से श्रीकृष्ण जी के हृदय का भय कुछ कम हुआ। उन्होंने संतोष की सांस ली और नेमिकुमार जी के प्रति अपना पूर्ववत् प्रेमभाव प्रदर्शित किया।

सभा विसर्जित हुई। श्री कृष्ण जी अपने राज्यमहल की ओर चले लेकिन राज्य सभा का वह दृश्य नेत्रों के सामने घूम रहा था। वे किसी तरह नेमिकुमार को शक्तिहीन बनाने का संकल्प करते हुए

राज्यमहल में पहुंचे।

प्रत्येक माता के हृदय में अपने पुत्र से कुछ आशाएं रहती हैं । अपने स्नेह का प्रतिफल चाहने की अभिलाषा उनके हृदय को निरंतर ही तरंगित किया करती है। उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा होती है पुत्र के विवाह-सुख देखने की। पुत्र-वधू के प्रसन्न बदन को देखकर वह अपने हृदय की संपूर्ण इच्छाएं सफल कर लेना चाहती है इतनी ही से उसके हृदय की साँस पूर्ण हो जाती है।

नेमिकुमार अब यौवन-संपन्न थे। उनका सारा शरीर यौवन के बेग से भर गया था। उद्दाम यौवन का साम्राज्य पाकर भी काम विकार उनके बालक के समान सरल हृदय में प्रवेश नहीं कर सका था। उनका हृदय गंगाजल की तरह निष्कलंक और वासना रहित था। माता शिवादेवी पुत्र के हृदय को जानती थी, लेकिन पुत्र-वधू पाने की कोमल अभिलाषा वे त्याग नहीं कर सकती थीं। पुत्र परिणय से होने वाले आनंद का लाभ उनके हृदय में था। लेकिन वे अनेक प्रयत्न करने पर भी उनके हृदय में विवाह की अभिलाषा जागृत नही कर सकी थी। लेकिन उनके हृदय की उत्कट इच्छा अभी मरी नहीं थी, वे प्रयत्न में थीं। उन्होंने अपने इस प्रयत्न में श्रीकृष्ण जी को भी सम्मिलित करना चाहा।

उस दिन मध्यान्ह का समय था जब माता शिवादेवी ने विवाह मंत्रण के लिये श्री कृष्ण जी को अपने राज्यमहल में बुलाया। उन्हें योग्य आसन पर बिठलाकर स्नेहभरी दृष्टि से उनकी ओर देखा, फिर उनके बुलाने का कारण बतलाती हुई वे प्रेमभरे स्वर में श्रीकृष्ण जी से बोली- पुत्र! तुमसे यह बात अपरिचित नहीं होगी कि कुमार नेमिकुमारअपने विवाह सम्बन्ध के लिये किसी तरह भी तैयार नहीं होते, और विवाह के बिना फिर आगे कुल की मर्यादा कैसे स्थिर रहेगी ? तुम सम्पूर्ण कलाओं में कुशल हो, तुम्हें मेरे मन की चिंता दूर करना होगी और किसी प्रकार भी कुमार को विवाह के लिये तैयार करना होगा।

माता शिवादेवी की बात सुनकर श्रीकृष्ण जी प्रसन्न हुए थे, वे भी यही चाहते थे। उन्होंने शिवादेवी से कहा-माताजी। आपने मुझे अब तक नहीं कहा, नहीं तो यह कार्य कबका सम्पन्न हो जाता। लेकिन अब भी कोई हानि नहीं है, आप निश्चित रहिए। नेमिकुमार का विवाह अब होकर ही रहेगा! यह कहकर वे राजमहल लौट आए।

मार्ग में चलते चलते उन्होने सोचा, यह ठीक रहा। नेमिकुमार को शक्तिहीन बनाने में अब कुछ समय का ही विलम्ब है। उनकी शक्ति उसी समय तक सुरक्षित है तब तक वे महिलाओं के मोह से दूर हैं। मनुष्यों की महान शक्ति और पराक्रम का ध्वंश करने वाली संसार में यदि कोई शक्ति है तो वह एक मात्र स्त्री शक्ति है। जब तक इनके रूपजाल में कोई व्यक्ति नहीं फंसता तब तक ही वह अपने विवेक को सुरक्षित रख सकता है, लेकिन जहां वह इन विलासिनी तरुणी बालाओं के मधुमय हास्य और मधुर चिंतवन के सामने आता है वह अपना सब कुछ उनके चरणों पर समर्पित कर देता है। संसार में यदि मानवी शक्ति किसी के सामने पददलित और पराजित होती है तो वह नारी की रूपशक्ति ही है।

जो शूरवीर मत्र हाथियों के गर्वित मस्तक को विदीर्ण करने में समर्थ होते हैं, जो वीर युद्धा विकराल

गर्जना करने वाले भयंकर केशरी सिंह से युद्ध कर लेते हैं , जो विक्रमशाली भयानक युद्ध भूमि में प्रबल शत्रु के मस्तक को झुका देते हैं, वही वीर योद्धा, वही विक्रमशाली सैनिक वनिता कटाक्ष के सामने अपने को स्थिर नहीं रख सकते। महान ज्ञानी और तपस्वी उसके मदोन्मत यौवन के सामने अपना सारा ज्ञान और विवेक खो देते हैं ।

नेमिकुमार को अपनी शक्ति का बड़ा अहंकार है तब मुझे उनकी इस शक्ति का दमन करने के लिये भी यही करना होगा। उनकी शक्ति के मुकाबले में महिला शक्ति को रखना होगा, लेकिन इस कार्य के लिए मुझे महिलाओं की सहायता लेना होगी। अच्छा तब यही होगा। बहुत कुछ सोचने के बाद वे अपनी रानियों के पास पहुंचे और उनसे नेमिकुमार के हृदय में विवाह संबंधी भावनाएं भरने के लिए कहा।

श्रीकृष्ण जी के आदेशानुसार वे सभी सुन्दरी महिलाएं कुमार नेमिनाथ को मनोहर बगीचे में ले गई बगीचे में एक सुन्दर सरोवर था वहां पर वे श्रीकृष्ण की सभी रानिएं नेमिकुमार के साथ जल क्रीड़ा करने लगी।

जल क्रीड़ा करते हुए उनके हृदय में अपनी उद्देश्य पूर्ति का ही ध्यान था। इसलिये उन्होंने जल क्रीड़ा के साथ साथ कुछ विनोद करना भी प्रारंभ किया। नेमिकुमार विकार रहित सरल भाव से उनके इस विनोद में भाग लेने लगे।

उन सभी महिलाओं में से एक अत्यंत विनोदिनी महिला उनकी ओर मनोहर हास्य की वर्षा करती हुए मधु मिश्रित स्वर में बोली- देवर जी ! आप अपना विवाह क्यों नहीं कराते हैं ? क्या आपको पुत्रहीन रहना ही श्रेष्ठ हैं ? परन्तु यह याद रखिएं पुत्रहीन पुरुष को कभी अच्छी गति नहीं मिलती, पत्नि रहित पुरुष का हृदय निंरतर ही अंधेरे में भटकता रहता है। गृहिणी रूपी दीपक ही उसके हृदय को प्रकाशमान बना सकता है। क्या आजीवन ही अंधेरे गृह में आप रह सकेंगे।

इसी समय हास्य की मूर्ति बनी हुई दूसरी रमणी ने कहा- बहिन ! पत्नि की कामनाएं तृप्त करना भी तो कोई सरल कार्य नहीं है, गृहिणी का बोझ उठाना अपने सिर पर एक महान् कर्तव्य भार लेना है, यह कार्य अकर्मण्य पुरुषों के वश का नहीं है, इसके लिये पुरूषार्थ भी तो चाहिए।

तीसरी रमणी ने व्यङ्ग के स्वर में कहा-बहिन ! यह बात तुमने ठीक कही, पुरुषार्थ कहीं मांगने से थोड़े ही मिलता है। वीर पुरुष ही नारी को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। इतना आकर्षण यह कहां से लायेंगे।

बहिन, यदि ऐसा है तब भी कोई हानि नहीं है, यह विवाह कर लें, विवाह किसी तरह हो ही जायेगा। जब इनके भाई बत्तीस हजार वनिताओं का निर्वाह करते हैं तो क्या यह एक का भी नहीं कर सकेंगे ? प्रथम महिलाने फिर कहा-बहिन ! यह तो सब ठीक है परंतु इसके लिए शारीरिक शक्ति भी तो होना चाहिए नहीं तो विवाह जैसे मंगल कार्य के लिये कौन अस्वीकार करता है ? पहले के सभी महातीर्थ

पुरुषों ने भी विवाह किए हैं, और फिर संसार का त्यागकर महाव्रत धारण किए हैं, लेकिन ये तो अनोखे ही त्यागी निकले जो आजन्म ब्रह्मचारी बनना चाहते हैं, ठीक है बहिन! शक्तिहीन का ब्रह्मचर्य ही रक्षक है।

वे सुन्दरिएं इसी तरह व्यंग और विनोद करती हुयी नेमिकुमार के हृदय में राग भाव उत्पन्न करने लगी। उनके हास्यपूति वचनों को सुनकर नेमिकुमार भी उनको असंतुष्ट न करने की इच्छा से उनकी ओर कुछ मुस्कुराए। उनकी इस मुस्कान का उन विनोद मग्ना महिलाओं ने बड़ी अर्थ लगाया जो वह चाहती थी। उनमें से एक महिला जो अपना स्वार्थ सिद्ध करने में सिद्धहस्त भी बोल उठी-ओहो! देवर जी के मन की भावनायें समझ गई। यह विवाह के लिये तैयार हैं। उसके स्वर में स्वर मिलाती हुई महिलाएं हंसती हुई बोल उठी, हां। यह विवाह के लिये तैयार हैं। चलो हम सब इनके विवाह के लिये किसी सुन्दरी कन्या की खोज करें। इन विनोदिनी बालाओं को प्रसन्न कर रखने की दृष्टि से नेमिकुमार जी ने उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया और कुछ समय को वे मौन रह गए।

अविचारता वनिताएं अपनी कार्य-सिद्धि के लिये किस तरह अनेक प्रपचनाओं का जाल रचती हैं, और उसमें बड़े से बड़े त्यागी महात्माओं को भी फंसाने से नहीं चूकतीं। वह अपनी थोड़ी सी स्वार्थ पूर्ति के लिये बड़ा से बड़ा अनुष्ठान करने को तैयार हो जाती हैं, और किसी भी तरह अपनी भावनाओं को पूरा करके ही छोड़ती हैं, साधन कैसे भी निरंतर हो उनका प्रयोग करते हुए उन्हें तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती। बेचारा सरल व्यक्ति तो उनके वाग्जाल से बाहर निकल ही नहीं सकता। वह उनकी कूटनीति के जाल में शीघ्र ही आ जाता है। वे महिलाएं भी उसे अपने कौशल की डोर में बंधा देखकर बहुत प्रसन्न होती हैं और अपनी सफलता पर फूली नहीं समातीं। उसका प्रतिफल कुछ भी हो इसकी ओर उनका कुछ भी ध्यान नहीं रहता।

सरल हृदय मानव की कुटिलता को नहीं समझता और उनकी प्रसन्नता के लिये उसे कभी कभी अपने महान् विचारों का भी बलिदान कर देना होता है और इस तरह मजबूरी में पड़कर अपने मनोगत विचारों के प्रतिकूल आचरण करने के लिए उसे जबरदस्ती तैयार होना पड़ता है। साधारण व्यक्तियों की तो बात ही क्या है, आत्म-कल्याण के पथ पर आरूढ़ हुए महापुरुषों को भी वे अपने विनोद का लक्ष्य बनाकर अपना प्रभाव डालने से नहीं चूकती और अपने प्रयत्न को सफल बनाकर ही छोड़ती हैं।

नेमिकुमार की मुस्कान मात्र से ही उन विनोद मग्ना महिलाओं ने अपने प्रयत्न को सफल समझा। जलक्रीड़ा समाप्त हुई, सभी रानिएं प्रसन्न हृदय से राजमहल में पहुंची। उन्होंने बड़े महत्व के साथ ही कृष्ण जी से कहा- नेमिकुमार जी को हमने विवाह के लिए तैयार कर लिया है आप उनके लिए किसी योग्य कन्या का प्रबंध कीजिए श्री कृष्ण जी को उनकी इस सफलता पर बहुत प्रसन्नता हुई, वे उसी समय माता शिवादेवी के पास गए और यह सुसंवाद उन्हें सुनाया। उनके हर्ष का अब कोई पार नहीं था। उन्होंने भी श्री कृष्ण जी से योग्य कन्या निर्वाचन के लिए कहा।

मथुरा नरेश उग्रसेन की परम सुन्दरी कन्या राजमति थी, वह सुन्दरी और सुशील थी। वह अब यौवन

के क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी थी। उग्रसेन जी को उसके लिये योग्य वर की चिंता हुई।

वे अपनी सुयोग्य कन्या के अनुरूप ही वर चाहते थे। उनका विचार था कि गृहस्थ जीवन पर कन्या के समान गुण, रूप, विचार और वय की अनुकूलता पर ही अवलंबित रहता है, यदि इन गुणों में किसी एक की कमी होती है तो उनका वैवाहिक जीवन सुखपूर्ण नहीं बन पाता और वह प्रेम, और कर्त्तव्य का स्थान बनकर कलह और द्वेष का घर बन जाता है।

वर्तमान विवाह सम्बन्ध पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो हमें यही कहना पड़ता है कि इस समय अधिकांश विवाह योग्य नहीं होते। अदूरदर्शी माता पिता स्वार्थ और बड़प्पन के पीछे वर कन्याओं के जीवन पर थोड़ा भी दृष्टिपात नहीं करते, और विवाह की वेदी पर उनका बुरी तरह से बलिदान कर देते हें। अनेक अर्थलोलुप माता पिता द्रव्य के बदले में अपनी कन्याओं के जीवन को बेच देते हैं। वे रोगी वृद्ध और दुराचारी पुरुषों के साथ भी अपनी सुकुमार कन्या का जीवन बांधने से नहीं चूकते हैं और मनमाना द्रव्य लेकर गुलछर्रे उड़ाते हैं। वह प्रत्येक अवस्था में धनिकों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। वैभव की आंधी में वह अपने मन के विवेक को छोड़ देते हैं। बेचारी कन्या दुराचारी, व्यसनी और अयोग्य वर पाकर अपने भाग्य पर जीवनभर आंसू बहाती है। इस अनिष्टकर अनमोल विवाह राक्षस के मुंह में प्रतिवर्ष हजारों कन्याओं को जाना पड़ता है, अविकसित कलिकाओं का जीवन बुरी तरह से कुचल डाला जाता है। योग्य वैवाहिक संबंध न होने के कारण ही आज कल का गृहस्थ जीवन श्मशान तुल्य बना हुआ है, और देश तथा समाज की जागृत मूर्तियां- ये युवक युवतिएं अपने जीवन से निराश बनी हुई हैं।

महाराज उग्रसेन ने अपनी कन्या राजमती के लिये अनेक वरों की खोज की थी, लेकिन उन्हें राजमती के अनुरूप एक भी वर पसंद नहीं आया। उनकी खोज अब भी चालू थी। वे अपने प्रयत्न में हताश नहीं हुए थे।

श्री कृष्ण जी आज कुछ चिंतामग्न थे। वे नेमिकुमार का संबंध किसी रूप गुण सम्पन्न योग्य कन्या से करना चाहते थे। अपनी इस चिन्ता को उन्होंने महारानी सत्यभामा पर विदित किया। सत्यभामा ने कुछ विचार करते हुए कहा-आपकी इस गुत्थी को मैं शीघ्र ही सुलझाए देती हूं, मेरी छोटी बहिन राजमती देव कन्या के समान रूपवती और सर्व-गुण-सम्पन्न है, वह कुमार नेमिनाथ जी के लिये सर्वथा उपयुक्त है, आप उसी के साथ इनका विवाह कर दीजिए, महाराज उग्रसेन इस संबंध से बहुत संतुष्ट होंगे। मुझे आशा है, आप इस सबंध से अवश्य सहमत होंगे। आप शीघ्र ही जाइए और उग्रसेन जी से राजमती की याचना कीजिए।

सत्यभामा की यह सम्मति श्री कृष्ण जी को पसंद आई। वे उसी समय मथुरा के लिये चल दिए।

महाराज उग्रसेन ने श्री कृष्ण जी का भलीभांति स्वागत किया फिर उन्हें अपने राजमहल ले जाकर उनके यहां आने का कारण पूछा।

श्री कृष्ण ने कहा- महाराज ! मैं आज आपके पास एक विशेष कार्य लेकर आया हूं, मुझे आशा है आप मुझे इस कार्य में अवश्य सहायता देंगे।

उग्रसेन ने उत्सुकता से पूछा-कुमार । कहिए, वह कौन सा कार्य हैं, जिसमें मेरी सहायता की आवश्यकता है ? आपका जो कुछ भी कार्य होगा उसे शक्तिभर पूर्ण करने का प्रयत्न करूंगा।

महाराज ! आप जानते हैं कुमार नेमिनाथ अभी तक अविवाहित है उनके लिये योग्य कन्या की आवश्यकता है, मैंने कुमारी राजमती के गुणों की प्रशंसा सुनी हैं , मैं कुमार नेमिकुमार के लिये कन्यारत्न राजमती की याचना करता हूं, आशा है आप मेरी इस मांग को स्वीकृत करेंगे। श्री कृष्ण जी ने प्रसन्न हृदय से कहा।

श्री उग्रसेन जी ऐसा सुयोग कब छोड़ना चाहते थे, वह हर्षित होकर बोले-कुमार ! यह मेरे लिये अत्यंत सौभाग्य की बात होगी कि मैं कुमार नेमिनाथ जैसे तेजस्वी, शक्शिाली और सर्वश्रेष्ठ पुरुष के लियेअपनी कन्या प्रदान करूंगा । मुझे यह संबंध अत्यंत खुशी के साथ स्वीकार है, आप शीघ्र ही विवाह की तैयारी कीजिए।

शुभ मुहूर्त में नेमिकुमार का विवाह होना निश्चित हुआ। दोनों संबंधियों के गृह मंगल से परिपूर्ण हो गए । महाराजा समुद्र विजय की ओर से श्री कृष्ण जी ने सभी नगरों के नरेशों को इस विवाह में सम्मिलित होने के लिये निमंत्रित किया था। अनेक देशों के समृद्धि शाली नरेश और समस्त यादवगण इस बारात में सम्मिलित हुए थे।

अमूल्य रत्नजड़ित वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कुमार नेमिनाथ अपनी कांति द्वारा बालाओं के हृदय और नेत्रों को विमोहित करते हुए उग्रसेन राजभवन की ओर जा रहे थे।

राज्यभवन की शोभा अवर्णनीय थी। सिद्धहस्त चित्रकारों ने भवन की दीवाल पर अनेक प्राकृतिक दृश्यों को चित्रित किया था, महल की मोहकता को दूर से ही देखकर कुमार अपने सारथी से बोल उठे- सारथी ! यह इन्द्रभवन की प्रभा को जीतने वाला और जिसकी चमक के आगे नेत्र स्तंभित हो जाते हैं , यह विचित्र राजमहल किसका है ? सारथी ने मृदुहास्ययुक्त कहा -कुमार ! अपनी सुन्दरता से, शची और किन्नरी के सौन्दर्य को जीतने वाली देवी राजमती के पूज्य पिताजी का यह उत्तुंग राजमहल है । सारथी की बात सुनकर एक क्षण को ठहर कर वे उस राज्य महल की शोभा देखने लगे।

महल के झरोखों में समवयस्क सखियों के समूह से विभूषित कुमारी राजीमती ने अपने होने वालेजीवन-सर्वस्व नेमिकुमार की अकृत्रिम रूपराशि का दूर से ही निरीक्षण किया । हर्ष लज्जा और आनंद के वेग से उसका हृदय परिपूर्ण हो गया, सखी मंडल अपने विनोद के लिये यह उपयुक्त समय समझा। उनमें विनोद की धारा में तीव्र गति से बहने वाली एक सखी ने कहा-

अहा ! राजमती बड़ी सौभाग्य शालिनी है, जिसने त्रैलोक्य के नेत्रों को हर्षित करने वाले नेमिनाथ जी को अपने सौन्दर्य पर आकर्षित किया है, ऐसा सौभाग्य किसी विरली ही महिलाओं को प्राप्त होता

है, राजमती ही इस तरह के विरक्त और योगी पुरुष को अपनी ओर खींच सकती थी, मैं सब सखी मंडल की ओर से इस कार्य के लिये इन्हें धन्यवाद देती हूं। सखी के इस विनोद में अपना स्वर मिलाती हुई दूसरी सखी बोली-बहिन ! विधाता ने ही पूर्वजन्म के संयोग से इन दोनों की सुन्दर जोड़ी मिलाई है, किन्तु सखी ! कहीं दैवात् इन दोनों का परस्पर वियोग हो जायेगा तब इनकी क्या दशा होगी ? इस अशुभ प्रसंग को दबाती हुई एक सुन्दरी बोली-प्रिय सखी राजमती ! देख, मैं तुझे तेरे जीवन सर्वस्व के दर्शन करा रही हूं, बोली मुझे इसका क्या परितोषिक मिलेगा, यह कहकर उसने उसके मुंह को उस तरफ घुमाया जिस ओर कुमार नेमिनाथ का रथ खड़ा हुआ था।

सख्यिों के विनोद करती हुई राजमती आनंद-विभोर हो रही थी। धीरे धीरे बारात महाराज उग्रसेन के महल की ओर चली, नगर के नरनारी और बालक बारात की शोभा देखने के लिये इधर उधर से दौड़ने लगे। मकानों की छतों पर बैठी हुई महिलाएं फूल बरसा रही थी।

बरात राजमहल तक पहुंचने को ही थी कि इतने में से एक ओर से कुछ पशुओं के रोने और चिल्लाने की आवाज आई। नेमिकुमार ने उस दर्दभरी आवाज को सुना-सुनाकर वे चौंक उठे। उन्होंने अपने सारथी से पूछा सारथी ! महल के उस कोने में पशुओं के रोने की आवाज यह कैसी आ रही है ? सारथी ने विनय से कहा-महाराज ! श्री कृष्ण जी की आज्ञा से बहुत से पशु एक जगह बंद किए गये हैं , यह उनके ही चिल्लाने की आवाज आ रही है। नेमिकुमार ने फिर पूछा-सारथी ! यह इतने गरीब जानवर यहां क्यों बंद किए गए हैं ? सारथी ने उत्तर दिया-महाराज ! सुनने में आया है कि आपके विवाह में इनकी जरूरत पड़ेगी इसलिये ही यह इकट्ठे किये गये हैं।

नेमिकुमार ने आश्चर्य सहित पूछा-सारथी ! क्या कहा ? मेरे विवाह के लिये ये इकट्ठे हुए हैं ? यह कैसे हो सकता है, तुम ठीक-ठीक और सच सब हाल सुनाओं ।

सारथी ने निर्भय होकर कहा-महाराज ! आपके विवाह में शामिल होने के लिये बहुत से म्लेच्छ राजा लोग आए हुए हैं , और उनमे बहुत से लोग मांस खाने वाले भी हैं।

नेमिकुमार बोले- सारथी, बोलते जाओ, तुम बीच में क्यों रूक गये ? सारथी ने कहा- महाराज ! उनके मांस भोजन के लिये ही इन पशुओं को मारा जायगा।

नेमिकुमार का हृदय भर आया। वे बोले-सारथी ! यह तुमने क्या कहा ? मेरे विवाह के लिए उन बेचारे गरीब जानवरों को मारा जायेगा ?

सारथी ने फिर कहा- महाराज ! हां इनको मारा जायगा। आप दयालु और करूणामय हैं, इसलिए आपको आया हुआ जानकर यह आपसे बिनती करने के बहाने चिल्ला रहे हैं।

नेमिकुमार ने दयापूर्ण स्वर से कहाः-सारथी ! मेरे विवाह के लिए ये गरीब प्राणी मारे जायेंगे, इसलिये यह मुझसे विनती करने आए हैं, सारथी ! क्या यह सब सच हैं ?

सारथी बोलाः- हाँ महाराज ! श्री कृष्ण महाराज की ऐसी ही आज्ञा है, उनके वचनों को कोई टाल नहीं सकता।

नेमिनाथ ने फिर कहाः- सारथी ! क्या श्री कृष्ण जी की ऐसी ही आज्ञा है कि मेरे विवाह के लिये यह बेकसूर पशु मारे जाये और उसकी इन आज्ञा को कोई टाल नहीं सकता ?

सारथी बोला-हां महाराज ! वह चक्रवर्ती राजा है, उनकी आज्ञा के खिलाफ यहां पर कोई आवाज नहीं उठा सकता।

नेमिनाथ ने दयालुता पूर्वक कहा-सारथी ! तुमने यह क्या कहा ? उनके विरूद्ध कोई आवाज नहीं उठा सकता ? नहीं, यह गलत है। उठा सकता है। पशुओं की यह पुकार उनके खिलाफ आवाज उठ रही है- आसमान इस आवाज को सुन रहा है, मैं उनकी आवाज को सुन रहा हूं। ओहो ! इतनी करूणा मई पुकार ! यह रोना ! नहीं सारथी, अब मैं एक मिनट भी नहीं सुन सकता, मेरा रथ उन पशुओं के पास ले चलो।

सारथी ने कहाः- महाराज

नेमिकुमार ने आज्ञा के स्वर से कहाः सारथी ! कुछ मत कहो कुछ मत हो, मेरा मन बैचेन हो रहा है, यह रोना यह चिल्लाना यह पुकार ! नहीं सुनी जाती। जल्दी रथ ले चलो मुझे उन पशुओं के पास पहुंचाओं। सारथी ने रथ बढ़ा दिया, कुमार नेमिकुमार वहां पहुचे जहां पर वह पशु बंद थे, उनका विलाप सुनकर उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। बिचारे गरीब पशु बिना अपराध के इस तरह बंद पड़े हैं, उनके बच्चे जंगल में तड़प रहे होंगे। वह सोचते होंगे मेरी मां आती होगी। वह भूख के मारे सिसक रहे होंगे। उन्हें क्या पता होगा कि वह निर्दय मनुष्यों को भोजन बनाया जायेगा, उन्हें क्या पता होगा कि मनुष्य इतना ज्ञानवान, मनुष्य ही विचार और विवेक का दावा रखने वाला यह मनुष्य ही उनके प्राणों का ग्राहक है। ओह ! इस गरीब हरणी की ओर तो देखो- उसके करूणा की भिक्षा से भरे हुए भोले दीन नेत्र कैसे मेरी ओर देख रहे हैं । अरे रे ! इन गरीब जानवरों ने क्या कसूर किया है, उन्होंने किसी का क्या बिगाड़ा है, जो इनकी इस तरह हत्या की जायगी ? क्या गरीब, बेकसूर जानवरों की हत्या करना ही मनुष्य की बहादुरी है ? धन्य है इनकी बहादुरी को। सिंह और बाघ को देखकर यह दूर भाग जायेंगे और गरीब जीवो की इस प्रकार हत्या करेंगे क्या गरीब ही इनका अपराधी है ? मैं इन्हें अभी छोड़े देता हूं।

नेमिकुमार ने बाड़ा का दरवाजा खोल दिया। सभी जानवर अपनी अपनी जान लेकर मौत के पिंजड़े से निकले और नेमिकुमार को आशीर्वाद देते हुए जंगल में अपनी अपनी जगह को चल दिए।

नेमिकुमार ने कहा- जाओ गरीब प्राणियों जाओ, अपने बच्चो से मिलो। आनंद से घूमों और सुख से अपने जीवन को व्यतीत करो।

मेरे विवाह के कारण तुम्हें इतनी तकलीफ सहन करना पड़ी इतना दुःख भोगना पड़ा इसके लिये मुझे

माफ करना। गरीब जानवरों ! इसमें मेरा कुछ भी कसूर नहीं है, मुझे तुम्हारी इस मुसीबत का कुछ भी पता नहीं था, ओह ! मनुष्यजाति दूसरो के प्राणो की कुछ भी कीमत नहीं समझती। मनुष्यों को इस स्वार्थ के लिये धिक्कार है और उस मतलबी संसार को धिक्कार है जिसमें मनुष्य ऐसे निर्दय काम करता है।

सारथी मेरा रथ घर की ओर ले चलो।

सारथी ने कहा- महाराज ! यह क्यों ? बरात के लोग आ रहे हैं महाराजा उग्रसेन आपके आने की बाट देख रहे होंगे। नेमिनाथ ने विरक्त होकर कहा-नहीं, सारथी, मेरा रथ लौटा दो, अब मैं अपना विवाह नहीं करूंगा , मेरे विवाह के लिये इतनी जीव हिंसा हो रही हो मैं नहीं रुक सकता। मैं संसार को दया का उपदेश दूंगा, मैं संसार के मनुष्यों के लिये दया का दरवाजा खोलूंगा, मै उन्हें मनुष्य का धर्म बतलाऊंगा और अब विवाह नहीं करूंगा, सारथी ने रथ लौटा दिया।

कुमार राजमती सखियो के समूह मे बैठी हुई यह सारा दृश्य देख रही थी, उसी समय अचानक ही उसका बांया नेत्र फड़का। इस कुशकुन से उसका हृदय आने वाली विपत्ति के भय से व्याकुल हो उठा। हृदय की उत्तेजना वह रोक न सकी, उसने धड़कते हुए हृदय से अपनी सखियों से कहा-प्यारी सखियो ! तुम तो मुझे महाभाग्यशाली कह रही थीं, लेकिन मेरा हृदय तो किसी भावी विपत्ति से भयभीत हो रहा है, इस कल्याणकारी महोत्सव के समय मेरा दाया नेत्र फड़क रहा है जो किसी महा अनर्थ का सूचक है। क्या तुम बतलाओगी इसका क्या कारण होगा ?

राजमती के भय से भरे हुए शब्द सुनकर सखिएं उसे धैर्य बधाती हुई बोली - कुमारी ! इस तरह की आशंकाओं को तुम्हें अपने हृदय में स्थान नहीं देना चाहिए। तुम निश्चयतः महा भाग्या हो, तुम्हारे भाग्य के परीक्षण में कुछ क्षण का ही विलंब है, तुम अभी देखोगी। तुम्हारे सौभाग्य की पताका कितने उच्चाकाश में फहराती है। बायें नेत्र का फड़कना किसी शारीरिक विकार की सूचना देता है। इसके लिये हम अभी पूजा विधान कराती हैं।

सखिएं राजमती के हृदय को सान्त्वना दे रही थीं। इसी समय उसने महल की ओर आते हुए श्री नेमिकुमार के रथ को पीछे लौटते हुए देखा। रथ को वापिस लौटता देख उसके हृदय की चिंता साकार हो उठी। वह भयभीत होकर बोल उठी-आह ! सखियो ! उस ओर देखो ! क्या हो रहा है ? उनका रथ राज्यमहल के द्वार तक आकर क्यों वापिस लौटा जा रहा है ? अरे ! यह कैसा दुर्भाग्य है वह मुझसे विमुख होकर क्यो जा रहे हैं ? क्या मुझसे उनका कोई अपराध बन पड़ा है? हा दैव ! तेरा यह कैसा कुटिल चक्र है, वह मेरे प्राणाधार मेरे जीवन सर्वस्व क्यों रूष्ट होकर चल दिए ? आहा ! अब मैं क्या करूं ? उसने अपनी चन्द्रानना को शीघ्र ही रथ लौटाने के कारण का पता लगाने भेजा। वह शीघ्र ही उस स्थान पर गई, वहां जाकर उसने संपूर्ण व्यवस्था जान ली, वह लौटकर आई और राजमती से कहने लगी - प्रिय सखी ! बड़ा अनर्थ हो गया। नेमिकुमार रथ लौटाकर चले जा रहे हैं , वे अब नहीं लौटेंगे। राजमती ने बड़ी -उत्सुकता ने पूछा-बहिन ! क्या तू यह सच कह रही है ? बोल ! ऐसा क्या कारण हुआ

जिससे वे वापिस जा रहे हैं ?

चन्द्रानना ने कहा-सखी सुन ! नेमिकुमार जी का रथ जब उस स्थान पर पहुंचा जहां मूक पशु वद्ध थे, तो मृत्यु के मुख में जाने वाले इन पशुओं के समूह ने कुमार नेमिनाथ के सम्मुख करूणा पूर्ण स्वर से रूदन किया, उनमें से एक हरिण बधिक को संबोधित कर कह रहा था, हे बधिक ! विपत्ति में साथ देने वाली यह हरिणी मुझे अत्यंत प्रिय हैं, इसलिये उसका वध करने के पहिले ही तू मेरा वध कर डाल, क्योंकि उसकी मृत्यु को मेरे नेत्र नहीं देख सकेंगे। उसकी यह बात सुनकर हरिणी कह रही थी, स्वामी ! आप मेरे वध की चिंता न कीजिए, अब मेरा वध नही हो सका। वह देखा करूणा से पूर्ण हृदय नेमिकुमार त्रैलोक्य के रक्षक आ रहे हैं , वह समस्त प्राणियों के अकारण ही बंधु है, वह आहार हम सब प्राणियो का त्राण करेंगे।

हृदय में करूण रस का संचार करने वाली उन पशुओं की मूकवाणी सुनकर नेमिकुमार ने रथ से उतरकर कहा-जो तुम्हारा स्वामी इस पाणिग्रहण के अवसर पर इस तरह की जीव हिंसा कर रहा है तो मैं अब यह विवाह कभी नहीं करूंगा। उन्होंने उन सभी मूक पशुओं को उसी समय छोड़ दिया और अपने सारथी से रथ को वापिस लौटाने को कहा। सारथी ने रथ लौटा दिया अब वे लौटे हुए जा रहे हैं।

रथ को वापिस लौटते देखकर राजा उग्रसेन और अन्य सभी कुटुम्बीजन नेमिकुमार के निकट पहुंचे। माता शिवदेवी को भी इस बात का पता लगा। वे शीघ्र ही आकर अनुरागभरी दृष्टि से पुत्र की ओर देखकर समझाने लगीं -

जननीवत्सल पुत्र ! तू यह क्या कर रहा है ? विवाह संबंध में यह इस तरह का विघ्न क्यों ? देख यह भूमंडल के सभी नरेश इस विवाहोत्सव में सम्मिलित हुए हैं तुम इस तरह का कार्य करके इन सबका मस्तक नीचा करने का प्रयत्न क्यों कर रहे हो ? मैं मानती हूं पशुओं के प्रति तुम्हारे हृदय में दयाभाव का होना स्वाभाविक है, यदि तुमने उन्हें बंधनमुक्त कर दिया तो ठीक ही किया, लेकिन इस अल्प सी बात पर विवाह न करना बुद्धिमानी नहीं है, और फिर इसमें उस बेचारी अबोध कन्या का क्या अपराध ? जिसे तुम इस तरह ठुकराकर जा रहे हो ? अब तो आनंद के साथ विवाह संबंध करके साजवाज के साथ अपने नगर को लौटना ही कल्याणकारी है। मुझे आशा है तुम अपनी माता की यह आज्ञा पालन कर उसके हृदय को संतोषित करोगे।

माता शिवदेवी के स्नेह सने सरल शब्द सुनकर नेमिकुमार बोले-प्रिय जननी ! मैं जानता हूं कि आपका हृदय पुत्र-प्रेम से पूर्ण है, लेकिन अब आपको मोह का यह स्वप्न भंग करना होगा। मुझे यह कहते हुए बड़ा खेद हो रहा है कि मैं अब आपसे इस आग्रह को स्वीकार नही कर सकूंगा । अब मैं इस सांसारिक विवाह के बंधन में नही फूंसूंगा। अब तो मेरा विवाह उस अद्वितीय मुक्ति रमणी से ही होगा जिसकी उपासना में मेरा मन सदैव तन्मय रहता है। मां, यह वैवाहिक संबंध तो क्षणिक है, संसार में भ्रमण करते हुए हमने कितने विवाह संबंध नही किए ? लेकिन उनसे कभी हमें तृप्ति का अनुभव हुआ है ?

हमने कितने महोत्सवों के क्षणिक सुखों का अनुभव किया है लेकिन दो दिन के लिये मन में कुछ क्षणिक उल्लास भरने के अतिरिक्त और उनसे क्या हुआ है ? मां, यह सभी संबंध क्षणिक और नश्वर हैं फिर इन संबंधों को जोड़ना ही क्यों ? मां मेरे ममत्व का बंधन टूट चुका है, अब मैं फिर उसे जोड़कर गांठ नहीं डालना चाहता। यदि आपको मुझसे वास्तविक प्रेम है और मेरा कुछ भी कल्याण यदि आप चाहती हैं तो इस विवाह संबंध के लिये अब आप मुझसे कुछ भी मत कहिए। क्योंकि मैं जानता हूं कि आपका कथन सब बेकार जायेगा।

स्नेहशीला माता-पिता और अन्य स्नेही जनों के समझाने का जब नेमिकुमार के हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा तब उनके हृदय में ममत्व भाव उत्पन्न करने के लिये कुछ सखियो ने राजमती को उनके निकट भेजा। राजमती के लिये यह समय उसके जीवन मरण का था। थोड़ी सी जल्ला करने पर उनके जीवन का बना बनाया खेल बिगड़ रहा था। उसने इस समय अपने हृदय का संकोच त्यागना ही उचित समझा। वह करुण स्वर में बोली-

यादवभूषण ! मुक्तिसुन्दरी के पाणिग्रहण के लिये आप इतने उत्सुक हो रहे हैं , आप यह नहीं जानते है कि संपूर्ण सिद्धसमूह की उपर्युक्त गणिका के समान है। फिर भी आप उसके प्रेम से पागल होकर मेरे जैसी कुमारिका का त्याग कर रहे हैं , यह कार्य क्या यादवभूषण के लिए योग्य है ? यदि आपको मुक्ति सुन्दरी से ही स्नेह था, उसके सौन्दर्य पर आप इतने मुग्ध हो चुके थे तो फिर विवाह का यह आडम्बर आपने रचा ही क्यों ? एक बालिका को अपने स्नेह बंध में बांधकर उसका इस तरह तिस्कार करना ही क्या मानव कर्तव्य है ? निष्ठुर कुमार ! अज्ञ पशुओं पर करूणाबुद्धि जागृत करके तो आपने उन्हें बंधनमुक्त किया, लेकिन आपके भाग्य के साथ अपने जीवन नौका को छोड़ देने वाली एक सज्ञान बालिका को बीच भंवर में छोड़ के आपकी करुणा कहां गई ? हृदयहीन कुमार ! मुक पशुओं की पुकार सुनने वाला वह आपका करूण हृदय अब कहां गया ? वाह ! धन्य है आपकी करुणा को जो एक के लिए फूल बनती है और दूसरे के लिए शूल बन जाती है।

हृदयेश्वर ! थोड़ा विचार कीजिए, वेदना की भयंकर भवंर में पड़ी हुई एक अनाथिनी बाला का हाथ पकड़कर उसे भंवर से निकालना उचित है अथवा उसे उसी में छोड़ देना ठीक है, मुझ करुण मछली के लिए वियोग बालू में निराश्रित और निरपराध तड़पती छोड़कर चला जाना क्या मनुष्यता की बात है ?

प्राणेश्वर ! अपने हृदय के करूणा द्वार को खोलिए मेरी मूक आवाज को उसमें प्रवेश करने दीजिए। अपने हृदय को इतना कठोर मत बनाइए। अपने रथ को फिर से राज्यमहल की ओर लौटाइए और मुझे अपनाकर अपनी दयालुता का परिचय दीजिए।

राजमती के हृदय-द्रावक करुण और स्नेह भरे वचनों का नेमिकुमार के विरक्त हृदय पर चिकने घड़े पर पानी की बूंद की तरह कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे अपने निश्चय से थोड़ा से भी चलित नहीं हुए। उसकी सभी प्रार्थनाओं और अभिलाषाओं को ठुकराते हुए वे दृढ़ता के स्वर में बोले-राजमती ! मानवों

का यह सांसारिक मोह ही उन्हें आत्म कल्याण के पथ से दूर ले जाता है। इस मोह की मदिरा का नशा बड़ा भयानक होता है। यह नशा मानव की अंतरंग विवेक शक्ति को खो देता है। इसको पीकर मानव अपनी चेतना शक्ति को भूल जाता है और वासना का दास बनकर उसके चरणों पर अपने मस्तक झुका देता है।

मैं अनादि से मोह की तीव्र शराब पीकर विजय प्रेतों के हाथों का खिलौना बना हुआ था। सौभाग्य से आज मेरा नशा भङ्ग हो गया है। आज मैंने अपने आपको समझा है। मैंने अपने चैतन्य को जागृत कर लिया है। अब तुम मुझे फिर से उस मोह के बंधन में डालने का असफल प्रयत्न मत करो। अब मैं पूर्ण जागृत हूं। तुम्हारे स्नेह वचनों का अब मेरी दृढ़ आत्मा पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। तुम मेरे मिलने की आशा मत करो। राजमती, बालू पालने से तेल नहीं निकलता, आकाश पृथ्वी की कल्पना कर ना भी व्यर्थ है। अनंत सुख साधना के पथ पर इस संसार के उस पार खड़े हुए मेरे पाने का दुःसाहस करना स्वप्न में राज्य पाने की इच्छा करना है जो कभी सफल नहीं होती।

वे राजमती को अब और बोलने का समय नहीं देना चाहते थे, इसलिये सारथी को अपना रथ आगे बढ़ाने का आदेश दिया।

रथ के आगे बढ़ते ही दुर्बल-हृदय राजमती एक क्षण को खड़ी नहीं रह सकी। वह बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसका सारा शरीर चेतना शून्य हो गया। सखियो ने शीघ्र ही उसके मस्तक पर कपूर और चंदन माला और शीतल जल के छींटे दिये। अनेक तरह के उपचार करने पर उसे कुछ चेतना आई तब वह -आह प्रियतम ! यह क्या किया ? मुझे अथाह वियोग समुद्र में बहती छोड़ कर कहां चले आदि कहती हुई करुण करने लगी।

राजमती को इस तरह प्रलाप करते हुए देखकर उसके कुटुंबी जन उसे धैर्य बंधाते हुए बोले- राजमती, तू इस तरह से उन वैरागी के प्रेम में क्यों पागल हो रही है ? तू सचेत होकर सोच, ताली कभी एक हाथ से नही बजती। उन निर्मोही के मोह में पड़कर तू अपने जीवन को नष्ट मत कर। जब वह तेरे स्नेह बंधन को स्वीकार ही नहीं करते हैं, जब उनका व्यवहार तुझ पर जड़ पाषाण की तरह है तब तू ही क्यों पागल बनकर अपने प्राणों को दुःखित कर रही है ? यह पृथ्वीमंडल राजकुमारों से शून्य थोड़े ही होगया है तो तू इतनी चिंता करती है।

कुमारी, अभी तेरा क्या गया है, फेरा फिर जाने के बाद संभव या फिर कोई प्रयत्न न हो सकता लेकिन तू तो अभी कुमारी ही है। यदि वह शुष्क हृदय तुझे नहीं चाहता तो उसे जाने दे, अभी तो अनेक गुणशाली राजकुमार इस भूमंडल पर हैं । कुमारी कन्या के लिए वर की क्या कमी और फिर तेरे जैसी सुन्दरी और गुणशीला की इच्छा कौन व्यक्ति नहीं करेगा ? तुझे अब पागल नहीं बनना चाहिए और अपने हृदय में नए आनंद को भरना चाहिए।

सखियों के प्रलोभन पूर्ण वाक्य जाल सेअपने को निकालती हुई राजमती स्थिर होकर बोली-

सखियों ! तुम आज मुझे यह क्या उपदेश दे रही हो ? मालूम पड़ता है तुम इस समय होश में नहीं हो। यदि तुम्हें होश होता तो तुम ऐसे शब्दों का प्रयोग मेरे लिए कभी नहीं करतीं। तुम नहीं जानती, यदि सूर्य कभी पश्चिम दिशा में उदित होने लगे और चन्द्र अपनी शीतलता त्याग दे किन्तु आर्यकुमारिएं जिस महापात्र को हृदय से एक बार स्वीकार कर लेती हैं उसके अतिरिक्त फिर किसी पुरुष की स्वप्न में भी आकांक्षा नहीं करती। मैं नेमिकुमार को हृदय से अपना पति स्वीकार कर चुकी हूं क्या हुआ यदि विवाह वेदी के समक्ष उन्होंने मेरे हाथ पर अपना हाथ आरोपित नहीं किया। लेकिन उनका अलुप्त हाथ तो मैं अपने मस्तक पर रखकर अपने को महा भाग्यशील समझ चुकी हूं। क्या हाथ पर अपना हाथ रखना ही विवाह है ? मंत्रों के चार अक्षर ही क्या विवाह को जीवन देते हैं ? नहीं कभी नहीं। हृदय समर्पण ही विवाह है और मैं वह पहिले ही कर चुकी थी। क्या हुआ दुर्भाग्यवश मेरा उनसे संयोग नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष में व्यवहारिक क्रियाएं नही हुई। क्या माता पिता द्वारा कन्यादान करना ही विवाह है ? पार्थिव शरीरदान ही को क्या विवाह कहते हैं ? यह तो विवाह का केवल मात्र स्वांग है। विवाह तो हृदयदान है।

सखियो ! कुमारी कन्या जब किसी को अपना सर्वस्व समर्पण कर चुकी है तो उसका अपनी आत्मा, मन और शरीर पर कुछ भी अधिकार नहीं रहता। वह तो इन सबका दान कर चुकती है। उसके पास फिर अपना रहता ही क्या है जो वह दूसरे को दे। जो हृदय एक बार समर्पण कर दिया गया है, जो एक बार किसी को अपना भाग्य विधाता बना चुकी है, वह हृदय फिर दूसरे के देने योग्य नहीं रहता।

भारतीय कुमारिकाएं एक बार ही वरण करती हैं और जिसको वे इच्छापूर्वक वरण कर लेती है। उसे त्यागकर अन्य पुरुष संसर्ग की स्वप्न में भी इच्छा नहीं करती। मैं अपना शरीर कुमार नेमिकुमार को समर्पण कर चुकी हूं उनके अतिरिक्त संसार के सभी पुरुष मेरे लिए पिता और भाई को समान है।

आर्यकुमारियो को प्रण को वज्र की लकीर समझना चाहिए। अपने प्रण के सामने वे अपने जीवन का बलिदान करने में जरा नहीं हिचकतीं।

सखियो ! तुम सब मुझमें अपने उन जीवन सर्वस्व नेमिकुमार से स्नेह त्यागने की बात क्या कह रही हो। क्या यह भी संभव हो सकता है ? आर्यकुमारियो के सामने तुम यह कैसा आदर्श उपस्थित कर रही हों ? मुझे मृत्यु स्वीकार है लेकिन यह कभी स्वीकृत नहीं हो सकता।

मानव जीवन का कुछ आदर्श हुआ करता है। अपने आदर्श के लिए जीवन का उत्सर्ग कर देना भारत की महिलाओं ने सीखा है, मेरा जीवन उस आदर्श कीओर अग्रसर हो रहा है, ऐसी स्थिति में यह कभी भी नहीं हो सकता कि मैं अपने हृदय-सर्वस्व के लिए जो अक्षय प्रेम को स्थापित किए हुए हूं उसे विसर्जन कर दूं ? जो हृदय नेमिकुमार जी के निर्मल प्रेम से ओत प्रोत हो रहा है उसमें अन्य व्यक्ति के लिए कही भी स्थान नहीं हो सकता।

जिन महिलाओं में आर्यत्व और धर्मत्व का कुछ गौरव नहीं है संभव है वे ऐसा कुछ कर सकें। जिनका लक्ष्य प्राचीन आदर्श की ओर नहीं है और जो इन्द्रिय वासना तृप्ति तक ही जीवन का उद्देश्य

समझती हैं, जो सांसारिक प्रलोभनों के सामने अपने आपको स्थिर नहीं रख सकती उनके सामने इस आदर्श का भले ही कुछ महत्व न हो लेकिन मेरे सामने तो उसका महत्व स्थिर है।

मैं यह स्पष्ट कर चुकी हूं, मेरा यह निश्चित मत है कि इस जीवन मे श्री नेमिकुमार को ही मैंने अपना पति स्वीकार किया है वही मेरे सर्वस्व हैं, वही मेरे ईश्वर हैं उनके अतिरिक्त किसी व्यक्ति से मेरे संबन्ध की बात जोड़ना मेरे पतिव्रत धर्म को कलंकित करना है। अब तक मैं बहुत सुन चुकी अब भविष्य में ऐसे शब्दों को मैं एक क्षण के लिये नहीं सुन सकूंगी । मैं सूचित कर देना चाहती हूं कि कोई भी अब मेरे लिये ऐसे शब्दों का प्रयोग न करें।

धन्य ! कुमारी राजमती ! तेरी अलौकिक दृढ़ता को धन्य है ! तेरा आत्मत्याग महान् है, तेरा आदर्श भारतीय महिलाओं मे अनंतकाल तक जागृति की ज्योति जगायेगा।

वर्तमान कुमारियोंको महासती राजमती के इस निर्णय आदर्श से शिक्षा लेना चाहिए और उसका अनुकरण करना चाहिए। अपने धार्मिक विचारों को आत्म दृढ़ता को उन्हें अपने माता पिता के सामने स्पष्ट रूप से रख देना चाहिए और अपनी मयार्दा की रक्षा करना चाहिए। यदि वह उनकी इच्छा से विरुद्ध अयोग्य अथवा अधार्मिक वर से उनका सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं तो उन्हें इसका स्पष्ट विरोध करना चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि अपने ऊपर होने वाले अनर्थ और अत्याचार के समय मौन रखना उसे उत्तेजना देना है, इस समय की उनकी लज्जा हृदय- दौर्बल्य के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यदि लज्जा के वश होकर राजमती मौन रहकर अपने माता पिता की आज्ञा को मान लेती तो आदर्श नष्ट होने के साथ साथ उसका जीवन भी नष्ट हो जाता। अपने सच्चे हृदय की आवाज को माता पिता के सामने रखना, उन्हें सत्कर्त्तव्य की ओर झुकाना और अपने हृदय के निश्चल विचारों का परिचय देना महिमामयी भारतीय कन्याओं का कर्त्तव्य है।

राजमती के दृढ़ निश्चय के आगे किसी को कुछ भी कहने का साहस नहीं हुआ और सभी जन मौन रह गए।

नेमिकुमार जी रथ लौटाकर राज्य महल को चल दिए। वे वैराग्य के उन्नत शिखर पर चढ़ गए थे। विवाह के कंकण को मोह राजा के प्रबल साथी ने और ममत्व का दृढ़ बंधन समझकर उसे तो उन्होंने तोड़ डाला, सभी वस्त्र उतारकर तपश्चरण करने के लिए वे सहस्रार वन की ओर चल दिए। कामदेव का मदमर्दन करने वाले उन योगी नेमिकुमार ने कई वर्षों तक उस जंगल में रहकर कठोर तपश्चर्या की। तप के बल से उन्होंने पूर्ण समाधि को धारण किया और आत्मा की दिव्य ज्योति को देखा।

कैवल्य प्राप्त होने पर संसार के उद्धार के लिए उन्होंने महान् उपदेश दिया। उनका उपदेश सुनने के लिए श्रीकृष्ण जी तथा पांडव आदि राजा आए थे, उन्होंने अनेकांत धर्म का उपदेश दिया। राजा सगर ने उनसे आसक्ति के बंधन से छूटने का उपदेश सुनना चाहा जिसकी व्याख्या उन्होने बड़े सुन्दर ढंग से ही-

सगर ! संसार में मोक्ष का ही सुख वास्तविक सुख है, परन्तु जो धन और धन्य के उपार्जन में व्याग्र

तथा पुत्र और पशुओं में आसक्त हो रहा है, उस मूर्ख मनुष्य को उसका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। जिसकी बुद्धि विषयों में आसक्त हो उसका मन अशांत होता है। ऐसे पुरुष की चिकित्सा करनी कठिन है। स्नेहबंधन में बंधे हुए अज्ञानी का मोक्ष नहीं हो सकता। अब मैं तुम्हें स्नेह के बंधनो का परिचय देता हूं, सुनो ! समझदार मनुष्यों ये बातें कान लगाकर और ध्यान देकर सुननी चाहिए। तुम न्यायपूर्वक इन्द्रियों के विषयों का अनुभव करके उनसे अलग हो जाओ और आनंद के साथ विचरते रहो, इस बात की परवाह न करो कि संतान हुई है या नहीं ? इन्द्रियो का विषयों के प्रति जो कौतूहल है, उसे मिटाकर मुक्त की भांति विचरो और दैवेच्छा से जो भी लौकिक पदार्थ प्राप्त हों, उनसे समान भाव रक्खो- राग द्वेष न करो। मुक्त पुरुष सुखी होते और संसार में निर्भय होकर विचरते हैं किन्तु जिनका चित्त विषयो में आसक्त होता है वे चीटियों और कीड़ों की तरह आहार का संग्रह करते ही नष्ट हो जाते हैं। अतः जो आसक्ति से रहित हैं, वे ही इस संसार में सुखी हैं, आसक्त मनुष्यों का तो नाश ही होता है। यदि तुम्हारी बुद्धि मोक्ष में लगी हुई है तो तुम्हें स्वजनों के लिये ऐसी चिन्ता नही करनी चाहिए कि ये मेरे बिना कैसे रहेंगे ? प्राणी स्वयं जन्म लेता है, स्वयं बढ़ता है और स्वयं ही सुख-दुख तथा मृत्यु को प्राप्त होता है। मनुष्य पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार ही, भोजन वस्त्र तथा अपने माता पिता के द्वारा संग्रह किया हुआ धन प्राप्त करते हैं। संसार में जो कुछ मिलता है, वह पूर्वकृत कर्मों के फल के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है। भूमण्डल के समस्त जीव अपने कर्मों से सुरक्षित होकर जगत् में विचरते हैं और विधाता ने उनके प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ भोग नियुक्त कर दिया है, उसे प्राप्त करते हैं । जो स्वयं ही (शरीर की दृष्टि से) मिट्टी का लोंदा, परतंत्र तथा अस्थिर है, वह स्वजनों की रक्षा और पोषण करने का अभिमान क्यों करता है ? तुम देखते हो और बचाने का भारी से भारी यत्न भी करते हो तो भी जब मौत तुम्हारे स्वजन को मारे बिना नहीं छोड़ती तो तुम्हारी क्या ताकत है ? इस बात पर स्वयं विचार करो। तुम्हारे ये सगे-सम्बंधी जीवित भी और इनके भरण पोषण कार्य समाप्त न भी हुआ हो तो तब भी तो तुम इन्हें एक दिन छोड़कर मर जाओगे ! प्रथम जब कोई स्वजन मरकर इस लोक से चला जायेगा, उस समय वहां वह सुखी होगा या दुःखी ! इस बात को तो तुम नही जान सकोगे। अतः इस पर स्वयं विचार करो, तुम मर जाओ, या जीवित रहो, तुम्हारे कुटुम्ब का प्रत्येक मनुष्य अपने अपने कर्म का ही फल भोगेगा। ऐसा जानकर तुम्हें अपने कल्याण साधन में लग जाना चाहिये। संसार में कौन किसका है ? इसका भलीभांति विचार दृढ़ निश्चय के साथ अपने मन को मोक्ष में लगा दो।

अब आगे की बात पर भी ध्यान दो- जिसने क्षुधा, पिपासा, क्रोध, लोभ और मोह आदि भावों पर विजय पा ली है, उस सत्व सम्पन्न पुरुष को मुक्त ही समझना चाहिए। जो मोहवश प्रमाद के कारण जुआ, मद्यपान स्त्री संसर्ग तथा मृगया आदि में प्रवृत्त नहीं होता, वह भी मुक्त ही है। जो सदा भोगयुक्त होकर स्त्री में भी आत्मदृष्टि ही रखता है- उसे भोग्य बुद्धि से नहीं देखता, वही यथार्थ मुक्त है। जो प्राणियों के जन्म, मृत्यु और कर्मों के तत्व का ठीक-ठीक जानता है, वह भी इस संसार में मुक्त ही है। जो हजारों

और करोड़ों गाड़ी अन्न में से एक प्रस्थ (सेरभर) को ही पेट भरने के लिये पर्याप्त समझता है (उससे अधिक संग्रह नहीं करना चाहता) तथा बड़े से बड़े महल में भी मात्र बिछाने भर की जगह को ही अपने लिये आवश्यक मानता है, वह मुक्त हो जाता है। जो थोड़े से लाभ में ही संतुष्ट रहता है- जिसे माया के अद्‌भुत भाव छू नहीं सकते, जिसके लिए पलंग और भूमि की शय्या एक सी है, जो रेशमी वस्त्र कुश के बने कपड़े, ऊनी वस्त्र और वल्कल को समान भाव से देखता है, संसार को पाञ्च भौतिक समझता है, तथा जिसके लिये सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, इच्छा द्वेष और भय उद्वेग बराबर हैं , वह सर्वथा मुक्त ही है। जो इस देह को रक्त, मल, मूत्र तथा बहुत से दोषो का खजाना समझता है और इस बात को कभी नहीं भूलता कि बुढापा आने पर क्षुर्रियां पड़ जायेंगी, बाल पक जायेंगे, देह दुबला-पतला एवं सौन्दर्य हीन हो जायेगा, कमर भी झुक जायेगी, पुरुषार्थ नष्ट हो जायेगा, आंखों में सूझ नहीं पड़ेगा, कान बहरे हो जाएंगे और प्राणशक्ति क्षीण हो जायेगी, वह पुरूष मोक्ष प्राप्त करता है। ऋषि, देवता और असुर सब इस लोक से परलोक को चले गये। हजारों प्रभावशाली राजाओं को पृथ्वी छोड़कर जाना पड़ा है- इस बात को जो सदा याद रखता है, वह मुक्त हो जाता है।

संसार में धन दुर्लभ है और क्लेश सुलभ। कुटुम्ब के पालन पोषण में भी यहां बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। इतना ही नहीं, गुणहीन संतान तथा विपरीत गुणो वाले मनुष्यों से भी पाला पड़ता है। इस प्रकार संसार में अधिकांश कष्ट ही दिखायी देता है- यह जानकर भी कौन मनुष्य मोक्ष का आदर नहीं करेगा ? शास्त्रों के अवलोकन से ज्ञानवान् होकर जो सम्पूर्ण मानव जगत् को असार समझता है, वह सब प्रकार से मुक्त ही है। मेरे इस वचन को सुनने के पश्चात् तुम्हारी बुद्धि गृहस्थाश्रम में स्थिर हो या संन्यासाश्रम में, वहां ही रहकर मुक्त की भांति आचरण करो।

भगवान नेमिनाथ का दिव्य उपदेश सुनकर सबको पूर्ण आत्म संतोष हुआ। बहुत से नरेश माया बंधन तोड़कर आत्मकल्याण पथ पर अग्रसर हुए, नेमिनाथ जी के भाई रथनेमि भी साधु बन गए, विदुषी राजमती अब तक ब्रह्मचारिणी रहकर लोक सेवा का कार्य कर रही थी, उसने भी संसार से विरक्त होकर साध्वी दीक्षा ग्रहण की, अब वह आत्म त्याग के महान पथ पर थी।

अरिष्टनेमि जी का मानवों के लिए बहुत काल तक कल्याणकारी उपदेश होता रहा, स्थान स्थान पर भ्रमण कर उन्होंने प्राणियों के हृदय की कलंक-कालिमा धोया, उनके उपदेश का मानवों के हृदय पर एकांत प्रभाव पड़ता था, और वेअपने बल को देखकर कुछ न कुछ संयम और त्याग आवश्य ही ग्रहण करते थे, महिलायें और पुरुष समान रूप से उनके उपदेश का लाभ लेती थीं।

भारत में कुछ समय के लिये आत्मा त्याग और लोककल्याण की ध्वनि गूंज उठी, संतप्त मानव उससे मीठी शांति और सुख का अनुभव करने लगे। जब तक उनका शरीर कोष रहा उसका एक एक क्षण उन्होने लोक सेवा के लिये दिया। अपने शरीर का अंत जानकर वे गिरनार पर्वत पर गए, वहां उन्होंने निश्चल समाधि धारण की और वहीं से निर्वाण प्राप्त किया।

तपस्वी गजकुमार

(पतित से पावन बनने वाला दृढ़योगी)

(1)

राजपुत्र राजकुमार महाराज वासुदेव के छोटे पुत्र थे। बाल्यावस्था से ही बड़े वीर, पराक्रमी और अत्यंत सुंदर थे। उनका सुदृढ़ शरीर दर्शनीय था, साहस और उत्साह उनके अङ्ग अङ्ग में भरा हुआ था। यद्यपि उनका लालन, पालन राजमहल में अनेक सेवकों के संरक्षण में हुआ था, लेकिन वे वर्तमान धनिक तथा वैभवशाली व्यक्तियों की संतान सदृश कायर और निष्कर्मण्य नहीं थे। उन्होंने शस्त्रकला तथा युद्ध विद्या का सुचारू रीति से संपादन किया था। अपने अनेक वीरत्व पूर्ण कार्यों द्वारा प्रजा तथा माता पिता को आनंदित करते हुए वे अपना कुमार काल व्यतीत कर रहे थे।

महाराज वासुदेव के राज्य के आधीन ही पोदनपुर नामक एक छोटा सा राज्य था। राजा अपराजित महाराज वासुदेव की आज्ञा के आधीन रहकर वहां का राज्य शासन करते थे। कुछ दिन से उनके हृदय में राज्य प्रलोभन तथा अधिकार सत्ता ने अपना प्रभाव डाला था, उनने महाराज वासुदेव की आधीनता को अस्वीकार करते हुए उनकी राज्य सीमा पर अनेक उपद्रव करना प्रारंभ कर दिया। अपने सैन्य बल से समीप के अनेक छोटे-छोटे राजाओं को भी उनने अपने आधीन कर लिया था। अनेक राजाओं की संयुक्त शक्ति से वह मदोन्मत हो उठा और अनेक ग्रामों पर आक्रमण कर वहां की प्रजा को कष्ट देने लगा। यह सच है कि क्षुद्र पुरुष थोड़ा सा भी अधिकार और वैभव पाकर मदोन्मत हो जाते हैं, उन्हें अपनी शक्ति सत्ता का कुछ भी ध्यान नहीं रहता ? वह उच्छ्रङ्ख होकर अपनी शक्ति को न देखते हुए भी अपने से महान पुरुषो का भी अपमान करने लग जाते हैं। ठीक वही हाल राज्य सत्ता के मद में चूर हुए अपराजित का भी था।

अपराजित के द्वारा किये गये उपद्रवों से प्रजा संतापित हो उठी।उनने महाराज वासुदेव के पास आकर पुकार की। महाराजा वुासदेव को उसके दमन की चिंता हुई। उसकी बढ़ी हुई संयुक्त शक्ति की बातें उन्होंने सुनी थी इसलिये अपने मंत्रियों से परामर्श करना उन्होंने उचित समझा।

(2)

आज महाराज वासुदेव की राज्य सभा वीर सामन्तों की उपस्थिति से सुशोभित थी। सेना के प्रधान सेनापति और अनेक युद्ध विजयी योद्धागण उपस्थित थे। सभा में पूर्ण शांति विराजमान थी। महाराज वासुदेव आज किसी घोर चिंता में निमग्न मालूम पड़ते थे। प्रधान मंत्री और सेनापति आदि कर्मचारी गंभीर दृष्टि से उनके मुखमंडल की ओर देख रहे थे।

अधिक समय तक मौन रहने के पश्चात् महाराजा वासुदेव ने उच्च स्वर से कहा- सेनापति और मेरे वीर योद्धाओं ! तुम्हें मालूम होगा कि हमारी आज्ञा में रहने वाले महामानी अपराजित ने द्वारिका की राज्य सत्ता के विरूद्ध उपद्रव करना प्रारंभ किया है। केवल यही नहीं , किन्तु वह दूसरे राजाओं को भी भड़काकर राज्य के विरूद्ध घोर षड़यंत्र रच रहा है, और निरपराध प्रजा का उत्पीड़न कर रहा है, राज्याधिकारी की रक्षा तथा प्रजा के कष्ट को दूर करने के लिए उसका दमन करना अत्यंत आवश्यक है। तुम लोग बड़े वीर और पराक्रमी हो, तुम्हारे रोम रोम में राज्य भक्ति का प्रभाव भरा हुआ है। मुझे तुम लोगों की शक्ति पर पूर्ण विश्वास है, किन्तु आज में निश्चय कर लेना चाहता हूं कि कौन ऐसा शूरवीर और पराक्रमी योद्धा मेरे सामने आता है, जो उस दुर्बुद्धि अपराजित को उसके घमंड की सजा दे सकता है ? बोलो तुममे से कौन ऐसा शूरवीर है जो इस कठिन कार्य का बीड़ा उठाने को तैयार होता है, और शीघ्र से शीघ्र उस अपराजित को पराजित कर मेरे सामने लाने का साहस रखता है ? मेरे शूरवीरों में से जो कोई वीर इस कार्य को पूर्ण करेगा वह राज्य का प्रेमपात्र होने के अतिरिक्त इच्छित पुरूस्कार प्राप्त करने का भी अधिकारी होगा।

महाराजा के संदेश को सुनकर शूरवीरों के हृदयों में वीरत्व का संचार होने लगा। उनके प्रत्येक अंग जोश में फड़कने लगे, किन्तु अपराजित की बढ़ी हुई शक्ति के आगे उनकी वीरता का उबाल हृदय में उठकर ही ठंडा पड़ गया, उन सबका उत्साह भंग हो गया।

सामन्तों में किसी एक का भी साहस नहीं हुआ कि जो वीरत्व का बीड़ा उठावें, वे एक दूसरे का मुख देखते हुए मौन रह गए। इसी समय एक सुन्दर कांति वाले सुगठित शरीर युवक ने राजसभा के मध्य में उपस्थित होकर उस बीड़े को उठा लिया। समस्त राज्यसभा आश्चर्य से उस साहसी कांतिवान युवक का मुंह निरीक्षण करने को उत्सुक हो उठी, किन्तु यह क्या ! उन्होंने देखा यह तो द्वारिका के युवराज राजकुमार गजकुमार थे। उनके मुखमंडल से उस समय वीरता की अपूर्व ज्योति प्रकाशित हो रही थी। साहस के अखंड तेज से चमकता हुआ उनका मुखमण्डल दर्शनीय था। कुमार ने बीड़े को उठाकर अपने वीरत्व को प्रदर्शित करते हुए दृढ़ता पूर्वक कहा पिता जी ! आपके प्रताप के सामने वह कायर अपराजित क्या है ? आपके आशीर्वाद से मैं एक क्षण में उसे आपके चरणों में समीप उपस्थित करता हूं। आप आज्ञा प्रदान कीजिए, देखिए आपकी कृपा से वह अपराजित पराजित होकर आपके चरणों में कितना शीघ्र पड़ता है और अपने दुष्कृत्यों के लिए क्षमा याचना करता हुआ नतमस्तक होता है। उसका प्रताप क्षीण होने में अब कोई विलम्ब नहीं है केवल आपकी आज्ञा की ही देरी है।

युवक राजकुमार का ओजस्वी उत्तर सुनकर सामन्तगणों के मुंह नीचे हो गए। उनकी दृष्टि गजकुमार के चमकते मुखमण्डल पर अटक गई। सभी सभासदों के मुंह से निकली हुई धन्य धन्य की ध्वनि से सभामंडल गूंज उठा। महाराजा का हृदय हर्ष से परिपूर्ण हो गया। उन्होंने कुमार की ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि से

देखा फिर उसके साहस की परीक्षा करते हुए बोले-

प्रिय पुत्र ! मैं जानता हूं कि तू वीर और पराक्रमी है, लेकिन तेरी युद्धकला अभी अपरिपक्व है। अपराजित अनेक नरेशों का सैन्य बल पाकर प्रचंड बलशाली हो गया है। जब अनेक रणविजयी सेनापतियों के जोश उसके सामने ठंडे हो रहे हैं तब तेरे जैसे बालक का उसके ऊपर विजय प्राप्त करने जाना नितांत हास्यजनक है। तेरे साहस के लिये धन्यवाद है, किन्तु उसके साथ युद्ध करने का तेरा विचार करना भ्रमजनक है। मैं तुझे युद्ध की इस आग में नहीं डालना चाहता। मैं खुद ही आक्रमण करके उस घमंडी का सिर नीचा करूंगा।

पिता के शब्दों को सुनकर कुमार अपने जोश को नहीं रोक सके। उन्होंने तेजपूर्ण स्वर से कहा- पिताजी ! क्या अल्पवयस्क होने से सिहं पुत्रों का पराक्रम हाथियों के सामने हीन हो सकता है ? क्या वह क्षीण शरीरधारी तेजस्वी सिंहसुत दीर्घ शरीर धारी गजेन्द्र के मस्तक को विदीर्ण नहीं कर डालता ? क्या आप जानते हैं कि छोटा सा अग्निकण बड़े भारी ईंधन के ढ़ेर को एक क्षण में भस्म कर देता हैं ? मै अल्पवयस्क हूं इसी से आप मुझे शक्तिहीन तथा युद्धकला शून्य समझ रहे हैं, लेकिन आपका ऐसा समझना गलत है ! सिंह बालक को कोई युद्धकला नहीं सिखलाता, उसमें तो स्वभावतः हाथियों को पछाडने की शक्ति रहती है। मैं इस युद्ध में अवश्य जाऊंगा , मेरे होते हुए आप युद्ध के लिए जाएं यह हो नहीं सकता, दृढ़ता पूर्वक प्रण करता हूं, यदि आज ही उस दुष्ट अपराजित को पकड़कर आपके चरणों के निकट उपस्थित न कर दूं तो मैं आपका पुत्र नहीं। आज्ञा दीजिए, मेरा समस्त शरीर उस शक्तिहीन अपराजित नामधारी विद्रोही का दमन करने के लिए शीघ्रता से फड़क रहा है।

कुमार हृदय की परीक्षा हो चुकी थी, अब उसके वीरता पूर्ण सत्साहस की प्रशंसा करते हुए महाराज बोले- वत्स ! मैं तुम पर बहुत खुश हूं, तुम जाओ और युद्धकुशल सैनिकों को अपने साथ ले जाकर उस उद्दण्ड अपराजित को पराजित कर अपनी शक्ति का परिचय दो।

सैन्य बल से गर्वित अपराजित उद्दंड बन गया था, वह बड़ी सेना लेकर महाराजा वासुदेव के आधीन एक नगर पर आक्रमण करने को अग्रसर हो रहा था। इसी समय गजकुमार की संरक्षकता में युद्ध करने के लिये सजी हुई एक बड़ी भारी सैना के आने की उसे सूचना मिली।

अपराजित ने अपनी शक्ति का कुछ भी ध्यान न रखते हुए, गजकुमार की सेना पर भीषण वेग से आक्रमण किया। कुमार की सेना पहले से ही सतर्क थी। उसने अपराजित के आक्रमण को विफल करते हुए प्रचण्ड गति से शस्त्र चलाना प्रारंभ किया। कुमार की सेना के अचानक आक्रमण से अपराजित के सैनिक क्षुब्ध होकर पीछे हटने लगे। अपनी सेना को पीछे हटते देख अपराजित के क्रोध की सीमा न रही। वह आगे बढ़कर सेना को उत्साहित करता हुआ कुमार की सेना पर तीव्र वेग से शस्त्रपात करने लगा। गजकुमार ने उसके सामने अपने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से उसके शस्त्र प्रहार को विफल कर दिया। अब

दोनों का आपस में भीषण युद्ध होने लगा। विजय श्री ने कुमार की ओर अपना हाथ बढ़ाया, अपराजित का प्रभाव प्रतिक्षण क्षीण होने लगा। एकाएक गजकुमार ने अपने शस्त्र प्रहार से घायल कर उसे नीचे गिरा दिया और अपने मजबूत बंधन में जकड़ लिया।

अपराजित को पकड़कर कुमार ने महाराज वासुदेव के सामने उपस्थित किया। अपराजित ने विनीत होकर उनका स्वामित्व स्वीकार किया और भविष्य में उनके विरूद्ध सिर न उठाने की प्रतिज्ञा की। महाराज ने उसे क्षमा प्रदान किया और उसका राज्य उसे सौंप दिया।

महाराज, अपने पुत्र की वीरता पर अत्यंत मुग्ध थे। उन्होंने उससे इच्छित वर मांगने को कहाः-

राजकुमार ने कहा-पिताजी ! यदि सचमुच ही आप मुझ पर प्रसन्न है तो मुझे इच्छित वर प्रदान कीजिए। मैं चाहता हूं कि मेरी जो इच्छा हो मैं वही करूं, राज्य की ओर से उसमें कोई बाधा उपस्थित न की जाये। महाराज ने सोचा कि वैभव और ऐश्वर्य का उपभोग के अतिरिक्त कुमार और क्या कर सकेगा ? पिता के हृदय में पुत्र के प्रति कोई शंका नहीं थी। इसलिये उन्होंने प्रसन्न होकर उसे इच्छित वर दे दिया।

(3)

यौवन, वैभव, अविवेकता और प्रभुता इनमें से एक भी पतन के लिये पर्याप्त हैं, किन्तु जहां चारों का समुदाय हो वहां के अनर्थ का क्या कहना ?

प्रभुता प्राप्त होने पर राजपुत्र गजकुमार अपने यौवन के प्रचण्ड वेग को नहीं संभाल सका। उसका हृदय सदाचरण के शिखर से पतित होने लगा। पतन ! ओह ! मनुष्य जब पतन की ओर होता है, जब उसका हृदय वासना की तीव्र तरंगों से, पूर्ण हो जाता है तब वह लोक मर्यादा, धार्मिक श्रृंखला तथा गुरुओं की लल्ला आदि मानव जीवन के सभी उच्च सोपानों को कम्रशः उल्लंघन कर डालता है और पतन की पराकाष्ठा को प्राप्त हो जाता है। वह विचारशून्य हो जाता है। अज्ञान का अंधकार उसके हृदय के विवेक प्रकाश को नष्ट कर देता है और अपने प्रचुर प्रभाव से हृदय -मंदिर को आच्छादित कर लेता है। अनाचार का अकांड तांडव उसके चारों ओर होने लगता है और वह अमानुषिकता के क्रीड़ा में निर्लज्जता पूर्वक नग्न नृत्य करने लगता है।

गजकुमार का पतन हुआ-घोर पतन। वह रात दिन रूप सौन्दर्य और यौवन की उपासना में व्यस्त रहने लगा। ऐसा कोई भी अनाचार नहीं था जो उसने न किया हो।

मनुष्यों की आत्म शक्ति और सच्चरित्रता की परीक्षा उसी समय होती है जब नष्ट कर देने वाले साधन उपस्थित हों। किसी के आत्मबल का परिचय उसी समय प्राप्त हो सकता है जब कि विषय संबंधी संपूर्ण सुंदर पदार्थ उपस्थित होने पर और उनके भोगने की शक्ति होते हुए भी वह अपने को स्थिर रख सके। जब मन और इन्द्रियों पर अपना प्रभाव डालने वाले ऐच्छिक विषय-सामग्रियों की उपलब्धि होने पर भी वह अपने मन को, अपनी इन्द्रियों को संयमित रख सके और अपने को

सच्चरित्रता के सर्वोच्च शिखर पर स्थित रख सके।

वह व्यक्ति जो विषय सामग्री, वैभव आदि के अभाव से बड़े भक्त सच्चरित्र और सदाचारी प्रतीत होते है। आत्म तन्मयता, ईश उपासना, पूजा भक्ति और धर्म की सदैव दुहाई दिया करते हें, अनेक रसों, हरित् पदार्थों तथा अभक्ष्यों के त्यागी बनकर अनेक व्रत उपवास करके शुद्ध आम्नायी बनने का ढोंग रचा करते हैं परन्तु कोई प्रलोभन की वस्तु आती है तो जिनकी सभी बगुला वृत्तियां उड़ जाती हैं। उनका ध्यान, अध्ययन, व्रत, उपासना व्यर्थ है, ढोंग है। थोड़े ही धन वैभव और सुन्दर भोगों के योग जिन्हें विचलित कर देते हैं, जो अपने को तीव्र प्रलोभन से नहीं बचा सकते हैं और उनकी समस्त पूजा, उपासना, संयम और त्याग बालू की भाती है।

गजकुमार युवा था, सुन्दर था, अनंत वैभव का स्वामी था, और उसे राज्य की और से इच्छित अधिकार भी प्राप्त हुये थे। वह सौदर्योपासक बन गया। वह रूप और सौन्दर्य की मदिरा पीकर मन्दोन्मत रहने लगा। उसके प्रबल मदनोन्माद के सामने सती महिलाओं के सतीत्व का कोई महत्व नहीं रहा। कुमारियों की लज्जा का कोई मूल्य नहीं रहा। धर्म मर्यादा का संकोच उसके हृदय से जाता रहा। उसे लोक लज्जा का कोई भय नहीं था। वह राजपुत्र था, उसके हाथ में प्रभुता थी, वह जिस सुन्दरी रमणी को चाहता, इच्छा अथवा अनिच्छापूर्वक बेचारी को उसकी काम लिप्सा पूरी करनी ही पड़ती थी।

धीरे धीरे उसके इस अनाचार की चर्चा लोग करने लगे। पहले तो जनता ने उसके अनाचार की आवाज को बड़े धीमें स्वर से सुना किन्तु अब वह स्वर क्रमशः तीव्र होने लगा। रात्रि दिन के नवीन अत्याचारों से उनका हृदय कांप उठा। कुलकामनियां उसके दर्शन मात्र से व्याकुल होने लगीं। कुलीन नागरिक अपनी युवती कन्याओं और सुन्दरी महिलाओं की धर्म रक्षा के लिये सतर्क रहने लगे, किन्तु मदोन्मत गजेन्द्रकी तरह उन्मत्त हुए युवक राजपुत्र की मदन लिप्सा, विलास वासना और विषय लोलुपता का बेग कुछ भी कम नहीं हुआ। राजपुत्र के अधिकारों के तीव्र आतङ्क के आगे प्रजा के लोग चूं तक नहीं कर सकते थे। किसी ने यदि उसके सामने अपना सिर उठाया तो गजकुमार के दुश्चरित्र मित्र उस पर अनेक आपत्तियों का पहाड़ ढा देते थे। बेचारी जनता मूंक हृदय से उसके राक्षसीय अनाचार को सहन कर रही थी।

(4)

पांसुल सेठ नगर के कुलीन और धनिक नागरिकों में था। नगर में उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। वह बड़ा चतुर, कलाकुशल और सच्चारित पुरुष था। उसकी पत्नी सुन्दरी और नव यौवना थी। प्रकृति ने उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग को बड़ा सुन्दर सुडौल और मोहक बनाया था। वह मधुर भाषिणी और लज्जाशील भी थी। उसके सुन्दर रूप यौवन तथा मोहकता की चर्चा राजकुमार के कानों तक पहुंची तो उसके रूप यौवन पर राजकुमार का मन मचल पड़ा। उसके वियोग में हृदय विकल हो उठा। उसने सोचा, पांसुल

सेठ की सुंदरी रमणी का यदि मैं आलिंगन नही कर सका तो मेरा जीवन व्यर्थ है। उसका सौन्दर्य मेरे द्वार अछूता रह सके यह असंभव है, मुझे प्राप्त करना ही होगा।

दुष्कर्मों की पूर्ति के अनेक साधन अनायास ही मिल जाते हैं। सेवा परोपकार और त्याग के लिए संभव है आपको ढोल पीटने पर भी कोई सहृदय साथी न मिले। लेकिन वेश्या, नृत्य, व्यभिचार, दुर्व्यसन और काम क्रीड़ा के लिए प्राण न्यौछावर करने वाले अनेक मित्र नामधारी शत्रु प्राप्त हो जायेंगे। फिर गजकुमार तो राजपुत्र था, वैभव पूर्ण था, अधिकारयुक्त था। दुराचारी मित्रों को और चाहिए ही क्या ? वह तो किसी धनिक दुराचारी युवक की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न किया ही करते हैं। जहां कोई युवक फंसा कि उनसे पौबारह हुए। राजपुत्र राजकुमार की इच्छा-पूर्ति के लिए उसके अनेक मित्रों ने शर्त लगाई और पांसुल सेठ की सुंदर पत्नी के लाने का बीड़ा उठाया। वे बीड़ा उठाकर ही नहीं रह गए, लेकिन एक दिन वे अपनी कुटिलता और छलबल से उस सुन्दरी रमणी को अपने जाल में फंसा लाए।

बेचारी असहाया अबला ने अपने सतीत्व रक्षण का शक्ति भर प्रयत्न किया लेकिन पापी राजकुमार से रक्षा न पा सकी। पथ-भ्रष्ट विषय मत्त राजकुमार ने उसके पवित्र धर्म का जबरदस्ती अपहरण कर डाला, उसके शील धर्म के किले को चकनाचूर कर दिया। बेचारी अबला अपने पवित्र धर्म को नष्ट हुआ देख अत्यंत दुखित हुई। उसका हृदय आत्मग्लानि से भर गया। लेकिन उद्दण्ड युवक को उसकी करनी का फल देने के लिए वह असमर्थ थी, उसने अपना अपघात करना चाहा लेकिन कुछ सोचकर वह रूकी। उसका हृदय बदले की भावना से जल उठा। गजकुमार के इस दुराचार की कहानी उसने अपने पति को सुनाई। अपने धर्मशीला पत्नि के अपमान से पांसुल सेठ का हृदय जल उठा। वह अत्यंत क्रोधित होकर बदला लेने के लिये गजकुमार के पास जाने को तैयार हुआ। पथ में उसने गजकुमार के आधिपत्य और प्रभाव की ओर विचार किया, तब उसका हृदय अत्यंत निराश हो गया। कुछ समय को बदला लेने की उसकी भावना बदल गई। बदला लेने के लिए वह समय की प्रतीक्षा करने लगा।

(5)

अपने दिव्य ज्ञान की प्रकाशमयी किरणों से मानवो के हृदय कमल विकसित करने वाले भगवान् नेमिनाथ के धर्मतीर्थ का द्वारिका नगरी में आगमन हुआ। नगर की जनता उनका उपदेशामृत पान करने के लिए उमड़ पड़ी। बलभद्र, वासुदेव और अनेक राजागण हर्ष भक्ति और उत्सुकता के साथ भगवान के चरणकमलों की उपासना के लिए उनके धर्मतीर्थ में उपस्थित हुए। सभी ने अनन्य भक्ति से उनकी पूजा की, स्तुति की और उनके महान् गुणों का गान किया। राजपुत्र राजकुमार भी भगवान के समवशरण में उनके दर्शन करने को गया था।

स्वार्थ त्यागी महात्माओं का भाषण पतित से पतित मानव के हृदय में अपना अद्भुत प्रभाव डालता

है, तीव्र पाप-वासनाओं में सदा ही संलग्न रहने वाले व्यक्ति भी एक बार उनकी पवित्र वाणी सुनकर अपनी आत्मा को पावन बना लेते हैं। निर्मल आत्मा पास के व्यक्तियों की आत्मा पर भी अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहता, इतना ही नहीं, वह उनके सभी अनाचारों और पाप तपों को एक क्षण में शीत कर देता है। सच्चरित्रता से शून्य विषय पथ पर विचरण करने वाले स्वार्थी मानवों के कोरे उपदेश, उनकी वाक्यपटुता, शुष्क प्रलाप का मानवों के अंतस्थल पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन सदाचारी सत्कर्तव्य निरत महात्माओं की सीधी सीधी सरल बातें मानव जीवन सुधार देती हैं।

जो पुरुष विषयवासना के प्रगाढ़ आलिंगन में सदा ही व्यस्त रहते हैं, जिनका हृदय स्वार्थ साधनों में हमेशा ही लिप्त रहता है, जो कीर्ति, वैभव अधिकार और सत्ता की ज्वाला में दग्ध होते रहते हें, जो उनका फोनोग्राफ के रेकार्ड की तरह निष्पाण उपदेश, हृदयतल को स्पर्श नहीं कर पाता, कोरी शिक्षा की स्पीचों का फब्बारा छोड़ने वाले ऐसे अधार्मिक पुरुष यदि दूसरों के सुधार की अपेक्षा पहले अपना सुधार करें तो यह कहीं अधिक अच्छा हो। वे दूसरों को विलास, सभ्यता और विदेशीयता का नंगा चित्र दिखलाने की अपेक्षा यदि अपने को ही सभ्य और पवित्र बनायें तो उसका कुछ अधिक मूल्य हो सकता है। दूसरे पुरुषों को धार्मिक, सदाचारी, स्वार्थ त्यागी और शक्तिशाली बनाने का स्वप्न देखने वाले दम्भी मानव यदि स्वयं अपने हृदय कल्मष को प्रक्षालन की चेष्टा करें, वासनाओं के बंधन से निकलने की कोशिश करें , दूसरों का सर्वस्व अपहरण करने वाली तर्क बुद्धि को तिलांजलि दें और जिन बातों के प्रचार करने का वे दम भरते हैं उन पर प्रथम अपने आप अमल करें तो उनके इस मूक त्याग का आदर्श प्रभाव दूसरों पर अधिक पड़ सकता है। स्वयं अपने को स्वार्थ, विषय और प्रलोभनों की कीचड़ से निकालने का उचित उद्योग करना और अपने अन्तः करण का सुधार करना सैकड़ों शुष्क भाषण देने , और कालमों के कालम रोशनाई से रङ्ग देने की अपेक्षा समाज, देश और धर्म के लिए अधिक कल्याणकर होता है।

भगवान् नेमिनाथ पूर्ण आत्म-विजयी, संयमी, सर्वदर्शी और स्वार्थ त्यागी महात्मा थे। उनके हृदय में केवल जग उद्धार की ही भावना थी। वह निस्पृही महात्मा दुखित, संतापित दीन प्राणियों के लिए वत्सल थे। उनकी आत्मा पवित्रता की चरम सीमा को प्राप्त हो चुकी था। उनके दर्शन से हृदय-कुटिल काम विलास और स्वार्थों की आंधी से हटकर स्थिर, शान्त और सुखमय बन जाता था। फिर उनका पवित्र धार्मिक व्याख्यान, दिव्य चरित्र और आत्म विकास का अलौकिक प्रकाश बढ़ने वाली दिव्य वाणी, पतित से पतित का उद्धार करने के लिए मंत्र रूप थी।

युवक गजकुमार ने दिव्य प्रभा से प्रकाशित उनके मुखमंडल को देखा। हृदय को झन झना देने वाले भाषण को सुना। सुनकर एक क्षण को वह उसी में तल्लीन हो गया। उसके नेत्र महात्मा के मुखमंडल पर स्थिर हो गए। चित्र की तरह स्थिर होकर उनके उस अमृतमय उपदेश को एक बार सुना, दो बार सुना और कई बार सुना लेकिन उसे तृप्ति नहीं हुई। काम विकार के पटल से ढके हुए उसके हृदय पर इस

उपदेश का विलक्षण प्रभाव पड़ा। उसके अंतर से मदन मद का तीर्व तम अंधकार बिलीन हो गया। विलास मदिरा का नशा भंग हो गया। पापाचरण का प्रभाव नष्ट हो गया। उसके अंतर के ज्ञान नेत्र खुल गये। उसके अपने किए हुए दुष्कृत्यों पर पश्चाताप हुआ, पूर्व पाप स्मरण से उसका हृदय कांप उठा, पाप का मैल उसके नेत्रों से अश्रुओं के रूप में बह कर पृथ्वी तल को प्रक्षालित करने लगा।

वह विचारने लगा-ओह! काम पिशाच ने मेरी आत्मा पर अपना कितना तीक्ष्ण प्रभाव डाल रक्खा था। उसकी उन्मत्तता में मत्त मुझ पतित को कार्य अकार्य और अपने भविष्य का कुछ भी ध्यान नहीं रहा।

वह मुझे तीव्र प्रलोभनों की मदिरा पिलाकर अनाचार के क्षेत्र में स्वतंत्रता पूर्वक नचा नचाकर अपने सर्व पतन की ओर तीव्र गति से अग्रसर करा रहा था। मैं उसका गुलाम बना हुआ अपनी आत्म सत्ता को बिलकुल भूल गया था। ओह! मेरी आत्मा का इतना घोर पतन! नहीं! अब नहीं होगा। मैं मदन के साम्राज्य को इसी समय नष्ट भ्रष्ट करूंगा। इसकी प्रभुता और इसके गर्व को चूर चूर कर दूंगा। वह उठा, उसने उठकर भगवान् के दिव्य चरणों पर अपने मस्तक को डाल दिया, और गद् गद् कंठ से बोला-भगवन्! मैं महापतित हूं, मैंने सांसारिक विलास वासना में अपना जीवन गंवाकर नष्ट कर डाला है। इतना ही नहीं मैंने उन पाप कृत्यों के पीछे कमर बांध ली थी जिनके कटु फलों का स्मरण कर मेरा हृदय कांप उठता है। प्रभो! आप भक्त वत्सल हैं, दयासागर हैं, मेरा मल धोने के लिये आप ही समर्थ हैं। मुझ पर दया कीजिए और मेरे जैसे पतित को अपनी शरण में लेकर रक्षा कीजिए, आप मेरे आत्म सुधार का मार्ग प्रदर्शित कीजिए।

दयावत्सल भगवान् नेमिनाथ ने गजकुमार के पश्चाताप पूर्ण हृदय का करूण क्रन्दन सुना, वे बोले कुमार! तूने पापों के लिए तीव्र पश्चाताप कर उनके कटु फलों का बहुत कुछ कम कर लिया है। पूर्ण पाप फल को कम करने, उन्हें नष्ट करने और अन्तः करण को सुधारने के लिए प्रायश्चित के अतिरिक्त कोई उत्तम उपाय नहीं है। जिस तरह तेज आंच पाकर मैल जल जाता है उसी तरह पश्चाताप की तीव्र जलन से कठिन से कठिन पापों का फल नष्ट हो जाता है , लेकिन प्रायश्चित हृदय से होना चाहिए। पाप कृत्यों के लिए हृदय में पूर्ण ग्लानि होना चाहिए। कुमार! तू अपने किए हुए भयानक पाप फल से शीघ्र ही सावधान हो गया, यह तेरा शुभोदय समझना चाहिए। अब तेरा आत्मकल्याण होने मे कुछ समय का ही विलम्ब है। तू अपनी आत्मा को अब अधिक खेदित मत कर, आत्मा में अनंत शक्तियाँ है, उसी आत्म-शक्ति के प्रकाश मय पथ पर चलकर तू अपना कल्याण कर।

भक्तवत्सल नेमिनाथ की दयापूर्ण वाणी से युवक गजकुमार को बहुत संतोष मिला। वह प्रसन्न होकर बोला-भगवन्। आपकी मुझ पापात्मा पर यदि इतनी अनुकम्पा है तो मुझे महाव्रतों की दीक्षा दीजिए, जिनसे मैं अपना जीवन सफल कर सकूं।

भगवान ने उसे दया करके साधु दीक्षा प्रदान की। काम तृष्णा में लिप्त हुआ मदोन्मत युवक

राजकुमार नेमिनाथ की पवित्र शरण में आकर एक क्षण में कल्याण के महाक्षेत्र में उतर पड़ा। उसका पाप पंक धुल गया, वह दीक्षा लेकर भयानक वन में तीव्र तपश्चरण करने लगा।

(6)

प्रति हिंसा ! बदला ! आह बदला कितनी भयंकर अग्नि है। ईधन के अभाव होने पर अग्नि शांत हो जाती है। किन्तु प्रतिहिंसा अग्नि ओह ! वह निरन्तर हृदय में तीव्र गति से प्रज्वलित होती रहती है और प्रतिक्षण बढ़ती हुई अपने प्रतिद्वंदी के सर्व नाशकी वाट देखती रहती है।

अपमान ने पांसुल सेठ के हृदय में तीव्र स्थान पा लिया था। वैभव का नष्ट होना मानव किसी तरह सहन कर लेता है। कठिन से कठिन आपत्तियों के समान भी वह अपना हृदय कठोर बना लेता है, महायुद्ध में हंसते हुए अपने प्राणों को न्यौछावर करने में नहीं हिचकता, किंतु अपमान ! अपना थोड़ा भी अपमान वह सहन नहीं कर सकता। अपमान ओह ! अपमान की गुप्त चोट बड़ी भयंकर होती है। वह हृदय में एक ऐसा घाव कर देती है जो कभी नहीं भरता, घाव की वेदना से उसका हृदय सदा ही व्याकुल होता रहता है। कठिन शस्त्र का घाव शीघ्र ही भर जाता है। धन वैभव फिर से मिल जाता है किन्तु अपमान का बदला लिए बिना किसी प्रकार शांत नहीं होता।

उद्दंड युवक गजकुमार द्वारा अपनी पत्नी के अपमान की बात पांसुल सेठ अभी तक नहीं भूला था, उसका वह घाव आज तक उसी तरह हरा भरा था। राज्याधिकार का प्रभाव और राजपुत्र की शक्ति के कारण वह उस समय अपनी पत्नि के सतीत्व हरण के बदले को नहीं चुका सका था। किन्तु जब कभी उसका स्मरण हो आता था, तब क्रोध से उसका मुखमंडल रक्तवर्ण हो जाता था। सारा शरीर कांपने लगता और वह साक्षात् यमराज की तरह प्रतीत होता था, किन्तु अपनी हीन शक्ति को विचार कर उसका क्रोधावेश भंग हो जाता था।

आज अनायास ही वह वन में घूम रहा था, घूमते हुए उसकी दृष्टि ध्यान में मग्न हुए गजकुमार मुनि के नग्न शरीर पर जा पड़ी-उसकी प्रतिहिंसा की अग्नि भड़क उठी। गजकुमार को ध्यानमग्न देखकर क्रोध की सुलगती आग धधक उठी। वह दांतों को मिसमिसाता हुआ क्रोधपूर्ण स्वर से बोला- मायावी ! धूर्त। आज इस तरह तपश्चरण का ढोंग रचे हुए बैठा है। इस अनाचारी पाखण्डी को जरा भी लज्जा नहीं आती ? दुष्ट ने कैसा कपट बना रक्खा है। मुझे आज अपने अपमान का बदला चुकाने का यहां अच्छा अवसर हाथ लगा है।

बगुला महाराज ! ठहरो, तुम्हें इस धूर्तता का कैसा मजा चखाता हूं। ओह ! यह वही महापापी है जिसने अधिकार तथा यौवन के मद में मदोन्मत होकर मेरी पत्नी का ..... यह वही नारकीय राक्षस है। दुष्ट ! पापी ! अनाचारी ! .....

यह कहकर यमराज की तरह भयंकरता को धारण किए हुए उस निर्दय पांसुल ने आत्म चिंतन में मग्न

हुए उन महात्मा राजकुमार के सन्धिस्थानों में बलपूर्वक बड़े-बड़े कीले ठोंक दिए ओर कहा-दुराचारी ! ले उस विषयवासना का मजा चख। मूर्ख ! आज तेरी वह शक्ति कहां गई ? वह अधिकार कहां गया ? वे तेरे दुष्ट साथी आज कहां गये ? जिनके घमण्ड पर तू फूला था अकड़ रहा था। उन्हें तकलीफ देकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसी प्रकार कीले लगे हुए छोड़कर हर्षित हृदय अपने स्थान को चला गया।

(7)

ऋषिराज गजकुमार ने अल्प समय में ही तपश्चरण के प्रभाव से अपनी आत्मा के ऊपर पूर्ण दृढ़ता प्राप्त कर ली थी। उन्होंने जैन तत्वों का पूर्ण तन्यमता से अभ्यास करके अपनी आत्मा को अध्यात्म के रंग में रंग लिया था। वे आत्मानुभव के पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त कर चुके थे। वे सच्चे तपस्वी थे। उन्होंने इस अमानुषिक उपसर्ग को तृण चुभने की तरह भी नहीं समझा, वह बड़ी शांति धैर्य और शीलता के साथ अपने आत्म ध्यान में तन्मय रहे। वास्तव में शारीरिक सुख दुख केवल मन की कल्पना है। जिन मनुष्यों को शरीर से अधिक मोह रहता है, उसी में विशेष तन्मयता रहती है। जो शरीर के पोषण, संरक्षण तथा उसकी सुन्दरता के प्रतिपादन में ही लगे रहते हैं, उसे अपनी वस्तु समझते हैं, वही थोड़ा सा शारीरिक कष्ट होने पर उसे सहन करने के लिये कायर हो जाते हैं, किन्तु योगी, महात्मा शारीरिक क्रियाओं को शरीर को अपने आत्मा से पृथक समझते हैं। वह उसे अपनी वस्तु नहीं समझते। उन्हें उससे पूर्ण निस्पृहता होती है। वे कठिन से कठिन शारीरिक आपत्तियों में और ऐसी तीव्र वेदना में जिसकी कल्पना करते ही कायर मनुष्यों का हृदय भयभीत हो जाता है, अपने आत्म ध्यान से चलित नहीं होते। वह अपने आत्म में जरा भी दुःख का अनुभव नहीं करते।

योगिराज गजकुमार उस घोर उपसर्ग के सामने ध्यान की उत्कटता में तल्लीन रहते हुए अपना देहात्सर्ग किया। परम समाधि के फल से वे अपने नश्वर शरीर को त्यागकर स्वर्गलोक को प्राप्त हुए। वहां वह महान् ऐश्वर्य परिपूर्ण, दिव्य शरीर को धारण कर दीर्घकाल तक उत्तम सुख का उपभोग करेंगे।

महात्माओं का मन दुःसह कष्ट और उपद्रव के अवसर पर अत्यंत स्थिर रहता है। वह वास्तविक तत्त्वज्ञान को प्राप्त हो जाते हैं। तत्त्व ज्ञान की महत्ता का प्रभाव उनकी समस्त आत्मा में विलक्षण रूप से परिपूर्ण रहता है। अस्तु, जिन मानवों को संसार तथा शरीर जनित कठिन दुःखों से बचे रहने की इच्छा है, जो निरंतर आत्म सुख के आनंद में निमग्न रहना चाहते है, जो घोर आपत्ति दुःख तथा उपसर्गों के अवसर पर अपने आपको दृढ़ निश्चल रखना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वह यत्नपूर्वक तत्त्वज्ञान प्राप्ति का उपाय करें, अपने आपको उत्तम ग्रथों के अध्ययन की और आकर्षित करें और व्यर्थ की बातों में, अपनी आत्म शक्ति का अपव्यय न करें ध्यानपूर्वक आत्मतत्त्व का अनुसंधान करें। तभी उन्हें पूर्ण सुख शांति और आत्मशक्ति की प्राप्ति होगी।

पवित्र-हृदय चारुदत्त

(पतित से पावन बनाने वाला महापुरुष)

(1)

मदिरा का प्याला ओठों से लगाते हुए चारुदत्त ने कहा-प्रिये ! तुम कितनी सरल सुन्दरी हो। यदि इस जीवन में तुम्हारा संयोग मुझे न मिला होता तो यह मरूस्थल ही बना रहता। मेरे जीवन को हरा भरा उद्यान बनाने का श्रेय तुम्हें ही है। तुम्हारा प्रेम कितना उन्मादक है। तुम्हारी रूपसुधा का पान करते करते आँखें तृप्त नहीं होतीं। सचमुच ही तुममें एक विचित्र आकर्षण है।

प्रियतम ! आपके लिये इस नगर में मेरी जैसीअनेकों दासियां मिल सकती है, लेकिन यह मेरा सौभाग्य है जो आपने मुझ दासी को अपनाया है। सच कहती हूं, आपके प्रेम ने मुझ पर कितना जादू डाला है। यह बात तब मैं सोचती हूं तो हृदय पागल हो जाता है। सारा संसार पैसे से प्रेम करता है, लेकिन आप जानते हो मेरा प्रेम विक्रय की वस्तु नहीं है। सच्चे प्रेम के बदले में अनंत वैभव का भी कुछ मूल्य नहीं होता। मेरा दरवाजे पर कितने ही वैभवशाली नित्यपति आते हैं, लेकिन मैं उन्हें ठुकरा देती हूं। कितनी घृणा होती है मुझे उन विलासी कीड़ों से ? लेकिन अपने मन को मसोसकर रह जाती हूं। सचमुच ही आपके प्रेम के सामने मैं सारे संसार का प्रेम तुच्छ समझती हूं। प्याले को लबालब भरते हुए बसंत सेना ने कहा।

चंपापुर की उच्च अट्टालिका के सजे सजाए कमरे में यह बातचीत चल रही थी।

यह अट्टालिका नगर की प्रसिद्ध सुन्दरी वेश्या वसंतसेना की थी। चारुदत्त चंपानगरी के प्रसिद्ध श्रेष्ठियों में से था, वह असंख्य वैभव का स्वामी था। उसके घर में पत्नी और माता बस यही दो ही प्राणी थे। बचपन से चारुदत्त संयमी, सदाचारी और पवित्र विचारों का था। उसके पिता का नाम भानुदत्त और माता का नाम सुभद्रा था। भानुदत्त ने अनेक देशों में भ्रमण कर व्यापार द्वारा अमित धन कमाया था। उसके वैभव की कोई कमी नही थी। यदि कोई कमी थी तो यही कि वह निःसंतान था, अनेक प्रयत्नों के बाद बड़ी आयु में उसे पुत्र दर्शन हुए थे, इसलिए पुत्र पर उसे एकांत स्नेह था।

यौवन-सम्पन्न होने पर चारुदत्त का विवाह नगर के प्रसिद्ध श्रेष्ठी सर्वार्थ की सुन्दरी कन्या मित्रवती से हुआ था।

मित्रवती गुणशीला और सुन्दरी थी। लेकिन वह चारुदत्त के विकार शून्य हृदय को अपनी और आकर्षित नहीं कर सकी थी। पति का हृदय जीतने के लिए वह जितने प्रयत्न करती थी सब निष्फल जाते थे। चारुदत्त का हृदय विरक्त साधुओं के संसर्ग और अध्यात्म ग्रंथों के अध्ययन से काम विकार शून्य बन गया था। वासना और इन्द्रिय तृप्ति के लिए उसमें कहीं भी स्थान नहीं था।

माता को चिन्ता थी कि मेरा पुत्र कही इसी तरह संसार से विरक्त रहकर सन्यासी न बन जाय। उसने चारुदत्त के काका रुद्रद्रत्त से यह सब कहा और किसी भी तरह चारुदत्त का हृदय गृहस्थ जीवन की ओर आकर्षित करने की प्रेरणा की।

रूद्रदत्त आचरणहीन व्यक्ति था। नगर की वेश्याओं से उसका बहु संपर्क था वह अपने साथ चारुदत्त को वेश्याओं के निवासस्थान पर ले जाने लगा।

एक दिन वह कलिंगसेना वेश्या के यहां उसे ले गया था, उसकी पुत्री वसंतसेना नृत्य और गानकला में अत्यंत कुशल थी। यौवन का उन्माद उसके सारे शरीर में फूट रहा था । उसका सारा शरीर सुडौल था और उसमें एक विचित्र आकर्षण था।

चारुदत्त युवक, धनी और सुन्दर था। वेश्या को इसके अतिरिक्त और क्या चाहिए था, उसने हृदयहारी नृत्य प्रारंभ किया। उसका आज का नृत्य चारुदत्त के आकर्षण के लिये ही था। अर्द्धमुद्रित नेत्रों से देखती हुई वसंतसेना ने अपना मादक नृत्य समाप्त किया। उसके नृत्य में चारुदत्त के नेत्र और हृदय दोनों आकर्षित हो चुके थे, चारुदत्त का पतन हुआ, वह वेश्या का दास बन गया।

वसंत सेना की अट्टालिका ही उसका निवास स्थान बन गई। पिता के द्वारा उपार्जित अपरिमित धन से वसंतसेना का घर भरा जाने लगा।

उसकी पतिप्राण पत्नि कितनी रोई, उसने कितनी प्रार्थनाएं की लेकिन चारुदत्त के कामुक हृदय ने उनको ठुकरा दिया, माता सुभद्रा आज अपने किए पर पछता रही थी। उसने प्रयत्न किया था, अपने प्रिय पुत्र को गृहस्थ जीवन में फंसाने का, लेकिन परिणाम विपरीत ही निकला। वह गृह-जाल में न फंसकर वेश्या के जाल में फंस गया। चारुदत्त के जीवन के सुनहरे बारह वर्ष वेश्या अरुण अधरों पर लुट गए। उसका धन वेश्या के यौवन पर लुट गया। आज अब वह धनहीन था, उसकी पत्नी के बचे हुए आभूषण भी प्रेमिका के अधर मधु पर बिक चुके थे।

कलिंगसेना ने आज बारह वर्ष के बाद अपनी पुत्री को शिक्षा दी थी। वह बोली-वसंत ! अब तेरा यह वसंत तो पतझड़ बन गया, अब इस सूखे मरुस्थल से क्या आशा है ? अब तो यह निर्धन और कंगाल हो गया है, अब तुझे अपने प्रेम का प्याला इसके मुंह से हटाना होगा, अब तुझे किसी अन्य वैभवशाली की शरण लेनी होगी।

वसंतसेना का माथा आज ठनका था वह कलिंगसेना का जाल समझ गई थी, वसंतसेना को चारुदत्त से अकृत्रिम स्नेह हो गया, वह उसके वैभव पर नहीं किन्तु गुणों पर अपने यौवन का उन्माद न्यौछावर कर चुकी थी। सरल हृदय चारुदत्त को वह धोखा नहीं देना चाहती थी। उसने कांपते हृदय से कहा-मां मेरे प्रेम के संबंध मे तुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं है। चारुदत्त मेरा प्रेमी नहीं किन्तु पति है। वेश्या

होकर भी मैंने उसे पति रूप में ग्रहण किया। उसका हृदय महान है। उसने अपना अपरिमित द्रव्य मेरे यौवन पर नहीं किन्तु निष्कपट प्रेम पर कुर्बान किया, मैं उसके प्रेम से लहराती लतिका को नहीं तोड़ सकती।

मां ने कहा-वसंत ! वेश्या की पुत्री के लिए पति और प्रेम के शब्दों को केवल प्रपंचता के लिए ही अपने मुंह पर लाना होता है, वास्तव में न तो उसे किसी से प्रेम होता है और न कोई उसका पति होता है। वेश्या-पुत्री होकर यह अनहोनी बात तेरे मुंह से आज कैसे निकल रही है ? प्रिय वसंत ! हमारा कार्य ही ऐसा है जिसे विधि ने पैसा पाने के लिए बनाया है, प्रेम के लिए नहीं । यदि हम एक से एक इस तरह प्रेम करें तो हमारा जीवन निर्वाह नहीं हो सकता। मैं तुझसे कहे देती हूं, अब अपने द्वार पर चारुदत्त का आना मैं नहीं देख सकूंगी ।

वसंतसेना ने यह सब सुना था लेकिन उसका हृदय तो चारुदत्त के प्रेम पर बिक चुका था, वह उन्हें इस जीवन में धोखा नहीं दे सकती थीं, जो कुछ वह कर नहीं सकती थी उसे कैसे करती ? जिसके चरणो के निकट बैठकर उसने प्रेम का निश्छल संगीत सुना था, जिसके हृदय पर उसने अपने हृदय को न्यौछावर किया था, जिसके अकपट नेत्रों का आलोक उसने अपने अरुण नेत्रों में झलकाया था, जो सरल स्मृतियां उसके अन्तस्थल पर चित्रित हो चुकी थीं उन्हें वे कैसे भुला सकती थी ? बस प्रेम दान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर सकी।

चारुदत्त अब भी उसी तरह आता था और जाता था। यद्यपि वह निर्धन हो चुका था परंतु वसंतसेना के प्रेम का द्वार उसके लिए आज भी उसी तरह खुला था।

कलिंगसेना अधिक समय तक यह सब न देख सकी, एक रात्रि को जब चारुदत्त, वसंतसेना के साथ गाढ़ निद्रा में सो रहा था, उसने अपने सेवकों के द्वारा उसे उठवाकर घर भेज दिया।

(2)

चारुदत्त के उन्माद नशा आज प्रथम दिन ही टूटा था, आज उसकी पत्नी ने उसके नेत्रों में एक अनोखी ज्योति देखी थी। उसने भी नेत्र भरकर आज अपनी पत्नी के सौन्दर्य का अवलोकन किया था। दोनों के नेत्र एक विचित्र द्विविद्या से भरे हुऐ थे।

चारुदत्त के हृदय पर वसंतसेना के प्रेम का आकर्षण अभी था लेकिन उसकी निर्धनता ने उसे लज्जित कर दिया था। आज अपना अपार द्रव्य खोकर द्रव्य के मूल्य को समझा था।

दुखी माता और पत्नी के निर्धनता से संतापित चारुदत्त के हृदय को स्नेहरस सिंचन किया। उसे अपनी कंगाली खट की, द्रव्योपार्जन की चिंता ने उसके सोये मन को आज जगा दिया था।

पत्नि के पास छले हुए गुप्त धन को लेकर उसने व्यापार की दिशा में प्रवेश किया। उसने द्रव्य कमाने में अपना मन और शरीर दोनो को व्यस्त कर लिया था, लेकिन दुर्भाग्य ने उसका पीछा नहीं छोड़ा था।

लाभ की इच्छा से उसने व्यापार किया था, लेकिन उसमें वह अपना बचा हुआ सारा धन खो बैठा।

चारुदत्त द्रव्य कमाने के लिए पागल हो गया था ? वह अपने पौरुष और साहस की बाजी धन के लिए लगा देना चाहता था। अपने जीवन को भी वह धन के पीछे खतरे में डाल देना चाहता था, उसने ऐसा किया भी।

धन कमाने के लिए अपने कुछ साथियों के साथ वह रत्नद्वीप को चल दिया। मार्ग में जाते हुए उसे तथा उसके साथियों को लुटेरों ने लूट लिया था। चारुदत्त के पास धन नहीं था इसलिये वे उसे अपने साथ पकड़कर ले गए। वे उसको देवी पर बलिदान कर देना चाहते थे, लेकिन उनके सरदार को उसकी युवावस्था और सुन्दरता पर तरस आ गया, उन्होंने उसे एक भयानक जंगल में छोड़ दिया।

जंगल में उसे जक जटाजूट तपस्वी के दर्शन हुए। तपस्वी ने उसे अपनी मोहक बातों के जाल में फंसा ना प्रारंभ किया। वह बोला-युवक ! मालूम पड़ता है, तुम धन की लालसा से ही जंगलों में पर्यटन कर रहे हो, मैं तुम्हें इस चिंता से अभी मुक्त किए देता हूं देखो ! इस जंगल में एक बावड़ी है जिसमें रसायन भरा हुआ है। उस रसायन को प्राप्त कर लेने पर तुम चाहे जितना स्वर्ण उससे तैयार कर सकते हो, लेकिन तुम्हें इसके लिए थोड़ा साहस और दृढ़ता से कार्य लेना होगा, मैं तुम्हें एक रस्से से बांधकर उस वापी में छोड़ दूंगा और तुम्हें एक तूंबी दूंगा, पहले एक तूंबी रसायन तुम्हें मुझे लाकर देना होगी इसके बाद तो वैभव का दरवाजा तुम्हारे लिये खुला ही है, तुम चाहे जितना रसायन अपने लिए ला सकते हो।

द्रव्योपासक सरल-हृदय चारुदत्त तपस्वी की मीठी बातों में आ गया, उसने अपनी स्वीकृति दे दी। तापसी के अब पौवारह थे। वह चारुदत्त को वापी के निकट ले गया और उसके गले में रस्सी बांधकर हाथ में एक तूंबी देकर उसे वापी में उतार दिया।

वापी बहुत गहरी थी, उसमें काफी अंधेरा भी था, नीचे उतर कर उसने ज्यों ही तूंबी की वापी में रस भरने के लिए डाला उसे किसी व्यक्ति के कराहने की आवाज सुनाई दी, भय से उसके होश गुम हो गए। वापी मे पड़े व्यक्ति ने बड़े धैर्य से हाथ हिलाया, वह धीमे स्वर में बोला- अभागे पथिक ! तू कोन है, तेरा दुर्भाग्य तुझे यहां खींचकर लाया है। मैं तेरा हितचिंतक हूं, तूंबी ले जाने के पहले तू मेरी बात सुन ले, इससे तेरा कल्याण होगा।

चारुदत्त वापी में पड़े व्यक्ति की बात ध्यान से सुनने लगा। वह बोला-यह तपस्वी बड़ा दुष्ट है। इसने मुझे तेरी तरह रसायन का लोभ देकर इस वापी में पटका है। एक बार मैंने उसकी तूंबी भरकर उसे दे दी, लेकिन दूसरी बार जबमैं रसायन लेकर रस्से से ऊपर चढ़ रहा था इस निर्दय ने रस्से को बीच में से काट दिया जिससे मैं इस वापी में पड़ा सड़कर अपने जीवन की घड़ियां व्यतीत कर रहा हूं, अब मेरी मृत्यु में कुछ समय ही शेष है इसलिए मैं तुझे चेतावनी देता हूं तू इस दुष्ट के जाल से शीघ्र निकलने का प्रयत्न कर।

चारुदत्त की बुद्धि कूचकर गई थी, वह अपने छुटकारे के लिए कुछ भी नहीं सोच पाता था। उसने वरुण होकर अपिरिचित व्यक्ति से ही इस मृत्यु-मुख से निकलने का मार्ग पूछा-

अपिरिचित ने कहा- चारुदत्त ! तुझे अब यह करना होगा, तू इस तूम्बी को लेकर उस दुष्ट तपस्वी को दे दे और दूसरी बार जब वह तेरे पकड़ने को रस्सी डालेगा तब उसमें इस बड़े पत्थर को जो मैं तुझे दे रहा हूं बांध देना ओर तू इस वापी को उस सीढ़ी पर जो कुछ ऊपर दिख रही है उस पर बैठ जाना, तुझे बंधा देखकर वह दुष्ट तापस रस्सा काट देगा और तेरी जगह यह पत्थर वापी में गिर जायगा। इसके बाद में तुझे वापी से निकलने का उपाय बतलाऊंगा। अब अधिक समय नहीं है, वहीं वह दुष्ट अपनी इस बात को सुन लेगा तो तेरे प्राण बचाना कठिन हो जायगा।

चारुदत्त ने तूम्बी रस से भरकर ऊपर पहुंचा दी, तापसी तूम्बी लेकर प्रसन्न हुआ। दूसरी बार चारुदत्त ने अपने स्थान पर पत्थर बांध दिया, तापसी ने उसे बीच में ही काट दिया। पत्थर बावड़ी में गिरा और चारुदत्त के प्राण बच गए।

चारुदत्त अपने प्राणों को सुरक्षित देख प्रसन्न हुआ, उसने वापी में पड़े व्यक्ति से बाहर निकलने का मार्ग पूछा, अपिरिचित ने कहा-संध्या समय इस वापी का रस पीने के लिए एक बड़ा गोह आता है, आज संध्या को भी वह आयेगा। तुम उसकी पूछ पकड़ कर इस वापिका से निकल जाना, भय मत करना, पूछ मजबूती से पकड़े रहना, गोह की कृपा से तुम वापी से बाहर निकल जाओगे।

अपरिचित व्यक्ति के उपकार को चारुदत्त नहीं भूल सका, वह उसकी सहायता करना चाहता था, लेकिन अपरिचित अब मृत्यु के सन्निकट था, प्रयत्न करके भी वह उसे बाहर न निकाल सकता था, उसने नमोकार मंत्र जाप करने के लिए दिया और उसका महत्व समझाया।

गोह की कृपा से वह अब वापी के बाहर था, लेकिन इस भयानक जंगल में अपना कुछ कर्त्तव्य नहीं सोच सकता था। संध्या समय हो गया था, वह तापसी की दृष्टि से बचना चाहता था, इसलिए वह जंगल में एक ओर बढ़ चला।

वह आगे बढ़ रहा था, इसी समय सौभाग्य से उसे रुद्रदत्त दिखा। रुद्रदत्त द्रव्य कमाने की इच्छा से उस वन से गुजर रहा था, दोनों आपस में मिलें।

रुद्रदत्त ने कहा- चारुदत्त ! सुवर्णद्वीप में सोने का भण्डार है, मैं वहां जाकर स्वर्ण लाना चाहता हूं। यदि तेरी इच्छा हो, मैं तुझे भी साथ ले चलने के लिये तैयार हूं। मार्ग कठिन है, कठिनाइयों का सामना करना होगा। द्रव्य जितनी आसानी से खोया जा सकता है, कमाया नहीं जा सकता। वैभव प्राप्त करने के लिए यमराज का भी सामना करना पड़ता है। यदि तेरी उत्कट लालसा धनिक बनने की है। तो तू मेरे साथ चल। लेकिन तुझे वही करना होगा जो कुछ मैं कहूंगा।

संपत्ति के बिना मनुष्य जीवन का कोई मूल्य नहीं, यह चारुदत्त समझ चुका था। उसने सब कुछ स्वीकार किया।

वे दोनों ऐरावती नदी के उत्तर की ओर गिरकूट को पाकर टंकण देश में पहुंचे। वहां उन दोनों ने दो बकरे खरीदे। दो बकरों पर बैठकर वे पहाड़ पर चढ़कर उसकी चोटी पर पहुंच गए। चोटी पर पहुंच कर नृशंस रुद्रदत बोला-चारु! हमारा अभी अंतिम कार्य शेष है उसे शीघ्र ही समाप्त करना होगा। मैं समझता हूं तेरा करुण हृदय इसे स्वीकार नहीं करना चाहेगा, लेकिन धन प्राप्ति के लिए हमें अपने हृदय के कोमल प्रदेश को कठोरता से भरना होगा। हमें अब इन बकरों का वध करना होगा। और इनकी मशक बनाकर इसके अंदर बैठना पड़ेगा। कुछ देर बाद यहां पर भैरूंड पक्षी आएंगे, वे मांस के लोभ से हमारी माथड़ियों ले उड़ेंगे और हमें सुवर्णद्वीप में पहुंचा देंगे।

रूद्रदत्त ने यह सब कहा और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही उन बेकसूर बकरों के गले पर छुरी चला दी। चारुदत्त का करुण हृदय इस बीभत्स दृश्य से कांप उठा। उसने रुद्रदत्त के हाथ से छुरी छीनना चाहा। लेकिन इसके पहले ही वह दोनों बकरों का वध कर चुका था। रुद्रदत्त के इस काम की चारुदत्त ने भर्त्सना की। हत्या संसार को वैभव पाने की इच्छा नहीं रखती थी। बकरों का करुण क्रन्दन से उसका हृदय घायल हो गया, लेकिन सब प्रयत्न बेकार थे। उसने करुणा करके उन दोनों बकरों के सामने महामंत्र का पाठ किया, बकरों ने मंत्र को बड़ी शांति से सुना, इस कृत्य से उसके घायल हृदय को कुछ संतोष हुआ।

रुद्रदत्त ने दो मांथड़ी बनाई, एक में वह स्वयं बैठा और दूसरी में उसने चारुदत्त से बैठने को आग्रह किया। चारुदत्त किसी तरह भी चमड़ी के उस थैले में बैठने को तैयार नहीं होता था जब उसने उसे जबरदस्ती उसमें ठूंस दिया और उसके मुंह को सीं दिया।

निश्चित समय पर भैंरुंड पक्षी वहां आए। वे उन माथड़ियों को अपनी लंबी और मजबूत चोंच से पकड़कर उन्हें आकाश में ले उड़े, चारुदत्त ने अपने जीवन को कुछ समय के लिए मृत्यु के मुंह में जाते देखा, उसे भय हुआ, क्या पता ये पक्षी निश्चित स्थान में न ले जाकर आकाश मार्ग से कहीं नीचे गिरा दें तो जीवन की खैर नहीं।

पक्षी अपने निश्चित स्थान पर पहुंच गए। सुवर्ण द्वीप में जाकर उन पक्षियों ने माथड़ियों को नीचे रख दिया, वे उसके ऊपर के मांस को भक्षण करना चाहते थे। इसी समय रुद्रदत्त ने तेज छुरी से चीर डाला और बाहर आ गया, चारुदत्त ने भी यही कार्य किया। अब वे सुवर्णद्वीप में थे, सुवर्णद्वीप में उन्होंने इच्छित स्वर्ण प्राप्त किया, उनकी धन प्राप्ति की इच्छा वहां जाकर पूर्ण हो गई थी, अनेक कठिनाइयों के बाद इच्छित वैभव प्राप्त कर वे चम्पापुर को लौट आए।

चारुदत्त अब फिर पहले की तरह अपार सम्पत्ति का स्वामी बन गया था। नगर के श्रेष्ठिमंडल में उसकी वही साख हो गई थी।

अब वह अपने महल में अपनी पत्नि और माता के साथ रहने लगा था। वसंतसेना से उसे अब भी उसी तरह स्नेह था, लेकिन उन्माद का नशा उतर चुका था।

वसंतसेना आज भी चारुदत्त को अपना हृदय न्योछावर करती थी। अपनी मां कलिंगसेना के अनेक प्रयत्न करने पर भी उसने किसी को नहीं चाहा था। उसके हृदय पर चारुदत्त प्रेम की अमिट छाप थी, मानो उसके अंतस्तल पर उसकी छाया-मूर्ति अंकित हो गई हो उसे लगता था।

वैभव के नशे में मत्त अनेक युवक उसके द्वार पर प्रेम-भिक्षा मांगने आए थे। उसकी मधुर मुस्कान पर वे अपना जीवन और धन अर्पित कर देना चाहते थे, लेकिन वसंतसेना तो एक ही रंग में रंगी हुई थी।

राजा का साला वसंतसेना के प्रेम में पागल बन रहा था। वह उसे किसी प्रकार भी अपने वश में करना चाहता था। उसने बसंत को धन का लालच और प्रभुता का भय दिखलाकर अपनी ओर आकर्षित करना चाहा। लेकिन वह वसंतसेना की छाया भी नहीं छू सका, अंत में उसने एक प्रयत्न किया, वह अपने इस प्रयत्न में सफल भी हुआ।

कलिंगसेना अब वसंत पर प्रसन्न न थी। चारुदत्त से अब उसे कुछ नहीं मिलता था, वसंतसेना उससे कुछ नहीं लेती थी। राजा के साले ने कलिंगसेना से मिलकर एक षड्यंत्र रचा।

एक रात्रि को चारुदत्त वसंतसेना से मिलने आया था। रात्रि अधिक हो गई थी, इसलिये वसंत के आग्रह पर उसने आज वहीं शयन करना स्वीकार लिया।

समय देखकर कलिंगदत्त ने अपने साथियों द्वारा वसंतसेना का वध करवा डाला-वसंतसेना ने अपने बचने का काफी प्रयत्न किया। चारुदत्त की निद्रा भी इसी समय खुल गई थी। उसने रक्षा के लिये अपनी जान को खतरे में डाल दिया लेकिन वह उसे बचा नहीं सका।

वेश्या का वध करके कलिंगदत्त अपने साथियों के साथ चला गया था। अब वहां खून के लथ पथ वेश्या और चारुदत्त ही रह गए थे। इसी समय कलिंगदत्त के साथ कुछ राज्य कर्मचारियों ने आकर उसे वसंतसेना की हत्या के अपराध में पकड़ लिया।

वसंतसेना के वध का संवाद नगर निवासियों ने सुना लेकिन यह सुनकर तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, कि वसंतसेना का वध करते हुए नगर के प्रसिद्ध श्रेष्ठि चारुदत्त पकड़े गए हैं।

आज राज्य दरबार में वसंतसेना की हत्या के अपराध में चारुदत्त खड़ा था। कलिंगसेना, कलिंगदत्त और अन्य कुछ व्यक्ति साक्षी के रूप में उपस्थित थे, अपराध स्पष्ट था, इसी समय एक विचित्र घटना हुई।

कलिंग के साथियों ने वसंतसेना का वध कर डाला था लेकिन वह मरी नहीं थी, उसके प्राण अभी शेष थे। कलिंग को यह सब मालूम हो चुका था, इसने भय और उत्पात की आशंका से उसे एक कोठरी में बंद कर दिया।

वसंतसेना उस कोठरी में बंद रहते हुए बाहर के लोगों की आवाज सुनती थी, उसे यह निश्चित रूप से मालूम हो गया था कि मेरा प्रियतम चारुदत्त मेरे वध के अपराध में पकड़ा गया है, उसे यह भी पता लग गया था कि राजा द्वारा आज उसे फांसी का दण्ड दिया जायेगा। उसके प्राण अपने प्रियतम को बचाने के लिये तड़फड़ा उठे, परंतु अपनी असहाय अवस्था को देखकर आत्मा विफल हो रहा था। अंत में एक उपाय उसे सूझा। कोठरी के ऊपर एक खिड़की थी, वह किसी तरह उस स्थान पर पहुंची। अब उसने चिल्लाना प्रारंभ किया, उसकी चिल्लाहट सुनकर एक व्यक्ति उसके निकट आया।

वंसतसेना के गले में एक हार अब भी था। उसने उस हार का लालच देकर उस व्यक्ति से द्वार खोलने को कहा। वह अपने प्रयत्न में सफल हुई, कोठरी का द्वार खुल गया।

वसंतसेना अशक्त थी। न्यायद्वार तक जाने की शक्ति उसमें नहीं थी। लेकिन आज न जाने किसी दैवी शक्ति ने उसके अंदर प्रवेश किया था। आज तो यदि उसे सात समुद्र पार करना हो तो यह पार कर जाती ऐसी शक्ति का आवाहन उसने अपने में किया था।

चारुदत्त को वसंतसेना के वध के अपराध में प्राण दंड दिया जा चुका था। बधिक उसे वध स्थल पर ले जा चुके थे। दर्शक के रूप में चंपापुर की समग्र जनता उसके चारों ओर चित्र लिखित सी खड़ी थी। पत्नि और माता शोक समुद्र में गोते लगा रही थी। फांसी का फंदा गले में अब पड़ा, कि तब निर्दय-हृदय अधिक चारुदत्त के प्राणों को कुछ क्षण का विश्राम ही दे रहे थे। इसी बीच बहुत दूर से हांफती चिल्लाती हुई वसंत सेना दर्शकों को दिखी। वह अब दर्शकों के बिल्कुल निकट आ गई थी। बोलने की शक्ति उसमें नहीं थी, उसने बधिकों को हाथ के इशारे से आगे बढ़ने को रोकते हुए एक क्षण के लिए गहरी सांस ली। फिर उसने बधिकों से आज्ञा के स्वर में कहा-

बधिक ! श्रेष्ठी चारुदत्त के बंधन खोल दो-वह अपराधी नहीं है। मैं बतलाऊंगी अपराधी कौन है। मुझे राजा के सामने ले चलो।

चारों ओर से हर्ष की ध्वनि उठी। राजा को यह सब मालूम हुआ। वह शीघ्र ही वध स्थल पर आया, वसंतसेना ने कलिंगदत्त को अपने प्राण वध का अपराधी सिद्ध किया। चारुदत्त निर्दोष साबित होकर छोड़ दिया गया।

वसंतसेना अब चारुदत्त के कुटुम्ब में सम्मिलित हो गई थी। चारुदत्त की पत्नि ने अपने हृदय के उच्चतम स्थान में जगह दी थी। वह उसने अपने प्राणों से अधिक प्रिय समझने लगी थी, उसके हृदय का द्वेष धुल गया था, पति के सिंहासन पर दोनों का आसन था। किसी को इससे द्वेष नहीं था, अनुताप नहीं था, माता ने अपने प्रेम का प्रसाद दोनों में पुत्र वधुओं की भावनाएं के रूप में बांटा था।

वसंतसेना का स्नेह चारुदत्त पर अब चौगुना बढ़ गया था, लेकिन वह स्नेह वासना का नहीं था,

उसमें कोई कामना नहीं थी, कोई चाह नहीं थी, वह प्रेमोत्सर्ग था, प्रेमोन्माद नहीं। वह प्रेम जीवन के लिए था, विषय के लिये नहीं ।

उसने चारुदत्त के संयोग से अपना जीवन अब सेवा और त्याग की भावनाओं को लेकर निर्माण करना प्रारंभ किया। परोपकार और साधनायें उनके जीवन ध्येय हो गये।

वसंतसेना ने अपने आदर्श जीवन से यह स्पष्ट कर दिया था कि एक वेश्या भी योग्य साधन और सहयोग पाकर अपने आपको उच्च और महान बना सकती है।

समाज जिसे घृणा की वस्तु समझता है, जिन्हें केवल काम पिपासा तृप्ति और अपने मानसिक विनोद का साधन मान लिया है जिसकी ओर समाज की उदार दृष्टि कभी नहीं जाती वही समाज का पतित अंग साधन मिलने पर पावन बन सकता है।

कहते हैं पारस को छूकर पत्थर सोना हो जाता है। पारस पत्थर को सोना तो बना देता है लेकिन पारस नहीं बना पाता।

चारुदत्त वसंतसेना वेश्या के शरीर स्पर्श कर उसे वेश्या जैसे घृणित वर्ग से निकालकर पवित्र गृहस्थ जीवन में ला दिया।

इतना ही नहीं, उसे गृहस्थ जीवन से वह और ऊंचे ले गए। वे उसके जीवन को अत्यंत पवित्र और लोककल्याणकारी बना देना चाहते थे। पवित्रता और लोककल्याण के बीज वसंतसेना के हृदय में उग चुके थे। थोड़ा सा जल सींचने की आवश्यकता थी, इसके लिए उन्हें स्वयं अपना उत्सर्ग करना था। वे अपना उत्सर्ग करने के लिए ऊपर उठे।

एक दिन उनके हृदय की पवित्र भावना अंदर नहीं रह सकी। उन्होंने तपस्वी जीवन बिताने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

वसंतसेना अब वह विलासनी वेश्या नही रह गई थी। उसका हृदय धुल गया था। विलास का कीचड़ उसके अंतर्द्वार से निकल चुका था। उसने चारुदत्त के पवित्र विचारो को जाना।

श्रेष्ठिकपुत्र चारुदत्त और वसंतसेना आज तपस्वी की शरण मे थे। उन्होंने अपने हृदय की कमजोरी को निकाल डाला था। दोनों ने अपने जीवन को साधु चरणों में अर्पण कर दिया था।

⌘⌘⌘

आत्मजयी पार्श्वनाथ

(महान् धर्मप्रचारक जैन तीर्थंकर)

पार्श्वकुमार आज प्रातः काल ही भ्रमण करके अपने साथियों सहित वापस लौटे थे। रास्ते में उन्होंने जटा बढ़ाए और लंगोटी पहने हुए एक साधु को देखा वह अपनी धूनि के लिए एक बड़े भारी लकड़े को फाड़ रहा था। एक ओर उसकी धूनि सुलग रही थी। उसकी जटाएं पैरों तक लटक रही थीं। तमाम शरीर में धूल लगी हुई थी। एक रगी हुई लंगोटी उसके शरीर पर थी, पास ही मृग छाला और चिमटा पड़ा हुआ था। देखने से वह घमंडी मालूम पड़ता था।

पार्श्वकुमार उस तपस्वी के सामने से निकले, उसने अपने सामने से निकलते हुए देखकर उन्हें बुलाया और बड़े घमंड के साथ बोला क्यों जी ! तुम बड़े घमंडी और दुर्विनीत मालूम पड़ते हो।

कुमार ने सरलता से कहाः-कहिए। मैं ने आपका क्या अपमान किया है ?

तपस्वी जरा जोर से बोला-देखो, मैं तुमसे बड़ा हूं तपस्वी हूं इसलिए तुम्हें मुझे नमस्कार करना चाहिए था।

कुमार नम्र होकर बोलेः- बाबा खाली भेष देखकर ही मैं किसी को नमस्कार नहीं करता, गुण देखकर करता हूं।

तपस्वी क्रोधित स्वर से बोलाः- क्यों जी, क्या मुझमें गुण नहीं है ? देखो ! मैं रात दिन कठिन तप करता हूं और बड़ी बड़ी तकलीफों को सहता हूं। मैं बड़ा तपस्वी और महात्मा हूं।

कुमार ने फिर कहाः- अज्ञानता से अपने शरीर को अपने आप दुःख पहुंचाना तप नहीं कहलाता। बड़ी तकलीफें सहन कर लेना भी तप नहीं है। गरीब और निर्धन लोग तो हमेशा ही कठिन से कठिन तकलीफें सहन करते हैं। जानवर भी हमेशा सर्दी गरमी और भूख प्यास को सहते हैं लेकिन वह तप नहीं कहलाता। यह तो आत्म हत्या है।

तापस का क्रोध और भी बढ़ गया। वह बोला-देखो, मैं आग के सामने बैठा हुआ कितना कठिन योग साधना करता हूं।

कुमार उसी तरह फिर बोले-आग के सामने बैठना ही तप नहीं है। इसमें तो अनेक जीवों की हिंसा ही होती है। बाबाजी, ज्ञान के बिना योग साधना नहीं हो सकता, यह तो केवल ढोंग है।

तापस अपने क्रोध को नहीं रोक सका। वह बोलाः-ऐं ! क्या कहा ? मैं योगी नहीं हूं यह सब मेरा ढोंग है ? आग में जीव की हिंसा होती है ? अरे ! तू क्या कह रहा है, चुपचाप तेरी सब बातें सुन रहा हूं, इसलिए तू बोलता जा रहा है। मैं तपस्वी हूं, तू मेरा तनिक भी आदर नहीं करता और उल्टा ज्ञान सिखाता है।

कुमार ने फिर कहाः- बाबाजी, आप इतने नाराज और क्रोधित क्यों होते हैं ? मैं तो बिलकुल सच कह रहा हूं। भस्म लगाने, जटा बढ़ाने, मृगछाला रखने से ही कोई योगी नहीं हो जाता। योगी बनने के लिए ज्ञान वैराग्य और सच्चे त्याग की जरूरत है। केवल कपड़ें त्याग देने से ही कुछ नहीं होता, क्रोध और घमंड का त्याग करने और इच्छाओं का दमन करने से ही मनुष्य योगी कहलाता है।

तापसी क्रोध से जल कर बोलाः- तब क्या मैं तपस्वी नहीं हूं ? मूर्ख ! ... मेरी निंदा कर रहा है। तू छोटा सा बालक मुझ बूढ़े तपस्वी को ज्ञान सिखलाता है।

कुमार ने फिर उत्तर दियाः- बाबाजी, जरा शांत रहिए बड़ा हो या बूढ़ा ज्ञान किसी की जागीर नहीं है। उसे तो जो कोई हासिल करता है वही ज्ञानी कहलाता है। ज्ञान रहित बड़ा बूढ़ा अज्ञानी है और ज्ञान रहित तपस्वी भी अज्ञानी है। परंतु जिसमें ज्ञान हो वह बालक भी ज्ञानी है और वह बड़े से बड़े बूढ़े और तपस्वी को ज्ञान सिखलाता है।

तापसी का धीरज टूट गया, वह बोलाः- तब मैं अज्ञानी हूं और तू ज्ञानवान् ? बच्चे, मुंह संभाल कर नहीं बोलता ? जानता नहीं, मैं साधु हूं अभी चिमटों से तेरा सारा ज्ञान निकाल दूंगा। बड़ा उपदेशक बनकर आया है मेरे सामने ! अभी बोलना भी तो आता नहीं है और ज्ञान की बातें बघार रहा है।

कुमार बड़ी नम्रता से बोलेः- बाबाजी ! आप अज्ञानी नहीं हैं तो आप और क्या हैं ! देखिए, उस लक्कड़ में एक नाग और नागिनी जल रहे हैं और आप मजे से उसे जला रहे हैं। किसी प्राणी की जान जाये उसकी आपको जरा भी परवाह नहीं। यह अज्ञानता नहीं तो और क्या है ?

तापसी-अकड़कर बोला-क्या कहता है मूर्ख बालक ? इस लक्कड़ में नाग और नागिनी जल रहे है ? अरे तू बड़ा ज्ञानी है। अच्छा बतला, इसमें नाग नागिनी कहां जल रहे हैं ?

कुमार बोले- बाबाजी ! आपको इतना भी नहीं मालूम और आप अपने को ज्ञानी और तपस्वी कहते हैं। अच्छा इस काष्ट को फाड़ कर देखिए इसमें नाग नागिनी हैं या नहीं।

तापस ने घमंड से कहा- अगर इसमें नाग नागिनी नहीं निकले तो तेरी दुर्गति बनाऊंगा की तू ही जानेगा।

कुमार ने सरलता से कहा-बाबाजी, मेरी दुर्गति फिर बनाइए, पहले जो बेचारे नाग नागिनी इसमें जल रहे हें उन्हें तो निकालिए। देखिए वे इस जगह जल रहे हैं।

तापस ने क्रोध से अपने कुल्हाड़े को लक्कड़ पर उसी जगह मारा तो उसमें से छटपटाते हुए एक नाग और नागिनी निकल पड़े।

तपस्वी लल्लिज होकर नीचे को मुंह किये अपनी जगह पर खड़ा रह गया।

कुमार पार्श्वनाथ को उस तड़पते हुए नाग के जोड़े पर बड़ी दया आई। वह उनके उपकार की बात

सोचने लगे। उन्होंने फौरन ही उन दोनों को णमोकार महामंत्र सुनाया। मंत्र को सुनने बाद ही नाग नागिनी परलोक को सिधार गए।

फिर पार्श्वकुमार ने तपस्वी को दया का उपदेश दिया और उसे सच्चे योग का रास्ता बतलाकर अपने घर चले गए।

नाग नागनी मरकर उस महामंत्र के प्रभाव से स्वर्गलोक में धरणेन्द्र और पद्मावती नामक देव हुए।

पार्श्वकुमार बनारस के प्रसिद्ध नरेश अश्वसेन के सुपुत्र थे, उनकी विदुषी माता का नाम वामादेवी था।

पार्श्वकुमार बालकपन से ही प्रतिभाशाली और चमत्कृत बुद्धि निधान थे। उनके शरीर में जन्म समय से ही अनेक सुलक्षण थे। वे शक्ति शाली और आकर्षक थे। युवावस्था में उनकी आकर्षण शक्ति और प्रतिभा उन्नति गिरि के शिखर पर पहुंच गई थी। अनेक विद्वान् अपने हृदय की अनेक सामाजिक और धार्मिक युक्तियां सुलझाने उनके पास आया करते थे। उनके प्रभाव और ज्ञान के सामने कठिन से कठिन समस्या एक क्षण में हल हो जाती थी।

उस समय वे एक प्रभावशाली नेता बन गए थे। बनारस और उसके निकट की जनता उनके वाक्यों को वेदवाक्य की तरह मानती थी। सारी जनता के हृदय में उनके प्रति अपूर्व श्रद्धा और भक्ति थी। वह उनकी देवता की तरह पूजा किया करती थी।

पार्श्वकुमार का हृदय सत्य, दया और पवित्र प्रेम में परिपूर्ण था, जनता की सेवा, उनका धर्म और प्रत्येक प्राणी को कष्ट से बचाना उनका कर्त्तव्य था। वे अपने कर्त्तव्यपालन में कभी पीछे नहीं हटते थे। कठिन से कठिन संकट के समय में वे तनिक भी नहीं घबराते थे। उन्हें अपने अनंत आत्मबल पर विश्वास था। उनका संपूर्ण समय जनता की सेवा और आत्मधर्म के अध्ययन में व्यतीत होता था।

राज्यवैभव के लिए हृदय में कोई स्थान नहीं था। भोगों की लालसा उन्हें किंचित् भी नहीं थी। राजपुत्र होने का उन्हें अभिमान नहीं था।

वैभव की छाया में पलने पर भी वह उन्हें छू नहीं सकी थी। राज्यसत्ता का सुनहला स्वप्न उन्हें आकर्षित नहीं कर सकता था।

एक दिन उनका यह सुनहला स्वप्न सदैव के लिए विलीन हो गया। जनता के कल्याण के लिए उन्होंने संपूर्ण वैभव और राज्यसत्ता का त्याग कर दिया। वे सर्वत्यागी बनकर विश्वकल्याण के पवित्र क्षेत्र में उतर पड़े।

पार्श्वकुमार अब तरुण तपस्वी थे। उन्होंने अपने यौवन को त्याग के रास्ते पर डाल दिया था। भोग विलास को लालसा को तपश्चरण की वेदी पर बलिदान कर दिया था। मदन की क्रीड़ाओं को स्थान आत्म त्याग ने ले लिया था। उन्होंने अपनी संपूर्ण इच्छाऐं संपूर्ण साधनाएं आत्म ध्यान में निमग्न कर दी थी।

कमठ उनके अनेक जन्मो का शत्रु था। ध्यान निमग्न पार्श्वनाथ को उसने एक वन में देखा। उसकी पाशविक वृत्तियें उत्तेजित हो उठीं। क्रोध उतावला होता है वह समय नहीं देखना चाहता। कमठ ने उसी समय अपनी संपूर्ण पाशविक शक्तियों का परीक्षण करना चाहा। एक से एक क्रूर वृत्ति पार्श्वनाथ के ऊपर उपसर्ग बनकर आने लगी।

पार्श्वनाथ समर्थ थे, शक्तिशाली थे, उनमे आत्मसामर्थ्य थी। वे कठिन से कठिन यातनाएं सह सकते थे। उन्होंने सब सहन किया। लेकिन एक ओर उनकी कृतज्ञता का किसी पर ऋण था। उसे वह ऋण पूर्ण करना था। वह वे जलते हुए नाग नागनी जिन्होंने पार्श्वकुमार मंत्र पाकर धरणेन्द्र, पद्मावती के दिव्य शरीर को प्राप्त किया था, उन्होंने अपने फणों को फैलाकर योगी पार्श्व के ऊपर घनी छत्रछाया की और मूसलधार मेघ वर्षा की एक बूंद भी उनके शरीर पर नहीं पड़ने दी।

पापी कमठ की क्रूरवृत्तियां पराजित हुई। वह तपस्वी पार्श्व के चरणों पर नत था, गल गया था उसके हृदय का अभिमान।

योगी पार्श्वनाथ ने कैवल्य प्राप्त किया। अपने दिव्यज्ञान से उन्होंने संपूर्ण जगत को देखा और जगत के कल्याण के लिए उन्होंने आजीवन सद्धर्म का प्रचार किया। वे जैनियों के तेइसवें तीर्थंकर थे।

⌘⌘⌘

शीलव्रती सुदर्शन

(एक पत्नि व्रत का आदर्श)

रमणी के रूप में कितनी आकर्षण शक्ति है। यह मानव मन को किस तरह एक दृष्टि डालकर ही आकर्षित करते हैं! मैंने आज तक उसे कहीं नहीं देखा। उससे बातचीत भी नहीं की। केवल एक बार के साधारण दर्शन मात्र से ही मेरा हृदय उसकी ओर इतना क्यों खिंच रहा है ? मेरा शांत मन आज इतना चंचल क्यों हो रहा है ? वह सुन्दर मूर्ति मेरे नेत्रों के सन्मुख खड़ी होकर मेरे मन को क्यों वे। चैन बना रही है ? वह कौन थी ? किसकी कन्या थी ? यह सब जाने बिना ही मेरा हृदय उसके ऊपर क्यों समर्पित हो रहा है।

सुदर्शन का विरक्त हृदय सुलोचना के दर्शन मात्र से ही आज एक दम कराह उठा था।

सुदर्शन-नगर के प्रसिद्ध श्रेष्ठी सागरदत्त का सुपुत्र था। वह युवा हो चुका था। लेकिन उसका विरक्त मन विवाह की ओर अभी तक आकर्षित नहीं हुआ था। माता ने उसकी शादी के लिए अनेक प्रयत्न किए थे कई सुन्दर कन्याओं को वह निर्वाचन क्षेत्र में ला चुकी थी। लेकिन सुदर्शन के मन पर कोई भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकी थी। उसका मन विषय विरक्त अबोध बालक की ही तरह का था।

मित्र उसे अपनी विनोद मंडली में ले जाते थे लेकिन मौन के अतिरिक्त उन्हे सुदर्शन से कुछ नहीं मिलता था। वे उसकी नीरसता से चिंतित थे। लेकिन उनका कोई प्रयत्न सफल नहीं होता था। आज उसके मित्र ने उसे चिंतित देखा था। सुदर्शन की भाव भंगीमा से वह उसके हृद्‌गत विचारो को समझ गया था। उसकी इस बेवसी पर प्रसन्न था वह अपने मन में बोला-मालूम हो गया, आज यह महात्मा किसी सुन्दरी के रूप जाल में फंस गये हैं । मदनदेव का जादू आज इन पर चल गया है इसीलिए आज यह किसी रमणी के रूप के उपासक बने बैठे हैं। मैं तो यह सोच ही रहा था, रमणी के कुटिल कटाक्ष के सामने इनका ज्ञान और विवेक अधिक दिन तक स्थिर नहीं रह सकेगा। आज वह सब प्रत्यक्ष दिख रहा है। वह सुदर्शन के हृदय को टटोलते हुए बोला-मित्र ! आज आप इस प्रकार चिंतित क्यों हो रहे है ? क्या आपके पूजा पाठ में आज कोई अंतराय आ गया है ? अथवा आपके स्वाध्याय में कोई उपसर्ग उपस्थित होगया है ? बतलाइए आपके सिर पर यह चिंता का भूत क्यों सवार है ?

सुदर्शन मानो किसी स्वप्न को देखते हुए जाग उठा हो बोला- ओह ! मित्र आप हैं ? कुछ नहीं, आज मैं बैठा बैठा कुछ यूं ही विचार कर रहा था।

मित्र उसके मन की भावनाओं को कुरेदता हुआ आगे बोला-नहीं, मालूम होता है आज आपके भोजन में अवश्य ही कोई अभक्ष्य पदार्थ आ गया होगा। अथवा आपके सामने किसी ने रमणी पुराण आरंभ कर दिया होगा इसी से आपका हृदय........।

सुदर्शन अपनेहृदय के वेग को स्थिर कर मित्र को आगे बढ़ने से रोकता हुआ बोला-नहीं मित्र ! आप

इतनी अधिक कल्पनाएं क्यों कर रहे हैं ? आज ऐसी कोई बात नहीं हुई है, मैं पूर्ण स्वस्थ हूं, आप मुझे आज इस तरह क्यों बना रहे हैं ?

मित्र ने हंसी का फब्बारा छोड़ते हुए कहा-वाह मित्र ! खूब रहे उलटे चोर कोतवाल को डांटे ! आपने खूब कहा, मैं आपको बना रहा हूं या आप अपने मन का हाल छिपाकर मुझे अंटसंट उत्तर देकर बना रहे हैं। लेकिन याद रखिए जानने वालों से आप मन का हाल नहीं छिपा सकते, छिपाने की आप कितनी ही कोशिश कीजिए सब बेकार होंगी, आपकी आंखें तो साफ साफ उत्तर दे रही हैं कि आज आप किसी खास तरह की चिंता में ग्रस्त हैं।

सुदर्शन कच्चा खिलाड़ी था। उसने प्रेम की चौपड़ का पासा फैंकनें को अभी उठाया ही था। वह अपने मन की उमड़ती भावनाओं को दबा नहीं सका। वे खुलकर बोला-मित्र ! सचमुच आप मेरी अवस्था को जान गए हैं, क्या करूं मन का भेद लाख छिपाने पर भी स्पष्ट हो ही जाता है ओह ! आज मैंने जब से उस सुन्दरी रमणी को देखा है तभी से..

हाँ हाँ, मैं समझ गया। मित्र ने बीच में रोकते हुए कहा-तभी सेआपको संसार से पूर्ण विरक्ति हो गई है। आपका मन घृणा से भर गया है। अब आप किसी रमणी का मुंह भी नहीं देखना चाहेंगे।

नहीं मित्र ! आप तो मुझे अपने मन का हाल ही नहीं कहने देते, सुदर्शन ने बड़ी शीघ्रता से कहा-सुनिए तभी से मेरा हृदय किसी गुप्त वेदना से तड़प रहा है।

मित्र अभी तक विनोद में और रस लेना चाहता था। आश्चर्य प्रकट करता बोला-रे मित्र ! वेदना ! और हृदय में ? क्यों ? क्या उसने आप पर कुछ आघात किया है, आप जैसे सरल और सज्जन व्यक्ति के हृदय पर ? तब तो वह अवश्य ही कोई पाषाण हृदय होगी। देखूं कोई विशेष चोट तो नहीं आई है ?

सुदर्शन का हृदय अब अधीर हो उठा। वह बोला-मित्र पर। अब आप अधिक विनोद को स्थान मत दीजिए। मेरी वेदना को अधिक मत भड़काइए, सचमुच ही मैं उस समय से उसकी मोहनी मूर्ति पर आकर्षित हो गया हूं।

ओह ! मित्र ! क्या कहा ? आप मुग्ध हो गए हैं ? उसकी लक्ष्य-कला पर। बेशक, क्यों न हो, लक्ष्य भी उसने आपके हृदय पर अचूक किया है तब तो आप उसे अवश्य कुछ परितोषक देंगे। देवदत्त का विनोद अंतिम था।

सुदर्शन का हृदय देवदत्त के परिहार से आहत हो चुका था। वह करूण स्वर से बोला-मित्र मेरा हृदय अब उसके वियोग की असह्य वेदना सहन करने के लिए तैयार नहीं । आप हास्य छोड़ियें और मेरी व्यथा नष्ट करने का प्रयत्न कीजिए।

देवदत्त का हास्य अब समाप्त हो चुका था। वह अब एक भुक्त भोगी के स्वर में बोला- सुदर्शन ! मैं तेरे हृदय की व्यथा जो उसी समय समझ गया था जब तू शून्य या चुपचाप बैठा था, मुझे प्रसन्नता है कि तेरे

मन ने योग्य चुनाव किया है। मैं सागरदत्त श्रेष्ठि की सुंदरी कन्या सुलोचना से परिचित हूं। मैं आज बगीचे में होने वाले तुम लोगों के प्रणय को भी पहिचान गया हूं। तेरे अकेले पर ही मदनदेव ने कृपा की है ऐसा नहीं है, सुंदरी सुलोचना पर ही उसकी अनुकंपा हुई है, अब तुम दोनों अपने को शीघ्र ही विवाहबंधन में जकड़ा हुआ देखोगे।

देवदत्त का हृदय आज उछल रहा था। उछलते हुए हृदय से उसने श्रेष्ठी ऋषभदत्त के कमरे में प्रवेश किया। प्रवेश करते ही उसने कहा-पिताजी ! आप इस तरह निरूद्देश्य क्यों बैठे हैं और माता जी से कहां फिर वह कुछ ठहरकर बोला-आइए, माता जी आपको यह सुसंवाद सुनाऊं। अरे ! क्या संवाद सुनाऊं मुझे यह कहना चाहिए। आप शीघ्र ही सुदर्शन के विवाह की तैयारी कीजिए अन्यथा बड़ा अनर्थ हो जायगा।

श्रेष्ठि ऋषभदत्त ने चौंकते हुए कहा-देवदत्त ! सुदर्शन के विवाह की चिंता में तो हम लोग धैर्य ही खो चुके हैं । कितना समझाया, लेकिन वह समझता कहां है।

देवदत्त ने बात को समाप्त करते हुए कहा-पिताजी ! अब वह आज समझ गया है। श्रेष्ठि सागरदत्त की सुन्दरी कन्या सुलोचना पर आज उसका हृदय आकर्षित हो चुका है। मैं यह सुसंवाद सुनाने ही आपके पास आया हूं। आप मुझे इस शुभ कार्य के लिये पारितोषिक दीजिए और शीघ्र की विवाह की तैयारी कीजिए।

श्रेष्ठि सागरदत्त अपनी कन्या के लिए योग्य वर की चिंता में थे इसी समय देवदत्त ने उनसे अपने मित्र के लिये सुलोचना को मांगा। वे इस मांग से प्रसन्न हुए।

सुदर्शन और सुलोचना अब विवाह के पवित्र बंध में बद्ध थे। दोनों के हृदय खिल गये थे। सुदर्शन एक दिन अपने मित्र रूद्रदत्त के घर गया था। रूद्रदत्त की पत्नि विजया ने उसे देखा था तो उसकी निर्दोष सुन्दरता पर मुग्ध हो गई। उसने अपनी सखी अभया पर अपनी चाह प्रकट की। अभया ने उसे समझाने का शक्ति भर प्रयत्न किया, परन्तु सुदर्शन की चाह विजया के हृदय से नहीं निकली। सुदर्शन के विरह में ब्राह्मणी विजया का शरीर दिन पर दिन क्षीण होने लगा। अभया अपनी प्रिय सखी की वेदना नहीं देख सकी और एक दिन उसने सुदर्शन से मिला देने का निश्चल प्रण किया।

रुद्रदत्त आज किसी गांव गया था। अभया ने सुदर्शन के लाने के लिए यह दिन उपयुक्त समझा। वह सुदर्शन के घर जाकर बड़ी घबड़ाहट के साथ बोली- आपके मित्र रूद्रदत्त बीमार होकर पलंग पर पड़े हुए हैं, उनकी वेदना आज बहुत बढ़ रही है। आप चलकर उन्हें शांति देने का प्रयत्न कीजिए।

अभया के हृदय का छल सुदर्शन नहीं जान सका था। उसे अभया की बात पर पूर्ण विश्वास हो गया। वह उसी समय मित्र को देखने के लिए चल दिया।

रूद्रदत्त के घर जाकर उसने देखा, भीतर एक पलंग बिछा हुआ है। उस पर बीमार लेटा हुआ है। अभया ने घर के भीतर ले जाकर सुदर्शन को बीमार के निकट छोड़ दिया।

सुदर्शन ने पलंग पर बैठकर बीमार रुद्रदत्त के शरीर पर हाथ रखा। बीमार के शरीर पर हाथ रखते ही

उसका सारा शरीर झनझना उठा- उसने देखा मित्र रुद्रदत्त के स्थान पर उसकी पत्नी कपिला पड़ी हुई है। वह उसी क्षण पलंग पर से उठकर खड़ा हो गया। विजया उनका हाथ पकड़ कर उन्हें बैठाती हुई बोली- कुमार! आप भागते क्यों है ? मैं कोई अछूत कन्या नहीं हूं जिसे छूते ही आप भागकर दूर खड़े हो गए हैं। मैं आपके मित्र की पत्नी कपिला हूं मैं आज भीषण व्यथा से जल रही हूं क्या आप अपनी मित्र पत्नि पर दया लाकर उसकी रक्षा करेंगे।

सुदर्शन अपना हाथ छुडाकर क्षणभर खड़ा रहा और बोला-मित्र -पत्नि की सहायता करना मेरा कर्त्तव्य है। लेकिन आपकी सखी ने मुझसे कहा था, मेरे मित्र रुद्रदत्त अस्वस्थ हैं, कृपया मुझे बतलाइए वह कहां हैं ?

विजया सुदर्शन के पवित्र नेत्रों पर अपने नेत्र स्थिर करती हुई मधुर स्वर में बोली- मान लीजिए, यदि आपके मित्र की जगह मैं ही पीड़ित हूं तो क्या आप मेरी पीड़ा नष्ट करने का प्रयत्न नहीं करेंगे?

परन्तु मुझे इस तरह विश्वास देकर क्यों बुलाया है ? मित्र रुद्रदत्त कहां है ? क्या आप यह सब बतलायेंगी ? सुदर्शन ने खड़े रहकर ही पूछा।

आप इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं ? आपके मित्र कहां है ? और मैंने आपको क्यों बुलाया है ? यह सब आपको अभी ज्ञात हो जायेगा। आप थोड़ा धैर्य रखकर मेरे पास बैठिये। विजया ने स्नेह मिश्रित स्वर में कहा-

सुदर्शन इस पहेली को शीघ्र सुलझाना चाहता था। एकांत स्थान में अकेली तरूणी के निकट वह ठहरना नहीं चाहता था। वह खड़ा रहकर की बोला-आप मेरे बैठने की चिंता मत कीजिए और मुझे शीघ्र ही यह सब रहस्य समझाने की कृपा कीजिए।

विजया अब पलंग पर से उठ बैठी थी, उसने सुदर्शन के बैठने के लिए एक आसन लाकर रख दिया, फिर वह एक गहरी सांस छोड़कर बोली-कामदेव! आप इस रहस्य को जानना चाहते हैं तो सुनिये-

मैंने उस दिन आपके सुंदर मुखमंडल को देखा था, उस दिन से मेरा हृदय आपके प्रेम में पागल हो गया है। उसी प्रेम के उन्माद ने मेरे मन पर पूर्ण प्रभाव डाल रक्खा है। मैं आपके विरह में व्याकुल हो रही हूं, आप मुझे अपना स्नेह दान देकर मेरी रक्षा कीजिए।

नारी के कपटपूर्ण हृदय को सुदर्शन समझ गया था, अब वहां वह एक क्षण भी नहीं ठहरना चाहता था। वह उठा और उठकर बोला मान्या ! आप मुझे क्षमा कीजिए। आप, मेरे मित्र की पत्नि, मेरी मां स्वरूपा हैं, आपके मुंह से ऐसी अरूचि पूर्ण बातें सुनकर मैं लज्जा से गड़ा जाता हूं मैं ऐसी बातें सुनने के लिए एक क्षण को भी तैयार नहीं हूं। यह कहकर वह जाने का प्रयत्न करने लगा।

विजया हृदया का धैर्य खो चुकी थी। वह अधीर होकर बोली-मदन! एक क्षण ठहरिए। मैं कोई मृत्यु नहीं हूं जो आप मेरे निकट से इस तरह भागने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं आपके चरणों पर पड़ती हूं। एक

क्षण के लिए अपने पाषण हृदय को मृदु बना कर मेरी व्यथा की कहानी सुनिए।

सुदर्शन इस अप्रिय प्रसंग में एक क्षण के लिए भी अपना सहयोग नहीं देना चाहता था। लेकिन कपिला की करुण पुकार सुनकर वह जरा रुक गया और बोला-माताजी ! शीघ्र कहिए, आप अब और क्या कहना चाहती है ? क्योंकि मैं यहां अधिक देर तक नहीं ठहरना चाहता।

विजया ने अपने हृदय का संपूर्ण स्नेह रस निचोरते हुए कहां-

प्रिय मदन ! ऊषा की स्नेहज्वाला में जलती हुई एक अबला को छोडकर चला जाना क्या आपका कर्त्तव्य है ? यह पुरुष हृदय इतना कठोर होता है कि वह नारी के हृदय की वेदना को नहीं समझता ? आपके स्वरूप को देखकर मैं यह नहीं समझ सकी थी कि आप इतने निष्ठुर होंगे। वास्तव में बहुत ही छली ज्ञात होते हें। आप एक बार अपने हृदय की भावनाओं को जगाकर सोचिए। आपके वियोग में मुझ अबला नारी की क्या दशा होगी। थोड़ी कल्पना कीजिए, यदि आपके वियोग को मेरे प्राण नहीं सहन कर सकें और वह कूचकर गये तो यह क्या आपके लिए प्रियकर होगा ? प्रिय, बोलिए ! आप मेरे प्राणों की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझते है अथवा आपके वियोग में उनका चला जाना ठीक है।

सुदर्शन का हृदय उसका प्रलाप सुनकर एक क्षण को कांप उठा- फिर वह अपने हृदय के सद्विवेक को जागृत कर बोला-माता ! आपके विचार सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आप अपने अमूल्य प्राणों को इस तरह मदनदेव के हाथों का खिलौना बनाना चाहती हैं इससे अधिक मूर्खता की बात और क्या होगी ? वास्तव में यदि आपको कामशर ने अपना लक्ष्य बना लिया है और आप उसके बाणों से बेकल हो रही हैं तो आपको पतिव्रत की अवेध्य ढाल की शरण लेना चाहिए फिर मदन आपका कुछ अनिष्ट नहीं कर सकेगा ।

सुदर्शन के विवेक पूर्ण वचनों से कपिला का काम विकार कम नही हुआ। वह उसी स्वर में बोली- प्रियतम ! पतिव्रत की ढाल तो मेरे हाथ से पहले ही टूट चुकी है। अब वह टूटी ढाल मेरी क्या रक्षा कर सकती है ? कामदेव मेरे हृदय के सद्विचार दीपक को पहले ही बुझा चुका है अब उसमें विवेक के लिए स्थान ही कहां रह गया है ? अब तो वहां कामदेव का क्रीड़ा स्थल बन चुका है। आप अब मेरे हृदय में आशुनायक का कार्य कीजिए और प्रेम नाटक की भूमिका को समाप्त कीजिए।

प्रिय, आप इतने शंकित क्यों हो रहे हैं ? आपको यहां भय ही किसका है ? यहां मेरे और आपके अतिरिक्त है ही कौन ? आप इस काम के लिंकुज निर्भय विश्राम कीजिए। आपको यहां स्वर्गीय शांति प्राप्त होगी।

सुदर्शन ने देखा-कपिला अधिक आगे बढ़ चुकी है, अब वह उसे और आगे नहीं बढ़ने देना चाहता। वह बोला-माताजी ! माता का पवित्र हृदय इस तरह अलंक कालिमा से भरने योग्य नहीं है। जो मातृ स्नेह गंगाजल की तरह निर्मल होता है, जिसमें क्षीरनिधि की तरह पवित्रता होती है, जिसकी किरणे

पीयूष के निर्झर की तरह अमृत बहाती है, उसी से आप अपवित्रता ताप और गाल की धारा क्यों बहा रही है ? आप शांत हो पतिव्रत की शरण में आयें और अपने अतः करण को मातृ स्नेह की पवित्र धारा में विलीन कर दें।

कपिला प्रेम में पागल हो रही थी। वह यह कुछ नहीं सुनना चाहती थी। वह आगे बढ़ने से नहीं रूकी, बोली प्रियतम ! उपदेश के इन क्षारकणों से मेरे ज्वलित हृदय को शांत करने का यह असफल प्रयत्न रहने दीजिए। जरा से जर्जरित व्यक्ति के लिये देने योग्य इस थोथे ज्ञान की कहानी आप बंद कीजिए। इस समय तो यौवन की मधुर तरंगों को बढ़ाने दीजिए और मधुर उमंगों के साथ प्रणयधारा को प्रवाहित कीजिए। यौवन, सौन्दर्य, और उन्मत्ता से भरे हुए इस प्याले को ओठों से लगाइए और अपने अपूर्व प्रेम का परिचय दीजिए।

सुदर्शन अब अपने उपदेश का अंतिम उपयोग करना चाहता था, वह बोला-रमणी ! सावधान हो। तू बहुत आगे बढ़ चुकी है। अपने इस निंद्य व्यवहार द्वारा प्रेम के पवित्र नाम को कलंकित मत कर। प्रेम वह स्वर्गीय शब्द है जिसे सुनकर हृदय में पवित्रता की तरंगें उमड़ने लगती हैं। प्रेम वह मंत्र है जिसमें वासना और विलास की भावनाएं नष्ट हो जाती हैं। प्रेम वह अपूर्व वस्तु है जिसके द्वारा मानव ईश्वर के साक्षात् दर्शन कर सुख और शांति के अनंत साम्राज्य को प्राप्त करता है। तू इस पवित्र शब्द का गला मत घोंट। अगर तू प्रेम ही करना चाहती हैतो अपने पवित्र पतिव्रत धर्म से प्रेम कर जो तेरे जीवन को स्वर्गीय बना देगा।

कपिला का मन अभी तक शांत नहीं हुआ था। वह अपने अंतिम शस्त्र का प्रयोग करना चाहती थी। उसने अपने नेत्रों को अधिक मादक बना लिया था। वचनों मे मधु की मधुरता का आव्हान कर लिया था। वह बोली -प्राणेश ! आपके मुंह से धर्म धर्म की बात मैं कई- बार सुन चुकी हूं, लेकिन मैं नही समझती कि धर्म क्या है ? और उससे क्या सुख मिलता है ? कुछ समय को यह मान भी लें कि तरह तरह के कष्ट देकर शरीर को तपाग्नि में तपाकर और प्राप्त सुखों का त्याग कर हम धर्म के द्वारा परलोक में स्वर्ग सुख प्राप्त कर लेंगे, लेकिन आपके उस धर्म के साथ भी तो उसी स्वर्गीय सुख का सवाल लगा हुआ है। फिर परलोक के अप्राप्त सुखों की लालसा में वर्तमान सुख को ठुकरा देना ही क्या धर्म की आपकी व्याख्या है ? तब इस व्याख्या मे आप पर लोक के लिए ही रहने दीजिए। इस लोक के लिए तो इस समय जो कुछ प्राप्त है उसे ग्रहण कीजिए। स्मरण रहे आपके शब्द जाल में वह शक्ति नहीं है जो उन्मत्त रमणी के तर्क के सामने स्थिर रह सके। उसे तो आप अब रहने दीजिए और मुझे अपना आलिंगन देकर मेरे जीवन और यौवन को कृतार्थ कीजिए।

कपिला अपना कथन समाप्त कर आगे बढ़ी, वह सुदर्शन का आलिंगन करना चाहती थी। सुदर्शन ने देखा, जाने का द्वार बंद था। एक क्षण में भारी अनर्थ की आशंका उसे मालूम हुई। उसने देखा ज्ञान से अब काम नहीं चलता है। उसने अब छल का आलम्बन लिया, अपने को पीछे हटाते हुए वह बोला-

थोड़ा सा ठहरिए, आप यह क्या अनर्थ कर रही हैं ? आप सोच रखिए आपको मेरे आलिंगन से कुछ

भी तृप्ति नहीं मिलेगी, केवल पश्चाताप मिलेगा। आप जिस आशा से मुझे ग्रहण करना चाहती है वह आशा आपकी पूर्ण नहीं होगी।

कपिला उत्तेजित होकर बोली- मेरी आशा अवश्य पूर्ण होगी, क्यों नहीं होगी ? आपका आलिंगन मुझे जीवनदान देगा।

सुदर्शन उसी स्वर में बोला- नहीं होगी, कभी नहीं होगी रमणी ! तू जिसे अनंग रस से भरा सुन्दर प्याला समझ रही है उसमें तृप्ति प्रदान करने की जरा भी शक्ति नहीं है। जिसे तू शांति प्रदायक चन्द्रबिंब समझ रही है वह राहु के कठिन ग्रास से ग्रसित है। पुरषत्व विहीन और रति क्रिया क्षीण पुरुष के आलिंगन से तुझे क्या तृप्ति, क्या सुख मिलेगा ? इसमें न तो रतिदान देने की शक्ति है और न मदन की स्फूर्ति है।

कपिला चौककर बोली- हैं ? आप यह क्या कह रहे है ? नहीं मुझे विश्वास नहीं होता, आप यह सब मुझे छलने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं आपकी बात का विश्वास नहीं कर सकती।

सुदर्शन ने अत्यंत विश्वास के स्वर में कहा- आश्चर्य है, तुम्हें मेरे बात पर विश्वास नहीं होता ? तुम्हारी समझ में क्या यह नहीं आता कि जिस रमणी की दिव्य रूप राशि के उन्मत्त लीला विलास ने तीक्ष्ण और कुटिल कटाक्ष पात में स्निग्धता और तृप्ति कर स्पर्श ने देवताओं के हृदय भी विचलित कर दिए। ब्रह्मा के व्रत को भंग कर दिया, विष्णु को अपना दास बना लिया और महर्षियों की तपस्या को नष्ट कर डाला उसका प्रभाव मेरे जैसे साधारण व्यक्ति पर नहीं पड़ता। मेरे पुंसत्वहीन होने के लिए इससे अधिक प्रमाण और क्या चाहिए।

सुदर्शन की बात से कपिला अत्यंत निराश हो चुकी थी। वह पश्चाताप के स्वर में बोली-ओह ! अब मैंने व्यर्थ ही अपने हृदय को कलंकित किया।

सुदर्शन यह सुनने के लिए वहां खड़ा नहीं रहा। वह शीघ्र ही कपिला के घर से बाहर निकल गया।

वसंत ऋतु आई। वसंतोत्सव मनाने के लिए नगर निवासी उन्मत्त होकर उपवन की ओर जाने लगे। सुदर्शन भी अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ वसंतोत्सव मनाने गया था। महारानी अभया भी यह उत्सव मनाने गई थी। उसके साथ विप्र पत्नि कपिला और उसकी अन्य सखियाँ भी थीं।

महारानी अभया ने सुदर्शन के सुन्दर पुत्रों को देखकर अपनी दासी से पूछा- चपला, क्या तू बतला सकेगी यह सरल और पुष्ट बालक किसके हैं ।

चपला ने कहा- महारानी जी ! यह सुन्दर बालक नगर के प्रसिद्ध धनिक श्रेष्ठी सुदर्शन के हैं ।

सुदर्शन के यह बालक हैं , सुनकर कपिला एक दम सिहर उठी, अनायास उसके मुंह से निकल गया- सुदर्शन के बालक ! सुदर्शन तो पुरुषत्व हीन है।

रानी ने कपिला के हृदय की यह सिंहरन देखी, उसके कहे शब्दो को सुना। यह सब उसे अत्यंत रहस्य जनक प्रतीत हुआ। उसने कपिला से यह सब जानना चाहा।

कपिला उत्तेजना में आकर कह तो चुकी थी परन्तु उसे अपनी बात पर बड़ी लज्जा आई, वह कुछ समय को मौन रह गई। फिर बोली- महारानी जी कुछ नहीं मैंने सुदर्शन के संबंध में किसी से यह सुना था।

उसके बोलने के ढंग और लज्जाशील मुंह को देखकर रानी को उसके कहने पर संदेह हो गया, वह बोली- नहीं कपिला, तू अपने हृदय की स्पष्ट बात को मुझसे छुपा रही है, तू सत्य कह, तूने यह कैसे जाना है ?

कपिला अपने हृदय की बात को छुपा नही सकी, उसने अपने ऊपर बीती हुई सारी घटना रानी को कह सुनाई।

कपिला की कहानी सुनकर रानी के हृदय में एक विचित्र आकर्षण हुआ। करुणा और हास्य की धाराएं तीव्र गति से बहने लगी। अपने हृदय में सब भावनाएं लेकर वह वसंतोत्सव से लौटी।

रानी अभया का हृदय आज अत्यंत चंचल हो उठा था। कितने ही प्रयत्नों द्वारा रचाये जाने पर भी अब उसके हृदय की चंचलता नहीं रुक सकी तब उसने अपने हृदय की हलचल को अपनी धाय पंडिता पर प्रकट किया।

पंडिता अत्यंत चतुर और समझदार थी। उसने उसकी इस चंचलता के लिए बहुत धिक्कारा। उसने कहा-बेटी, मैं बचपन से ही तेरे समीप कार्यों की सहायिका रही हूं। जीवन भर तुझे अपने प्रयत्नों द्वारा सुख पहुंचाने का प्रयत्न किया है। लेकिन मैं ऐसे घृणित कार्य की कभी सहायक नहीं बन सकती। तू राजरानी है, तुझे इन पतित कामुक विचारो को अपने हृदय में स्थान नहीं देना चाहिए। सुदर्शन एक पत्नि व्रती और संयमी पुरुष है, उसके प्रति तुझे अपने हृदय में विकार की भावना नहीं भरना चाहिए।

अभया बोली-नहीं मां तुझे आज मेरी प्रतिज्ञा में सहायक बनना ही होगा, कान खोलकर सुन ले। मैंने आज यह निश्चल प्रतिज्ञा की है। जब तक मैं यह सिद्ध नहीं कर दूंगी। कि सुदर्शन की यह प्रतिज्ञा उसका कोरा ढोंग है, यह सब उसकी प्रपंचना मात्र है और जब तक मैं उसे अपनी इस अकृत्रिम रूपराशि के सामने पराजित नहीं कर दूंगी तब तक अन्न, जल ग्रहण नहीं करूंगी ।

पण्डिता आश्चर्य से बोली-बेटी ! मैं जानना चाहती हूं ऐसी अयोग्य प्रतिज्ञा करने का कारण ?

अभया उत्तेजित होकर बोली- तुम कारण जानना चाहती हो, अच्छा सुनो। मैं उसे प्यार करती हूं, मैं उसे चाहतीहूं, मैंअपना जीवन और यौवन उस पर अर्पण कर चुकी हूं, लेकिन यह व्रती है। वह विश्वविजयिनी महिलाओं की शक्ति को नहीं जानता। वह रमणी रूप का निरादर करता है, वह इस स्वर्गीय विलास को अपेक्षा की दृष्टि से देखता है। बस इसीलिए उसके व्रत और उसकी उपेक्षा को पराजित करने के लिए ही मैंने यह प्रतीज्ञा की है।

धाय मां उसकी इस उत्तेजना से घबड़ा उठी, वह उसे शांत करने के उद्देश्य से बोली- बेटी तेरा यह दुर्राग्रह मालूम पड़ता है, तेरी प्रतिष्ठा नष्ट कर देगा। अपना सर्वस्व नष्ट करने की इस तेरी प्रतिज्ञा में मैं थोड़ा सा भी सहयोग नहीं दे सकूंगी, तुझे यह अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी होगी।

रानी ने उसी उत्तेजना के स्वर में कहा- नहीं मां, यह नही होगा। मैं अन्नजल का त्याग कर सकती हूं, अपने प्राणों का मोह भी छोड़ सकती हूं लेकिन यह प्रतिज्ञा नही तोड़ना चाहती। मैंने पूर्ण निश्चय के साथ यह प्रतिज्ञा की है और तू जानती है कि मैं जो निश्चय कर लेती हूं उसे पूरा करके ही छोड़ती हूं। तुझे मेरे निश्चय को सफल बनाना होगा।

अभया के निश्चय के सामने धाय निरुपाय थी। उसे अपने मन के विरुद्ध उसके इस अनुचित कार्य में सहयोग देना पड़ा।

चंपापुर नरेश आज किसी कार्य से अन्यत्र गये हुए थे। रानी आज रात्रि को ही सुदर्शन को अपने महल में बुलाना उचित समझा।

आज चतुर्दशी की रात्रि थी। सुदर्शन एकांत स्थान में आज रात्रि में मौन रहकर आत्मचिंतन किया करता था, पंडिता धाय ने गुप्तद्वार से अपने गुप्तचरों द्वारा महल मे उठा मंगाया। सुदर्शन अपने ध्यान में मग्न था, उसे रानी के इस षड्यंत्र का कुछ भी पता नहीं था।

महल का कमरा, जिसमें सुदर्शन को रक्खा गया था, मादक द्रव्यों से सजा हुआ था। ध्यानस्थ सुदर्शन को उत्तेजित करने के लिए रानी उसके निकट आकर अपने कामोद्गार प्रकट करने लगी। वह बोली-प्रिय कुमार ! आप किसके लिए यह ध्यान लगाये हुए बैठे हैं ? देखिए इस तपस्या से आपको अधिक सेअधिक सुन्दरी देवबालाएं प्राप्त होंगी, लेकिन देवबाला के सौन्दर्य को जीतने वाली यह बाला आपके सामने स्वयं उपस्थित है तब आपको अपने शरीर को कष्ट देने की क्या आवश्यकता है नेत्र खोलकर आप मेरी इस अनिद्यं सौन्दर्य को देखिए। सुनिए, मैं राजरानी हूं। मेरी प्रसन्नता की एक दृष्टि से आप स्वर्गीय वैभव के स्वामी बन सकते हैं। आप अपनी इस मनोहर दृष्टि को इस तरह बंद न कीजिए। इस सौन्दर्य का दर्शन कीजिए।

रानी के प्रलोभन से पूर्ण कामोत्तेजक विचारों को सुनकर सुदर्शन अपने हृदय में सोचने लगा-नारी का यह पतन ! जिसके प्रभाव से वह अखिल ब्रह्माण्ड की पूजनीया देवी बन जाती है जो संसार में मातृत्व की पवित्र प्रतिमा बनती है, जिसके हृदय में मातृस्नेह का सरल सरोवर लहराता है, वही नारी इस तरह प्रचुर पाप की सृष्टि उत्पन्न करने के लिए तैयार हो रही है। पतन की प्रबल आंधी में संसार को बहा देने का प्रयत्न को खोकर इस घृणित मांस पिंड के आगे अपना मस्तक झुका देता है। जिसका अन्तरतम अंनत शक्तियों का केन्द्र है, जो दिव्य गुण रत्नों का समुद्र है वही अपनेको इन नश्वर विषय विलासों का दास बना लेता है। लेकिन यह पतिता रमणी मुझे कुछ भी हानि नहीं पहुंचा सकती। मैं दिव्य आत्मदर्शन में मग्न हूं, इसके मादक प्रहारों का मेरे वज्र हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। मैं उस आत्म प्रकाश में स्थित हूं जहां इसके कामांध हृदय की धाराऐं प्रवेश नहीं कर सकतीं।

सुदर्शन को उसी तरह ध्यान-निमग्न देख अभया अनुनय करती हुई बोली-प्रिय कुमार ! देखिए, कितने समय से मैं प्रेम भिखारिणी आपकी सेवा में खड़ी हूं लेकिन आप इतने निष्ठुर हैं कि मेरी और

दृष्टिपात तक भी नहीं करते। एक बार आप इस रूप के साम्राज्य को देखिए, यह सब आपके चरणों में समर्पित होने के लिए खड़ा है। बस आपकी स्नेह दृष्टि भरकी देर है। आप स्नेह नेत्रों को खोलिए और मुझे संतुष्ट कीजिए।

ध्यानरूप सुदर्शन का हृदय इस समय उच्चकोटि की आत्म भावनाओं में निमग्न हो रहा था। वह अपने ध्यान से थोड़ा सा भी चलित नहीं हुआ। अभया ने उसके हृदय में काम विकार उत्पन्न करने के लिए अनेक चेष्टाएं कीं । लेकिन उसे अपने सब प्रयत्नों में निष्फलता ही प्राप्त हुई। तब अंत में उसने ध्यानस्थ सुदर्शन के कोमल अङ्गों का स्पर्शकर उसे उत्तेजित करने का प्रयत्न किया। इधर रजनी कामिनी उसके इस पाप कृत्य को देखकर भागने की चेष्टा करने लगा। सुदर्शन का ध्यान अब भंग हो चुका था। पराजित रमणी का प्रेम अब कराल क्रोध में परिणत हो गया। बदले की भावना उसके चारों ओर चक्कर काटने लगी, उसने उपाय सोच लिया, अचानक ही वह बड़े जोर से चिल्लाने लगी। कोई दौड़ों, यह दुष्ट। मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहता है। इसी समय उसने अपने वदन की बहुमूल्य साड़ी चीर फाड़ डाली। नखों से अपने बदन को खरोंच डाला और अपना बहुत की बेढंगा रूप बना लिया।

उसकी चिल्लाहट सुनकर द्वारपाल दौड़े आए, उन्होंने सुदर्शन को पकड़कर अपने बंधन में ले लिया।

राजदरबार लगा हुआ था। सुदर्शन अपराधी के रूप में खड़ा था। उस पर राजरानी के सतीत्व हरण का अपराध था। सैनिकों ने उसे राजमहल में एकाकी रानी के समीप पकड़ा था, उसका अपराध स्पष्ट था।

उसे प्राण दंड मिला, जिसे उसने हंसते हुए हृदय से स्वीकृत किया-सुदर्शन को प्राणदंड देने के लिए बधिक उसे शूली की ओर ले गए थे। उन्होंने उसे शूली पर चढ़ाने को खड़ा किया। लेकिन उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। शूली का स्थान सिंहासन ने ले लिया था और सुदर्शन उस पर बैठा हंस रहा था। गगन से हर्षध्वनि हो रही थी और देवगण जय जय शब्द बोलने लगे थे।

बधिक ने यह आश्चर्यजनक घटना देखी। वह राजा के निकट दौड़ा गया और सम्पूर्ण घटना चंपापुर नरेश को सुनाई। उन्होंने आकर इस दैवी चमत्कार को देखा।

रानी का कुत्सिक हृदय भय से भर गया था। उसे अपने कृत्य पर पश्चाताप होने लगा। वह रोती हुई सुदर्शन के चरणों पर गिरी और राजा के सामने सुदर्शन को निर्दोष प्रमाणित करते हुए उसने अपना अपराध स्वीकार किया।

पाप पराजित हुआ और पुण्य की विजय हुई। राजा और प्रजा ने एक पत्नि व्रत के इस प्रभाव को देखा, उनका मस्तक सुदर्शन के पवित्र चरणों पर झुक गया था।

सुदर्शन के अपने आदर्श द्वारा दिखला दिया कि दृढ़व्रती यदि अपने प्रण पर स्थिर रहता है तो उसे संसार की कोई भी शक्ति पराजित नहीं कर सकती। सत्य जिस समय अपने दृढ़ तेज को प्रकाशित करता है उस समय उसकी प्रखर किरणों के सामने असत्य और पाप एक क्षण के लिए भी स्थिर नही रह सकता।

सुकुमार सुकुमाल

(वह इतना सुकुमार था कि दीपक का प्रकाश उसके नेत्र सहन नहीं कर सकते थे। रत्न कम्बल उसके शरीर को चुभता था)

(1)

सुरेन्द्रदत्त के प्रभाव को उज्जैन जानता था। वे नगर के प्रधान धनिको में से थे। उनका वैभव बेसुमार था। यशोभद्रा उनकी पत्नी सुशील और सुंदर थी। दोनों प्रेममग्न थे। धन और यौवन, शक्ति और सुंदरता दोनों के स्वामी थे। सम्मान और यश की उन्हें कमी न थी। वे चरित्रवान ओर संयमी थे-उन्हें सब कुछ प्राप्त था। यदि कुछ कमी थी तो यही कि वे संतान हीन थे। वे सोचा करते थे कि मेरा यह अनंत वैभव किसलिए ? मेरे इस उज्जवल वंश की मर्यादा कौन स्थिर रखेगा ? आह ! मैं अपुत्रवान हूं। यही सब सोचकर वे वेचैन हो उठते और वैभव के उस नंदननिकुंज में एक मूक वेदना कराह उठती।

शरद् के प्रातः काल का समय था, दिशाएं निर्मल और प्रकृति शांत थी। यशोभद्रा प्रकृति की सुन्दर छटा निरीक्षण निमग्न थी। एक सुकुमार बालक-इसी समय उसने देखा। दौड़कर उसने अपने धूल से धूसरित अंगों को माता की गोद में डाल दिया। हृदय की सम्पूर्ण ममता समेट कर मां ने उसके सुकुमार अंगों को झाड़कर उसका चुंबन किया। पुत्र विहीना यशोभद्रा के हृदय को एक गहरी चोट लगी। वह तड़प उठी-आह ! सरल हास्य से भरा हुआ बालक किसका हृदय नहीं चुराता ? दारिद्रता का भयानक कष्ट हृदय की अपार वेदनाएं उसके सरल हास्य में विलीन हो जाती हैं, उसका भोला मुंह अपार शोकसागर में भी स्वर्गीय सुख की तरंगें उत्पन्न करता है, जलता हुआ हृदय लहलहा उठता है उसके स्पर्श से -बालक ! अहा बालक !! कितनी सौभाग्य-शालिनी है वह महिला, जिसकी गोद पुत्ररत्न से भरी हुई है और मैं उस सुख से सर्वथा वंचित हूं। माँ, अहा ! संसार के सभी मधुर रसों के संमिश्रण से इस शब्द की रचना हुई है, वह मधुर शब्द जिससे स्त्री की हृद्तंत्री झंकारित हो उठती है। ओह ! मैं कितनी इतभागिनी हूं। मैं उस सुंदर शब्द सुनने के सौभाग्य से रहित हूं। पत्नी का महत्व पातुलरूप में है, क्या मैं भी उस सौभाग्य को प्राप्त कर सकूंगी ?

वह विचारों की सरिता में बहती गई, अनायास सूर्य की चमकती हुई बाल किरणों ने उसका ध्यान भंग किया। वह उठी, उसने देखा, कि सारा संसार स्वर्णमय बन गया था, उसने स्नान किया और देव मंदिर को चल दी।

द्वार प्रवेश करते ही उसे महात्मा के दर्शन हुए। उसने भक्ति और श्रद्धा से उन्हें प्रणाम किया। महात्मा ने आशीर्वाद दिया। तू सुखी हो। अरे ! यह क्या ? यशोभद्रा के नेत्रों से अश्रुधारा वह चली। महात्मा विचलित हो उठे। बोले-पगली, तू रोती है ?

महात्मा जी ! कहते हुए उसका हृदय करुण हो उठा। वह बोली-योगिराज ! आप सब जानते हैं, कहिए। कब मैं पुत्रवती होऊंगी ? मैं अभागिनी क्या कभी मां शब्द सुन सकूंगी ? बतलाइए क्या मुझे पुत्र-सुख मिलेगा ? महात्मा बोले-बहिन ! शांत हो। संसार में सबको सब कुछ मिलता है, तुझे भी मिलेगा। तेरे पुत्र होगा-ऐसा पुत्र जो अपने उन्नत आदर्श से संसार को चकित कर देगा, जिसकी यशः ध्वनि से संसार गूंज उठेगा, उन्नत मस्तक जिसके चरणों पर लोटेगे जिसकी चरित-चन्द्रिका भूतल पर अपनी उज्जवल किरणें फैलायेंगी ऐसा पुत्र तेरे होगा। किन्तु महात्मा मौन रह गए।

यह सुनकर पुत्र की उत्कट इच्छा रखने वाली यशोभद्रा का हृदय हर्ष से फूल उठा- पर महात्मा के अंतिम शब्द किन्तु को वह समझ न सकी। वह आतुर होकर बोली-महात्मा। कहिए इस किन्तु का क्या मतलब ? इसने मेरे हर्षित हृदय को बेचैन कर दिया है। उसने उस अनंत आनंद के दरवाजे को बंद कर दिया है जिसमें मैं शीघ्र प्रवेश करना चाहती थीं। इस किन्तु की पहेली को शीघ्र हल कीजिए।

महात्मा कुछ सोचकर बोले-बहिन ! तुझे पुत्र रत्न तो प्राप्त होगा किन्तु पुत्र प्राप्ति के साथ ही तुझे पति-वियोग होगा। पुत्र जन्म के समय ही तेरे स्वामी इस संसार की मायाका त्याग कर तपस्वी बन जायेंगे।

यशोभद्रा ने सुना-देखा, महात्मा ध्यानमग्न हो गए हैं। वह उठी, देव-दर्शन किया और हर्ष विवाद के हिंडोले में झूलती हुई अपने घर चल दी।

(2)

काल की चाल नियमित है। संसार के प्राणी जो नहीं बनना चाहते उसे समय बना देता है। जो देखना नहीं चाहते हैं समय अपनी परिवर्तन शक्ति से वही दिखला देता है। समय की गति ने यशोभद्रा के लिए वह अवसर ला दिया जिसके लिए वह अत्यंत उत्सुक थी।

वह अब गर्भवती थी। अपने हर्ष के हिंडोले को वह हौले हौले झुला रही थी, उसका हृदय किसी अभूतपूर्व आशा के प्रकाश से जगमगा रहा था। नगर के उद्यान में कुछ तपस्वी महात्मा पधारे थे। सुरेन्द्रदत्त उनके दर्शन के लोभ को संवरण नहीं कर सके। वे शीघ्र ही उद्यान में पहुंच गए। महात्माओं का उपदेश चल रहा था संसार की नश्वरता का नग्न दिग्दर्शन होरहा था, उपदेश प्रभावशाली था। सुरेन्द्र दत्त के हृदय पर उपदेश ने इतना गहरा रंग जमाया कि वे उसी में रंग गए, घर की सुधि गई। पत्नी के प्रेम का तुफान भंग हुआ और वैभव का नशा उतर गया। अधिक सोचने के लिए उनके पास समय नहीं था। वे उसी समय तपस्वी बन गए।

इधर, उसी समय यशोभद्रा ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। उसके प्रकाश से सारा घर जगमगा उठा। स्वजन हितैषियों के समूह से घर व्याप्त हो गया, मंगल गान होने लगा और याचकों को अभीष्ट वस्तुऐं मिलने लगीं। कैसा आश्चर्य जनक प्रसंग था यह। इधर पुत्र जन्म उधर पति वियोग ! संसार कितना रहस्य मय है ?

सुरेन्द्रदत्त ने पुत्र जन्म का संवाद सुना, पर वे तो उस दुनिया से बहुत दूर चले गये थे। इतनी दूर कि जहां से लौटना ही अब असंभव था।

यशोभद्रा ने भी सुना, पति तपस्वी बन गए हैं। उसे कुछ लगा पर वह तो पुत्र-जन्म के हर्ष में इतनी अधिक मग्न थी कि उसे उस समय कुछ अनुभव ही नहीं हुआ।

शून्यता के अवगुंठन में छिपा हुआ सुरेन्द्रदत्त का प्रांगण आज बालकों की चहल पहल से जाग उठा था, बालकों के समूह से घिरे हुये सुकुमाल को देखकर माता का हृदय उस अकल्पित सुख का अनुभव कर रहा था, जो उसे जीवन में कभी नहीं मिला था। सुकुमाल का शरीर चमकते हुए सोने की तरह था। कीमती वस्त्रों से सजकर जब वह बाल्य चाल से चलता था, तब दर्शकों के नेत्र उसकी ओर वरबस खिंच जाते थे।बालक के सरल और अकृत्रिम स्नेह-सुधा को पीकर मां अपने हृदय को तृप्त करने लगी।

(3)

शंकित हृदय कहीं विश्राम नहीं पाता। कुछ समय से यशोभद्र का हृदय अपने पुत्र की ओर किसी अज्ञात भय से भरा रहता है। बढ़ता हुआ सुकुमाल जब से अपनी लीलाओं से उसे प्रसन्न करने लगा तभी से उसके हृदय की गुप्त आशंका और भी अधिक बड़ने लगी है। पीछे तो वह इतनी भयभीत होने लगी कि अगर घर में उसे सुकुमाल न दिखता तो घबड़ाकर वह पागल सी हो जाती। अंत में उसने एक भावी आशंका से छुटकारा पाने का साधन खोज निकाला। उसने उज्जैयिनी के प्रसिद्ध निमित्तज्ञानी को निमंत्रित किया और अपने पुत्र का भविष्य पूछा। ठीक तरह से विचार करते हुये वह बोला-भद्रे ! तेरा बालक संसार का बड़ा महात्मा होगा। उच्च कोटि के महात्माओं का संत्संग और उपदेश उसे अत्यंत प्रिय होगा, और किसी दिन यह भी होगा कि वह उन महात्माओं के उपदेश और प्रभाव से उस मार्ग पर अग्रसर होगा जो इस संसार से बहुत दूर और बहुत कठिन है।

यशोभद्रा ने निमित्तज्ञानी के शब्दों को सुना और अपने हृदय की वेदना को दबाकर उन्हें विदा किया। फिर वह अपने पुत्र के भविष्य के संबंध में विचार करने लगी मेरी शंकाएं निर्मूल नहीं थी। अच्छा हुआ कि समय रहते मैंने इसका निर्णय कर लिया नहीं तो उस समय जब भविष्य अपने पंजे में मुझे जकड़ लेता तब उसका प्रतिकार कठिन होता। तब क्या मेरा हृदय धन नेत्रतारा-सुकुमार सुकुमाल मेरे अविरल स्नेह सागर को पार कर इस अटूट वैभव के सिंहासन को ठुकरा कर तपस्वी बन जायगा ? इतना कोमल शरीर क्या उस कठिन तपश्चरण के लिए समर्थ हो सकेगा ? सम्भवतः ऐसा ही हो। किन्तु नहीं ! मेरे होते हुए मेरे ही सामने यह तपस्वी नहीं बन सकेगा ? नहीं-कभी नहीं, मैं ऐसा कभी नहीं होने दूंगी। मैं आत्मज्ञान का उसे कभी भान ही न होने दूंगी। विलास की तीक्ष्ण मदिरा से विषय की तीव्र तृष्णा मैं उसका हृदय तृप्त ही नहीं होने दूंगी। मैं ऐसा करूंगी , मैं ऐसे साधन उपस्थित करूंगी कि उसे जीवनभर वैराग्य का गृह-त्याग का स्वप्न ही न आए। वह प्रलोभनाओं के पथ से आगे बढ़ाकर अपने को कहीं ले न जा सके। अब उसे चारों ओर अनन्त ऐश्वर्य का साम्राज्य ही दिखलाई देगा। वासना के गीत गाने वाली सुन्दरियों से वह अपने को घिरा पायेगा। वैराग्य के अंकुरों का छेदन करने वाली बालाएं उसे विलास मदिरा पिलाकर मुग्ध कर देंगी और तरूणी रमणियों का मधुर आलाप ही वह सुन पाएगा। उसे मृदुल हास

विलास और तीक्ष्ण कटाक्षपात ही सब ओर दिखलाई देगा, देखूंगी तब वह इस विस्तृत मोह मंदिर से अपने को किस तरह निकालता है, मायाविनियों के स्नेह बंधन की लीला से वह अपने को कैसे मुक्त करता है ?

हां, और मैं यह प्रबंध भी करूंगी कि जो वैराग्य की प्रतिनिधि हैं , जिनकी आत्मा किसी एक रहस्यमय ध्वनि से प्रतिध्वनित होती रहती है, जो मोहमंदिर से तीव्र निरूद्ध मानवों की हृदयतंत्री को ध्वनित करते है और आत्म सत्ता से भूले हुए मनुष्य के अंतरंग में प्रकाश कि करणें फैलाते हैं, उन महात्माओं का उपदेश उसे दुर्लभ हो जायेगा। उनका प्रत्यक्ष दर्शन तो क्या उनका चित्र भी वह न देख सकेगा । तब फिर मैं देखूंगी उसके हृदय मरुस्थल में वैराग्य की आवाज कैसे प्रवेश करती है ? हां, तब यही करना होगी।

विचारों की उद्दीप्त किरणों ने उसके म्लान मुख मंडल को कुछ समय के लिए चमका दिया। विषाद की रेखाएं विलीन हो गई और वह भविष्य अभूत पूर्व अमृतपान से उछल पड़ी।

(4)

सुकुमाल अब युवक था। बाल्य अवस्था के सरल विनोदों के स्थान में अब योवन का उन्माद नृत्य करने लगा। अपनी स्नेहमयी जननी के अनुपम स्नेह पात्र सुकुमाल रत्नचित्रित सुन्दर प्रसाद में रक्षित रहने लगा। एक नई उमंग ने उसके हृदय को लहरा दिया, सुन्दर शरीर पर यौवन ने एक नई ज्योत्सना छिटका दी थी।

अब वह उस स्थिति में था जहां जीवन के लिए एक नया संदेश प्राप्त होता है और जहां से उस दिव्य संदेश को लेकर युवक संसार के महान कर्त्तव्य क्षेत्र में अवतीर्ण होता है। यह उसकी परीक्षा का समय था। कर्त्तव्य और वासनाओं का यह तुमुल युद्ध था। कर्मक्षेत्र और भोगभूमि के दो प्रशस्त मार्ग थे जिन पर चलने का उसे निर्णय करना था। तरह तरह विलास सामग्रियां उसके सामने मौजूद थी। यशोभद्रा ने उसके सुकुमार हृदय पर वासना का प्रभुत्व जमाने में किसी प्रकार की कमी नहीं की थी। उसे बंधन में मजबूती से जकड़ रखने के लिए उन्मत्त बालाओं का समूह उपस्थित कर दिया गया था। तरुणी सुन्दरियों से वह वेष्टित था। उसके चारों ओर विलास की तरल तरंगे हिलोरे लेने लगीं। जो कुछ मिला उसी में मग्न हो गया। माता द्वारा निर्मित भोगभूमि में उसने अपने को उन्मुक्त छोड़ दिया। वह दिन रात एक आकर्षक स्वप्न-राज्य में मस्त रहने लगा। उसके जीवन का अमूल्य समय एक मायामय श्रृंखला से बद्ध हो गया।

(5)

व्यापारी का रत्नकम्बल महामूल्य होने के कारण कोई ले नहीं रहा था। असल में वह एक रत्न विक्रेता था। मूल्यवान रत्नों का व्यापार करना ही उसका ध्येय था। उसके पास रत्नों के अतिरिक्त एक बहुमूल्य रत्न-कंबल था। अनेक स्थानों पर उस कम्बल के बेचने का उसने प्रयत्न किया परंतु दुर्भाग्य से उसके मूल्य को कोई आंक नहीं सका।

वह निराश होकर उज्जयिनी के महाराजा के निकट आया था। उसने निर्णय कर लिया था किसी भी मूल्य पर वह उसे बेंच देगा। महाराज को उसने कंबल दिखलाया। वास्तव मे वह बहुमूल्य था। कीमती रत्न और मणिएं उसमें जड़ी थीं। सुंदर कारीगरी का वह एक नमूना था किन्तु वह इतना अधिक कीमती था कि महाराज उसे चौथाई कम मूल्य पर भी नहीं खरीदना चाहते थे। व्यापारी इससे अधिक घाटा उठाने में असमर्थ था, वह जा रहा था।

यशोभद्रा को उसके कंबल का पता लगा। उसने उसे अपने भवन पर बुलाया और उसकी इच्छानुसार मनमाना मूल्य देकर अपने पुत्र के लिए उसे खरीद लिया। व्यापारी यशोभद्रा के उदार हृदय की प्रशंसा करता हुआ चला गया। कंबल सुकुमाल के पास भेजा गया किन्तु हाथ में लेते ही उसे वह इतना कठोर लगा कि उसने उसे उसी समय अपने हाथों से हटा दिया। यशोभद्रा ने निराश होकर उसके टुकड़ों से अपनी पुत्रवधुओं के पहरने के लिये सुंदर जूतियां बनवादी।

एक समय सुकुमाल की द्वितीया पत्नि सुन्दरी ज्येष्ठा अपने पैरों को धो रही थी। रत्नवर्ण जूतियां उसके पास ही पड़ीं चमक रही थीं। ऊपर उड़ते हुए एक तीक्ष्ण दृष्टि गृद्ध ने उसे देखा। उसे लगा, यह मांस पिंड है। वह उन्हें लेकर बड़ा परन्तु कुछ दूर जाकर ही उसका भ्रम दूर हो गया। उसे मालूम होगया कि यह उसके काम की चीज नहीं है। उसने उसे नीचे छोड़ दिया। नीचे वेश्या वसंतसेना का भवन था। वह अपनी अट्टालिका पर खड़ी हुई कुछ देख रही थी, अचानक किसी चीज को गिरते देखकर वह चौक पड़ी। उसने उसे उठाकर देखा-अरे ! इतना बहुमूल्य पाद त्राण ! राजरानी के अतिरिक्त यह किसका होगा। उसने सोचा, ओंर वह उन्हें लेकर राज भवन गई।

महाराज को मस्तक झुकाकर वह बहु मूल्य पाद-त्राण उसने उनके सम्मुख रख दिया। महाराज ने देखा कि प्रकाश की सुंदर किरणें उससे निकल रही हैं। देखकर वे आश्चर्य में पड़ गये। इतने बहु मूल्य पाद त्राण किसके होंगे ? मेरे राज्य में इतना सौभाग्य किस महिला को प्राप्त है ? मैं आज ही उस धनिक शिरोमणि का पता लगा लूंगा। उन्होने अपने गुप्तचरों को उसे पाद त्राण के स्वामी का पता लगाने की आज्ञा दी। पता शीघ्र ही लग गया। उन्हें मालूम हो गया कि सेठानी यशोभद्रा की पुत्र वधु की ये पादुकाएं हैं। राजा ने सोचा, इतनी गौरव शालिनी महिला का परिचय मुझे अवश्य होना चाहिए। उन्होंने अपने प्रधानमंत्री द्वारा यशोभद्रा को सूचना भेजी कि मैं आपके पुत्र को देखना चाहता हूं।

यशोभद्रा ने अपने को कृत-कृत समझा। स्वागत का शानदार प्रबन्ध किया गया। महाराज पधारे, बड़े ठाठ से उसका अभिवादन किया गया। अब रत्न-सिंहासन पर बिठलाकर उनकी आरती की गयी। परंतु यह क्या ? राजा ने देखा -सुकुमाल की बड़ी आंखोंसे अश्रुधारा वह रही है। वे बोले-भद्रे ! तेरे पुत्र को यह रोग कब से लग गया है ? उसकी आंखों से ये आंसू क्यों निकल रहे है ?

यशोभद्रा ने देखा कि सचमुच ही लड़के के नेत्रों से जलधारा वह रही है। ओह ? मैं समझी।

वह बोली-महाराज ! सुकुमाल के रात्रि दिन अब तक रत्नद्वीपों के उज्जवल प्रकाश में ही व्यतीत

हुए हैं। इसकी आंखों ने कभी सूर्य के तीक्ष्ण प्रकाश और दीपक की ज्योति के दर्शन नहीं किये। आज दीपक द्वारा आपकी आरती उतारी गई। उसकी तीव्र ज्योति इसके सुकोमल नेत्र सहन नहीं कर सके। इसी से यह आंसूओं की धारा वह रही हैं। सुनकर महाराज चकित रह गये।

भोजन का समय हो गया था। यशोभद्रा ने आग्रह किया- महाराज का भोजन यही हो।

वे उसके आग्रह को टाल न सके। सुकुमाल की भी थाल वहीं आई। वह भी राजा के पास ही खाने बैठा। थाल में परोसे हुए चावलों में से वह एक - एक कण निकाल कर खा रहा था। श्रेष्ठि पुत्र की इस अनभिज्ञता से राजा को आश्चर्य हुआ। वे फिर बोले- भद्रे ! यह तेरा सुकुमाल तो बड़ा भोला है। इसे तो अभी तक यह भी नहीं मालूम कि भोजन कैसे किया जाता है ? तूने इसे क्या शिक्षा दी है ? देख यह इन चावलों में से एक-एक कण निकाल कर खा रहा है।

अब यशोभद्रा को हंसी आए बिना नहीं रही। वह किंचित् मधुर हास्य से बोली-महाराज ! इसमें भी एक रहस्य है। यह बालक खिले कमलों मे बसाए हुए चांवलों का भोजन नित्यप्रति करता है। आज वह कुछ कम थे। उनमें दूसरे चांवल मिला दिये गये थे। इसलिये वह उनमें से कमल पुष्पवासित चांवलों को चुनकर खा रहा है।

वाह ? सुकुमारता की हद हो गई ! सुकुमाल की इस सुकुमारता पर राजा मुग्ध हो गये। उन्होंने प्रसन्न होकर उसे **अवंती सुकुमार** का पद प्रदान किया।

भोजन पश्चात् राजा यशोभद्रा के विशाल भवन का निरीक्षण करते हुए अंधकार से व्याप्त एक तहखाने के निकट पहुंचे। उसमें नीचे उतरने के लिये छोटी और सुंदर सीढ़ियां थीं। प्रकाश की सहायता से उन्होंने देखा, असंख्य रत्न उसमें बिखरे पड़े थे। इतनी धनराशी देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। यशोभद्रा ने बहुमूल्य रत्न उन्हें भेंट किये। महाराज यशोभद्रा की उदारता और सुकुमाल की सुकुमारता पर विचार करते अपने प्रासाद में पहुंचे।

(6)

साधु महात्मा देश के प्रत्येक स्थान पर स्वतंत्रता से विचरण करते हैं । उन्हें कोई बंधन नहीं -उन्हें किसी से आशा नहीं। वे अपने लिए किसी प्रकार की सहायता के इच्छुक नहीं। आत्मरस, मस्त, निर्द्वन्द वे महात्मा उन्मुक्तभाव से चाहे जहां अपने शरीर को डाल देते हैं। वे केवल वर्षा के चार मास किसी एक स्थान पर ही व्यतीत करते हैं ।

वर्षा का सुहाना समय आ गया। रिमझिम का मधुर शब्द अमृत ढ़ालने लगा। पपीहा की पुकार प्रारंभ हो गयी। अंबर अनेक प्रकार के वस्त्र बदलने लगा और मेघ पृथ्वी को प्लावित करने लगे। तपस्वी गणधराचार्य अपना चातुर्मास उज्जयिनी में करना निश्चित किया। यशोभद्रा के महल के पास ही एक सुन्दर उद्यान था। योग साधन के लिए उन्होने उसे उपयुक्त समझा। वे वहीं ठहर गये।

यशोभद्रा को मालूम हुआ कि मेरे महल के निकट ही किसी महात्मा ने आसन जमाया है। वह सब कुछ

छोड़कर उनके पास गई। यद्यपि वह समझती थी कि महात्माओं का निश्चय वज्र की एक सुदृढ़ दीवाल की तरह अचल होता है। किन्तु फिर भी उसने प्रयत्न किया वह बड़ी भक्ति से करुण स्वर में बोली- महात्मा जी ! मैं रोक तो नहीं सकती पर एक प्रार्थना करती हूं। आप यदि इस दासी पर दया करें तो इस स्थान को बदल लीजिए। इस राज्य में आपके लिए सुन्दर से सुन्दर स्थान मौजूद हैं। आप उचित समझें तो उनमें से किसी अन्य एक स्थान चुन लीजिए। महात्मा शान्ति राज्य को स्थापित करते हुए बोले-भद्रे ! मेरा स्थान तो निश्चित हो गया। यह असंभव है कि मैं स्थान बदलूं। तू कह, तेरा मतलब क्या है ?

हृदय की समस्त वेदना समेटकर यशोभद्र बोली-महात्मा जी ! मैं क्या कहूं ? आपने निश्चय ही कर लिया है। खैर, आप तो जानते ही हैं, मेरा एकलौता पुत्र है, मैंने उसे कितने दृढ़ बंधनों से जकड़ रखा है। आप ही उन बंधनों को खोलने में समर्थ है, बस मैं अब आप से ही यही वरदान चाहती हूं कि आप अपने चातुर्मास के समय में इस प्रकार उपदेश न दें जो उसके कानों तक पहुंच सके और मेरे बसाए स्वप्न-राज्य में छिन्न भिन्न कर दे।

साधु दयार्द्र होकर बोले-भद्रे ! मैं तेरा मतलब समझ गया। अपने हृदय से व्यर्थ चिन्ताएं निकाल दें। मेरे चातुर्मास तक यह न होगा। महात्मा के वचन मिल जाने पर उसके सिर से चिन्ता का भार कुछ कम हुआ।

(7)

महात्मा का चातुर्मास समाप्त हो गया, आज उनके उज्जयिनी से विहार करने का दिन था। सबेरे चार बजे का समय था। वे पाठ कर रहे थे। उनका स्वर आज कुछ ऊंचा हो गया था। देवताओं के वैभव का वर्णन था। एक आवाज सुकुमाल के कानों तक पहुंची। वह पूर्व स्मृति के तार झनझना उठे। किसी ने उसे जगा दिया। वह बोल उठा- अरे ! मैं आज यह क्या सुन रहा हूं ? स्वर और ऊंचा हो गया। पूर्वजन्म की उसकी स्मृति जागृत हो उठी। यह तो मेरे ही पूर्व वैभव वर्णन है। अरे मैं क्या था और आज क्या हूं ? वे विलास के दिन किस तरह चले गये। वे सुखद स्मृतियां आज मेरे अंतरपट पर कुछ मीठी मीठी थपकियां दे रही हैं । तब क्या उसी तरह यह भी नष्ट हो जायेगा। जाऊं उनसे ही मालूम करूं।

वह उठा-रात्रि कुछ उपशेष थी। शून्यगति से ही महल से नीचे उतरा और सीधे महात्मा के पास चला गया। आज उसके लिए कोई प्रतिबंध नहीं था। यदि होता भी तो वह उसे कुचल डालता। उनकी मनोभावना आज अत्यंत प्रबल हो उठी थी। जाकर महात्मा को प्रणाम किया। बोला-महात्मा ! हां आगे और कहिये मेरा वह साम्राज्य तो गया- यह साम्राज्य मेरा अब कब तक स्थिर रहेगा ?

महात्मा बोले- पुत्र तू ठीक समय पर आ गया, बस अब थोड़ा ही समय शेष है। मुझे हर्ष है। तू आ तो गया। तेरी उम्र के बस अब तीन ही दिन बाकी हैं । तुझे जो कुछ करना हो इतने समय में ही अपना सब कुछ कर डाल।

सुकुमाल ने सुना- परदा उलट गया था। अब उसे कुछ दूसरा ही दृश्य दिख रहा था। खुल गये थे उसके हृदय कपाट। उसे कुछ अपना बोध होने लगा। साधु फिर बोले-मानव की महत्ता केवल विश्व

वैभव एकत्रित करने में नहीं है। अनंत वैभव का स्वामी बनकर ही वह सब कुछ नहीं बन जाता। वास्तविक महत्त तो त्याग में है- निर्मम होकर सर्वस्व दान में ही जीवन का रहस्य है। स्वामी तो प्रत्येक व्यक्ति बन सकता है। ज्ञान, शून्य, हिसंक और व्यसन-व्यस्त व्यक्ति भी वैभव के सर्वोच्च शिखर पर आसीन हो सकते हैं। किन्तु त्यागी बिरले ही होते हैं। वे सर्वस्व त्याग कर सब कुछ देकर भी उस अकाल्पनिक सुख का अनुभव करते हैं जिसका अंश भी रागी प्राप्त नहीं कर सकता।

सुकुमाल आगे और अधिक नहीं सुन सका। बोला महात्मन्! अधिक मत कहिये मैं अब सुन न सकूंगा मैं लज्जा से मरा जाता हूं। मैंने आज तक अपने को नहीं समझा। ओह! कितना जीवन मेरा व्यर्थ गया! अब नहीं खोना चाहता। एक एक पल मैं अपने उस विषयी जीवन के प्रायश्चित में लगाऊंगा। मुझे आप दीक्षा दीजिए। अभी इसी समय मुझे आप अपने चरणों में डाल लीजिए।

साधु ने दीक्षा दी। सुकुमाल का सुकुमार हृदय आज कठोर पत्थर बन गया।

लड़ाई के भंयकर मैदान में शत्रुओं को विजित कर देना वीरता अवश्य कहलायगी। भयंकर गर्जना और चमकते हुए नेत्रों से मनुष्यों को भयभीत कर देने वाले सिंह के पंजों से खेलना आश्चर्यजनक अवश्य है। अरुण नेत्रों वाले काले नाग को नचाने में भी बहादुरी है किन्तु यह सब भोले संसार को बहकाने के साधन हैं। कोई भी व्यक्ति इनसे आत्मसंतोष प्राप्त नहीं कर सकता। वह वीरता और चातुर्य स्थायी विजय प्राप्त नहीं करता। बड़े-बड़े बहादुरों पर विजय प्राप्त करने वाले बादशाह भी अंत में इस दुनिया से विजित होकर गये हैं, हां! अपने आप पर विजय पाना वास्तविक वीरता है। प्रलोभनों की घुड़दौड़ में आगेबढ़ने वाले मन पर वासना की रंगभूमि में नृत्य करने वाली इन्द्रियों पर काबू उन्हें अपना गुलाम बनाने में ही स्वामित्व का रहस्य है।

साधु, तपस्वी, त्यागी शब्द जितने ही महत्वपूर्ण हैं उन्हें प्राप्त करने के लिए उतनी ही साधना, तपस्या और त्याग की आवश्यकता है। केवल मात्र नग्न रहने अथवा गेरुए वस्त्र धारण कर लेने से ही वह पद प्राप्त नहीं हो जाता है। जब तक वह अपनी कामनाओं और लालसाओं पर विजय प्राप्त नहीं कर लेता, उसकी इच्छाएं मर नहीं जातीं तब तक तो केवल ढोंगमात्र ही है। वे व्यक्ति जो अपने ग्रहस्थ जीवन को ही सफल नहीं बना सके, साधनों के प्राप्त होते भी जो अपने को अग्रसर नहीं कर सके और गृहस्थ जीवन की कक्षा मे अनुत्तीर्ण होकर यश, सम्मान और इच्छाओं की लालसाओं से आकर्षित होकर अपनी अकर्मण्यता को ढ़कने के लिए तपस्वी या महात्मा का स्वांग रचते हैं और भोले संसार को ठगने के लिये तरह तरह के माया जाल रचते हैं वे तपस्वी नहीं आत्म वंचक है। वेअपने को ईश्वर का प्रतिनिधि बतलाने वाले तीव्र प्रतारणा के पात्र हैं, आडंबर की ओट में अपने छिद्र को ढकने वाले उन व्यक्तियों से शांति और साधना सहस्त्रों कोस दूर भागती है। उनका अस्तित्व न रहना ही श्रेयस्कर है।

सुकुमाल तपस्वी बना नहीं था। अंतर की उत्कट आत्म साधना ने उसे तपस्वी बना दिया था। वह संसार का भूखा वैरागी नहीं था वह तो तृप्त तपस्वी था। उसकी आत्म तपस्वी बनने के प्रथम ही अपने कर्त्तव्य को पहचान चुकी थी। वह जान गया था संसार के नग्न चित्र को।

रत्न दीपकों के प्रकाश के अतिरिक्त दीप प्रकाश में अश्रुपूर्ण हो जाने वाले अपने नेत्रों की निर्बलता को वह समझता था। कमल वासित सुगंधित चांवलों को अतिरिक्त साधारण तन्दुल के स्वाद को सहन न कर सकने वाली अपनी जिह्वा की तीव्रता का उसे अनुभव था। मखमली गद्दों पर चलने के अतिरिक्त पृथ्वी पर न चलने वाले पेरों की सुकुमारता का उसे ज्ञान था। उसे अपने शरीर के अणु अणु का पता था। वह एक स्टेज पर उनको ला चुका था, अब उसे उन्हें दूसरी ओर ले जाना था। अब तो उसे उन्हीं से दूसरा दृश्य अंकित कराना था। अभी तो वह उनकी गुलामी कर चुका था। उनके इशारे पर नाच चुका था, अब सुकुमाल के इशारे पर उनके नाचने की बारी थी। बहुत मजबूत कठोर उसे बनना था। वह बना। एक क्षण में ही दृश्य परिवर्तित हो गया। पलक मारते ही उसने अपने स्वामित्व को पहचान लिया, मानो यह कोई जादू था। कड़ाके की दोपहरी का समय, पाषाण कणमय पृथ्वी, उसके पैरों से रक्त की धारा बहने लगी किन्तु उसे तो उन्हें आगे बढ़ाना ही था, कठोर परीक्षा में उसे पूरे मार्क प्राप्त करना था। वह बढ़ता ही गया अपने इच्छित पथ पर, एक भयंकर गुफा में उसने अपना आसन जमाया।

(8)

हां वह श्रृंगालनी थी। कितने जन्मों के वैर का बदला उसे चुकाना था। उसने उन्हें देखा, प्रति हिंसा के तार झनझना उठे। वह हुंकार उठी, सुकुमाल ध्यान-मग्न थे उसे लगा, वह अपने सभी जन्मों का बदला आज चुका लेगी, साधु उफ भी नहीं करेगा।

गीदड़ी ने अपने कठोर दांतों को बढ़ाया और निर्भयता से उनके कोमल अंग का भक्षण करने लगी। कितना मधुर था उनका रुधिर, पीते पीते वह तृप्त नहीं हुई। उसके बच्चे भी उनके रुधिर से अपनी प्यास बुझाने लगे। किन्तु बाहरे सुकुमाल ! वह अडोल थे, मानों पाषाण शरीर पर सब कुछ होते हुए भी उन्हें कुछ नहीं लग रहा था उनका मन, उनकी आत्मा तो कहीं दूसरे ही स्थान पर स्थित थी। उनकी शारीरिक ममता मर चुकी थी, नश्वर तन की ओर से मन कहीं चला गया था। अपनी विचारधारा को वे किसी अन्य ओर ही प्रवाहित कर चुके थे।

निर्दय श्रृंगालिनी उनकी जंघाओं को खाकर ही तृप्त नहीं हुई। उसने उनके हाथों और पेट को खाना शुरु किया।

किस निर्दयता से उसने उनके शरीर को नोंचकर खाना प्रारंभ किया था ! ओह ? वह दृश्य कितना हृदय विदारक था। कठोर से कठोर हृदय भी उसे देखकर मोम बन जाता। किन्तु श्रृंगाली के हृदय में करुणा को स्थान कहां था-वह इसी तरह से तीन दिन तक खाती रही किन्तु महात्मा सुकुमाल के मुंह से आह भी नहीं निकली। वह अपने आत्मध्यान से तनिक भी विचलित नहीं हुए। धन्य रे महात्मा।

तीसरे दिन उनका आत्मा इस नश्वर शरीर का त्यागकर मुक्ति लोक की ओर प्रस्थान कर गया, ज्योति में ज्योति समा गईं। वह सुकुमार सुकुमाल संसार का महाविजेता बन गया। संसार ने उनके तपश्चरण की प्रशंसा की , पूजा की और उनके शरीर की भस्म को अपने मस्तक पर चढ़ाया।

महावीर वर्द्धमान

(युगप्रवर्तक जन तीर्थंकर अहिंसा के अवतार)

(1)

उस समय जब अशांति की घटा चारों ओर से घिर आई थी, अनाचार और अत्याचार के अंधकार ने विश्व को घनीभूत कर लिया था, हिंसा की बिजलियां चमक कर नेत्रों को चकाचौंध कर रही थीं तब सारा भूमण्डल वेदना से कराह उठा था।

युगधर्मप्रचारक ऋषभदेव से लेकर श्री पार्श्वनाथ तक 23 तीर्थंकरों का अवतरण हो चुका था। उन्होने अपने धर्मप्रचार के समय में जनता को शांति और मुक्ति पथ का प्रदर्शन किया था।

पार्श्वनाथ जी के तीर्थकाल के बाद से वैदिक धर्म का प्रभाव तीव्रता से बढ़ने लगा। क्रमशः उसने अपने आडंबर पूर्ण हिंसा आवरण में भारत को ढक लेने का प्रयत्न किया। मिथ्याचरण और क्रियाकांडों ने सत्य का स्थान ले लिया था। पशुबलि और यज्ञों का प्रचार तीव्रगति से होने लगा था, ऐसे समय में सत्य धर्म के प्रचारक किसी महात्मा के अवतरण की आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी।

महावीर वर्द्धमान का जन्म ऐसे ही वातावरण में हुआ था। उनका जन्म क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ के यहां हुआ था।

राजा सिद्धार्थ नाथवंश के भूषण थे। उनकी पत्नी का नाम त्रिशला था। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी शुभ तिथि थी वह जब महावीर वर्द्धमान ने जन्म लेकर वसुधा को पुण्यमय बनाया था।

महावीर के पुण्य जन्म को जानकर देवता महाराजा सिद्धार्थ के घर बधाई देने आए थे। उन्होंने बड़ा भारी उत्सव मनाया था।

महावीर बालकपन से ही वीर और निर्भय थे। उनके शरीर में अनंत बल और साहस था। एक दिन उनके साहस की परीक्षा हुई।

वे अपने बालमित्रों के साथ वन में खेल कूद कर रहे थे। इसी समय एक भयंकर हाथी उस ओर दौड़ता आया। उसे देखकर सभी बालक भय से डरकर भागने लगे लेकिन बालक महावीर के हृदय में भय ने थोड़ा भी प्रवेश नहीं किया वे निर्भय होकर उसके सामने आकर डट गए। बालक के इस साहस ने सबको चकित कर दिया। हाथी ने अपना रूप बदला, वह एक देव था जो बालक महावीर के साहस की परीक्षा करने आया था। उसका परीक्षण हो चुका था।

महावीर अब युवक थे, उनके सुन्दर और सुदृढ़ शरीर में एक दिव्य प्रभा ने प्रवेश किया। उनका स्वर्ण शरीर अपूर्व आभा से चमकने लगा। सुडौल और परिपुष्ट अंगों पर सुन्दरता झलकने लगी।

लाख प्रयत्न करने पर भी कामदेव उन पर अपना प्रभाव नहीं डाल सका। उनके पवित्र अंतः करण में उसे तिल भर भी स्थान नहीं मिला था। वे गृहस्थाश्रम में रहकर भी जल से कमल की तरह उसके प्रलोभन से विलग थे। भोग विलास और विषय सुख की लालसा उनके मन में नहीं लगी थी।

युवक हुआ देख महाराज सिद्धार्थ ने किसी कन्या के साथ उनका विवाह करना चाहा लेकिन महावीर वर्द्धमान ने इसे स्वीकार नहीं किया। वे संसार के विषय बंधन में अपने को नहीं फंसाना चाहते थे। आ जन्म ब्रह्मचारी रहकर वे अपना पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहते थे। यही हुआ माता पिता ने उनके आदर्श विचारों पर प्रतिबंध लगाना उचित नहीं समझा।

युवक महावीर ने 30 वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहकर आदर्श जीवन व्यतीत किया। एक दिन उनके हृदय में लोककल्याण की भावनाओं ने तीव्र आंदोलन मचाना प्रारंभ किया। उन्होंने दीन और मूक पशुओं को करुण हृदय के साथ सुना था।

इस पुकार को सुनकर आज उनका हृदय द्रवित हो उठा।हृदय तंत्री के तार आज झंकृत हो उठे थे। संतप्त और विदग्ध हृदय की दाह ने उनके मन को पिघला दिया था।

क्षण भर के लिए उन्होंने अपने जीवन कर्त्तव्य को सोचा। शीघ्र ही उन्होंने सब कुछ निर्णय कर लिया। मैं अपने जीवन को कल्याण पथ पर छोड़ दूंगा, अशांत और दुखी जनता का मैं पथ प्रदर्शन करूंगा, उसके लिए मुझे अपना सर्वस्व त्याग करना होगा। लोक-कल्याण के लिए मैं सब कुछ करूंगा, तपस्वी बनकर मैं अपनी आत्मा को पूर्ण विकसित करूंगा और पवित्र आत्म-ध्वनि को संसार भर में फैलाऊंगा। यह विचार आते ही वे बाल ब्रह्मचारी महावीर तपस्वी बनने के लिए तैयार हो गए।

त्रिशला माता को अपने पुत्र के विचार ज्ञात हुए। पुत्र वियोग के अथाह दुख से उनका हृदय विकल हो गया। वह इस दुख को सह न सकी। रोते हृदय से बोली-पुत्र! मैं अब तक पुत्रवधू के सुखों से वंचित रहकर भी तुम्हारा मुंह देखकर संतोष कर रही थी लेकिन अब तुम भी मुझे त्यागकर जा रहे हो अब मेरे जीवन का क्या सहारा रहेगा ?

पुत्र ! इतने बड़े राज्य वैभव का त्याग तुम क्यों कर रहे हो ? क्या गृहस्थजीवन में रहकर तुम लोक-कल्याण नही कर सकते ? महलों में रहने वाला तुम्हारा यह शरीर तपस्या के कठिन कष्ट को कैसे सहन कर सकेगा? मैं प्रार्थना करती हूं कि जननी के पवित्र प्रेम को तुम इस तरह मत ठुकराओं गृहस्थ जीवन में रहकर ही संसार का कल्याण करो।

जननी को सान्त्वना देते हुए महावीर बोले- जननी ! इस उत्सव के समय में आज यह खेद कैसा ? तेरा पुत्र संसार का उद्धार करने जा रहा है, आत्मकल्याण के प्रशस्त पथ का पथिक बन रहा है, यह जानकर तो तेरा हृदय गौरव से भर जाना चाहिए।

गौरवमयी जननी ! गृहस्थ जीवन के बंधन अब मेरी आत्मा स्वीकार नहीं करती, अब तो यह संसार

में आत्मस्वातंत्र्य और समता का साम्राज्य स्थापित करने के लिये तडफड़ा उठी है, तुम उसे इस जीर्ण बंधन में बद्ध रखने का हठ मत करो, अब उसे स्वच्छंद विचरने की ही अनुमति दो।

वर्द्धमान महावीर ने अपने पवित्र उपदेश द्वारा जननी और जनक के मोहजाल को छिन्न भिन्न कर दिया। उनसे आज्ञा लेकर वे तपश्चरण के लिये वन की ओर चल दिए।

अपने शरीर को महावीर ने तपश्चरण की ज्वाला में डाल दिया था, त्रीव आंच से कर्ममल दूर होकर आत्मा पवित्र बनाने लगा था, तपस्या की आंच में एक और आंच लगी।

वे अनेक स्थानों पर भ्रमण करते हुए एक दिन उज्जयिनी के श्मशान मे ध्यानस्थ थे, स्थाणु नामक रुद्र ने उन्हें देखा। पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण उसने उनकी शांति भंग करने का कुत्सित प्रयत्न किया। उन पर अनेक असहनीय उपसर्ग किए लेकिन महावीर किसी तरह भी तपश्चरण से चलित नहीं हुए। अत्याचारी की शक्ति का अंत हो गया था, इस उपसर्ग ने महावीर के तपस्वी हृदय को और भी दृढ़ बना दिया।

महावीर ने तेरह वर्षतक कठिन साधना की। अंत में उन्हें इस आत्म साधना का फल कैवल्य के रूप में मिला उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्त की।

महावीर वर्द्धमान महान् आत्म संदेशवाहक थे। सर्वज्ञता प्राप्त करते ही विश्वकल्याण के लिए उनका उपदेश प्रारंभ हुआ। विशाल सभास्थल निर्माण किया गयाथा। उनका उपदेश सुनने के लिए जन समूह एकत्रित होने लगा।

भारत के विरोध की जड़ जमाने वाली विषमता की बेल पर उन्होंने प्रथम प्रहार किया। क्रियाकांड के पालने में पली हुई अंध परम्परा और अहंमान्यता को उन्होंने समूल नष्ट कर दिया। केवल जाति अधिकारों के बल पर स्वयं को उच्च और अन्य को नीच समझने वाली कुत्सित भावना के भयंकर तूफान को शांत करने में उन्होंने अपनी पूर्ण शक्ति का प्रयोग किया। मानव हृदय में कुंठित पड़ी आत्मोत्थान की भावना को बल दिया। और गिरे हुए मनोबल को जागृत, विकसित और प्रोत्साहित किया।

अपने को तुच्छ और हीन मानवो की आत्म-शक्ति इतनी कुंठित हो चुकी थी कि वे समझ नहीं सकते थे हम मानव हैं, हमें भी कोई अधिकार प्राप्त हैं।

मदांध धार्मिक ठेकेदारों ने मानव शक्ति को बेकार कर दिया था। वे सोच ही नहीं सकते थे कि हमें भी इस गाढ़ अंधकार में कभी प्रकाश की किरणों का प्रदर्शन प्राप्त हो सकता है। हम इस भयंकर जड़त्व की काल कोठरी से कभी निकल भी सकते हैं।

महावीर को जड़त्व और हीनत्व की चिरकाल से जड़ जमाने वाली उस भावना को नष्ट करने में

काफी शक्ति और आत्मबल का प्रयोग करना पड़ा। विषमता की लहरें प्रचंड थी। हिंसा और दंभ का अकांड तांडव था, किन्तु महावीर के हृदय में एक चोट थी, वे इस विषमता से तिलमिला उठे थे। मानव मात्र के कल्याण की तीव्र भावना नें उन्हें दृढ़ निश्चयी बना दिया था। मदांध धर्माधिकारियों का उन्हें कड़ा मुकाबला करना पड़ा किन्तु वे अपनी मनोभावनाओं के प्रचार में उत्तीर्ण हुए। मानवता के संदेश को मानवों के हृदय तक पहुंचाने में वह सफल हुए। उनकी यह सफलता साम्यवाद का शंखनाद था, मनुष्य की विजय थी और विशेष महत्ता का दर्शन कराने वाली स्वर्ण किरण थी।

मानवों ने उस स्वर्ण प्रकाश में अपनी शक्ति को विकसित करने वाले स्वर्ण पथ को देखा। किन्तु उनके पद उस पर चलने में शंकित थे उन्हें उस पर चलने के लिए उन्होंने प्रेरित किया, परिचालित किया और इच्छित स्थान पर चलने की शक्ति प्रदान की। वे उन पथ के पथिक बने जिस पर चलने की उन्हें चिरकाल से लालसा थी। समानता की सरिता के वेश में वैषम्य के किनारे बह गए ओर एक विशाल तट बन गया, उन्हें साम्यवाद के दर्शन हुए।

साम्यवाद का रहस्य उन्होंने जनता को समझाया।

धर्म और सामाजिक क्रियाओं में किसी भी जाति के मानव को समानाधिकार है। निर्धनता, शूद्रता अथवा स्त्रीत्व की श्रृंखलाएं धार्मिक तथा आत्मसाधना में किसी प्रकार बाधक नहीं हो सकती। जातिगत अथवा व्यक्तिगत अधिकारों का धार्मिक व्यवस्था में कोई अधिकार नहीं। धर्म प्राणीमात्र के कल्याण के लिए है। जितनी आवश्यकता धर्म की एक धनिक के लिए है उतनी ही निर्धन के लिए है। धर्म को लेकर प्रत्येक प्राणी अपना आत्म कल्याण करने के लिए स्वतंत्र है। उनका दिव्य संदेश था।

महावीर के समवशरण में प्रत्येक जाति के स्त्री पुरूष को धर्मोपदेश सुनने की सुंदर व्यवस्था थी। किसी के लिए कोई भेदभाव नहीं था। पतित से पतित व्यक्ति को उनकी शिक्षाऐं लेकर आत्म कल्याण करने का पूर्ण अधिकार था। मानव मात्र ही नहीं पशु भी अपनी धार्मिक प्रवृत्तियों को उनका प्रवचन सुनकर जागृत कर सकता था। धर्मव्यवस्था विचरण करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र और निर्मुक्त था। उसे कोई बंधन नहीं था। साम्यवाद का सुंदर झरना झरता था। प्रत्येक को उसमें स्नान करने का समान अधिकार था।

समन्वय की सुन्दर विवेचना उन्होंने की-

प्रत्येक व्यक्ति में स्वतंत्र विचार शक्ति है। प्रत्येक अपूर्ण मानव में विचार वैचित्र्य है। एक यह ऐसा प्राकृतिक बंधन है जिसका तोड़ना मानव सामर्थ्य के परे है। किन्तु दूसरे व्यक्ति विचार में विभिन्नता होते हुए भी प्रत्येक को किसी एक दृष्टिकोण पर स्थिर रहना ही होगा। तभी विश्वशांति स्थिर रह सकेगी। तभी भयंकर विद्वेष और हिंसा की ज्वाला शांत हो सकेगी।

अपने विचारों की स्वतंत्रता के साथ साथ दूसरों के विचार स्वांतत्र्य महत्त्व देना होगा। अपनी

स्वातंत्र्य रक्षा के लिये दूसरों की स्वातंत्र्य रक्षा करना होगा। अपने विचारो के राज्य में दूसरों के विचारो को स्थान देना ही होगा। भले ही वे हमसे विपरीत ही क्यों न हों, यह आवश्यक नहीं होगा कि उन विपरीत विचारों को रखकर हमें उनका उपयोग करना पड़े।

दूसरों के कुछ विचार हमारे लिए अनुपयोगी कष्टकर और हानिप्रद भी हो सकते हैं, लेकिन इसीलिए हम उनके विरोधी हो और उन विचारों के कारण हम मानव समुदाय के शत्रु बन जायें और विद्वेष भावनाएं यह हमारे लिए आवश्यक नहीं पर उन्हें अपने में खपा लेना, अपने महान अस्तित्व में उन्हें विलीन कर लेना, उन्हें विराट विश्व विचार के साम्राज्य में मिला लेना, यह भी तो साधारण सामर्थ्य की बात नहीं और इस तरह के समन्वय के सिद्धांत को विश्व पूज्य बना देना एक अचिन्त्य सामर्थ्य का कार्य था। भगवान् महावीर ने उसी अचिन्त्य शक्ति का परिचय दिया। उन्होंने संसार में फैले हुए परस्पर विरोधी विचारों को एक विराट् परिषद का रूप दिया और प्रत्येक विचार को स्वतंत्र स्थान देकर महान् समन्वय की सृष्टि की।

एकत्व, अनेकत्व, कर्तृत्व, अकृर्तत्व आदि विभिन्न विचार वालों का एक क्षेत्रीकरण किया और इस तरह धर्म के नाम पर चलने वाले विरोध, हिंसा और अनैक्य को विजित किया। इस समन्वय को उन्होंने अनेकान्त का नाम दिया और इसकी जांच के लिए स्याद्वाद को स्थापित किया।

सत्य मेरा ही है इस कठोरता को नष्ट कर उसके स्थान पर मेरा भी है इस विशालता के द्वार को उन्होंने उद्घाटित किया।

यह भी किसी दृष्टि से सत्य है, उनके इस मंत्र ने सब धर्मों को एक स्थान पर ला दिया।

विश्व में समन्वय की धारा वह चली और उसमें विचारों की विभिन्न धाराएं एकमेक हो गई।

भयंकर हिंसाकांड और विद्वेष की भावनाएं समन्वय की इस धारा में बह गई।

आत्म-स्वातंत्र्य की शिक्षा अत्यंत महत्वशाली थी।

महावीर वर्द्धमान आत्म स्वातंत्र्य की स्थापना के एक मात्र प्रतीक थे, वे एक ऐसे प्रकाशपुञ्ज थे जो अनंत शक्तियों का महत्व प्रदर्शित करता है। उनका उपदेश था-

प्रत्येक आत्मा के अंदर मेरे जैसा अनंत प्रकाश-पुंज छुपा हुआ है और अनंत सामर्थ्य का स्रोत अबाधित गति से बह रहा है। जिस तरह मैं आत्म शक्ति पर विश्वास करके उसके अचित्य आनंद का उपयोग कर रहा हूं, उसी तरह प्रत्येक व्यक्ति आत्म ज्ञान के पथ पर चलकर अनंत मुक्तात्माओं की तरह पूर्ण आत्म स्वातंत्र्य प्राप्त कर सकता है।

उनका संदेश था-तुम अनंत शक्ति और सामर्थ्य रखने वाले मानव इन वासनाओं और विकृतियों के दास बने हुए हो ? अनेक देवी देवताओं की दासता करने वाले अपने को तुच्छ समझने की तुम्हें आवश्यकता नहीं है। आत्म स्वातंत्र्य के लिए तुम्हें दंभ और पांखड को मस्तक झुकाने की

आवश्यकता नहीं है।

आत्माएं स्वतंत्र हैं, वे पूर्ण विकसित होकर स्वातंत्र्य सुख का उपभोग करने की शक्ति रखती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि पूर्ण आत्म विकास के लिए मानव को किसी की आधीनता, किसी के शासन और उपासना में निरत रहना ही पड़े। शक्तिशाली आत्मायें आदर्श प्राप्ति के लिए किसी हद तक केवल साधन और सहयोगी हो सकती हैं किन्तु आत्म स्वातंत्र्य के लिए वे पूर्ण स्वामित्व अथवा पूजक का स्थान नहीं ग्रहण कर सकती।

महावीर वर्द्धमान स्वयं यह शिक्षण नहीं देते थे। वे स्वयं अपने को यह प्रमाणित नहीं करते थे और न वे यह प्रेरणा करते थे कि मेरी अथवा किसी व्यक्ति मात्र की उपासना, सेवा अथवा पूजा पूर्ण आत्म स्वातंत्र्य के लिए आवश्यक है। प्रत्येक आत्म-स्वातंत्र्य की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के लिए आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास और आत्मज्ञान पर पूर्ण स्थिर रहने की आवश्यकता है। प्रत्येक आत्मा में अनंत शक्तियां समाभूत हैं और वे त्याग तपश्चरण और आत्मध्यान के द्वारा पूर्ण विकसित हो सकती हैं। वे उसके अंतर्गत ही सन्निहित हैं।

उनका उद्देश्य इतना महान था। उनके स्वातंत्र्य का सोपान इतना ऊंचा था जिसमें समाज, देश और राष्ट्र की स्वातंत्र्य की सीढ़ियां प्राथमिक सीढ़ियों के रूप में रह जाती हैं। वे ऐसा विश्वस्वातंत्र्य चाहते थे जो तलवार और सैनिको के बल पर नहीं स्थापित होता जो किलों और कोटों के साधनो पर अवलंबित नहीं, जो आतंक और भ्रम से नहीं प्राप्त होता। उनका कथन था कि ये सब आत्म स्वातंत्र्य के साधन नहीं यह तो मानव को पराधीनता के बंधन में डालने वाले हैं ।

वह विजय नहीं जो मनावों का खून बहाकर प्राप्त की जाती है, जिसके लिए निर्बलों का बलिदान किया जाता है। आतंक, हिंसा, क्रूरता और नृशंसता द्वारा वह विजय नहीं मिलती है। आत्मविजयी के लिए अपने आप पर विजय प्राप्त करना होता है। उसे अपने अंदर शत्रु-काम, क्रोध, छल, घृणा, लोभ, मोह आदि को जीतना होता है। इसके लिए उसे त्याग, तपस्या और महत्ता की आवश्यकता होती है। इसी बल से वह मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है जब पूर्ण स्वातंत्र्य का अधिकारी बनकर सुख का उपभोग करता है। उनके इन सिद्धांतों ने विश्व में अमरत्व का साम्राज्य स्थापित किया।

भगवान महावीर ने साम्यभाव और विश्वप्रेम का शांतिपूर्ण साम्राज्य लाने के लिए महान् त्याग का अनुष्ठान किया। उन्होंने अपने जीवन के 30 वर्ष इस महान् उपदेश में खपा दिये।

अपनी आयु के अंत समय में वे विहार करते हुए पावापुर के उद्यान में आए। वह कार्तिक कृष्ण अमावस्या का प्रभातकाल था। रात्रि की कालिमा क्षीण होने को थी। इसी पवित्र समय में उन्होंने इस नश्वर संसार का त्याग कर निर्वाण प्राप्त किया। देवताओं और मनुष्यों के समूह ने एकत्रित होकर उनका निर्वाणोत्सव मनाया, उनके गुणों का कीर्तन किया और उनकी चरणरज को अपने मस्तक पर चढ़ाया।

श्रद्धालु श्रेणिक (बिंबसार)

(अनन्य श्रद्धालु महापुरुष)

(1)

राजा बिंबसार शिकार खेलकर वन से लौटे थे। उनका मन आज अत्यंत खिन्न हो रहा था। अनेक प्रयत्न करने पर भी आज उनके हाथ कोई शिकार नहीं लगा था। लौटते समय उन्होंने जैन साधु को खड़े देखा। अब वे अपने क्रोध को काबू में नही रख सके। आज सबेरे शिकार को जाते समय भी उन्होंने इन्ही साधु को देखा था। उन्होंने सोचा- इस नंगे साधु के दिखाई दे जाने के कारण ही आज मुझे शिकार नहीं मिला। वे बहुत झुंझलाए हुए थे। जंगल से लौटते समय उसी स्थान पर साधु को निश्चल खड़े देखकर उनके हृदय मे बदला लेने की तीव्र इच्छा जागृत हो उठी।

राजा बिंबसार के अधिक क्रोधित होने की बात और थी। उनकी रानी चेलना ने बौद्ध भिक्षुओं का परीक्षण किया था। परीक्षण में वे बुरी तरह से पराजित और लज्जित हुए थे। उस परीक्षण से राजा बिंबसार का जैन-द्वेषी हृदय और भी भड़क उठा था। वे जैन साधु मात्र से अत्यंत रूष्ठ हो गए थे और बौद्ध साधुओं के पराभव का बदला वह किसी तरह लेना चाहते थे।

प्रसंग यह था-राजगृह में बौद्ध भिक्षुकों का एक विशाल संघ आया था। संघ आगमन का समाचार बिंबसार ने सुना। वे अत्यंत प्रसन्न होकर रानी चेलना से बौद्ध भिक्षुकोंकी प्रशंसा करने लगे। वे बोले- प्रिय ! तू नही जानती कि बौद्ध भिक्षु ज्ञान की किस उत्कृष्टता को प्राप्त कर लेते हैं। संसार का प्रत्येक पदार्थ उनके ज्ञान में झलकता है। वे परम पवित्र हैं। वे ध्यान में इतने निमग्न रहते हैं कि यदि उनसे कोई कुछ प्रश्न करना चाहता है तो उसका उत्तर भी उसे बड़ी कठिनता से मिलता है। ध्यान से वे अपनी आत्मा को साक्षात् मोक्ष मे ले जाते हैं। वे वास्तविक तत्त्वों को उपदेशक होते हैं।

चेलना ने बौद्ध भिक्षुकों की यह प्रशंसा सुनी। उन्होंने नम्रता से उत्तर दिया। आर्य ! यदि आपके गुरु इस तरह पवित्र और ध्यानी हैं तब उनका दर्शन मुझे अवश्य कराइए। ऐसे पवित्र महात्माओं का दर्शन करके मैं अपने को कृतार्थ समझूंगी। इतना ही नहीं ,यदि मेरे परीक्षणकी कसौटी पर उनका सद्ज्ञान और चारित्र सही निकला तो मैं आपसे कहती हूं, मैं भी उनकी उपासिका बन जाऊंगी। मैं पवित्रता की उपासिका हूं, मुझे वह कहीं भी मिले। यह हठ मुझे नही है कि वह जैन साधु ही हों, सत्य और पवित्र आत्मा के दर्शन जहां भी मिलें वहाँ मैं अपना मस्तक झुकाने को तैयार हूं लेकिन बिना परीक्षण यह नही हो सकेगा ।मैं आशा करती हूं कि आप मुझे परीक्षण का अवसर अवश्य देंगे।

रानी के सरल हृदय से निकली बातों का राजा विंबसार के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने बौद्ध-

साधुओं के ध्यान के लिए एक विशाल मंडप तैयार कराया। बौद्ध साधु उस मंडल में ध्यानस्थ हो गए। उनकी दृष्टि बंद थी, सांस को रोककर काष्ट के पुतले की तरह समाधि में मग्न थे।

राजा बिंबसार रानी के साथ वहां पहुंचे। रानी चेलना ने उनके परीक्षण के लिए उनसे अनेक प्रश्न किये लेकिन भिक्षुओं ने उन्हें सुनकर भी उनका कोई उत्तर नहीं दिया। पास में बैठा हुआ एक ब्रह्मचारी यह सब देख रहा था । वह रानी से बोला-माताजी! यह सभी भिक्षुक इस समय समाधि में मग्न हैं। सभी साधुओं की आत्म शिवालय में विराजमान हैं। देह सहित भी इस समय से सिद्ध है इसलिये आपको इनसे अभी उत्तर नहीं मिलेगा।

ब्रह्मचारी के इस उत्तर से चेलना को कोई संतोष नहीं हुआ। लेकिन वह तो पूर्ण परीक्षण चाहती थी। वह जानना चाहतीथी कि भिक्षुकों की आत्मा वास्तव में सिद्धालय में है, या यह सब ढोंग है। इस परीक्षण का उसके पास एक ही उपाय था, उसने मंडप के चारों ओर अग्नि लगवा दी और उनका दृश्य देखने के लिए कुछ समय तक तो वहां खड़ी रही, फिर कुछ सोच समझकर अपने राजमहल को चल दी।

अग्नि चारों ओर सुलग उठी। जब तक अग्नि की ज्वाला प्रचंड नहीं हुई वे बौद्ध भिक्षुक ध्यानस्थ बैठे रहे, लेकिन अग्नि ने अपना प्रचंड रूप धारण किया, तो वे अपने को एक क्षण के लिये ध्यान में स्थिर नही रख सके। जिस ओर उन्हें भागने को दिशा मिली वे उसी ओर भागे। कुछ क्षण को वहां का वातावरण बहुत ही अशांत हो गया, अब वह स्थान साधुओं से बिलकुल रिक्त था।

एक क्रोधित भिक्षु ने जाकर यह सब बात राजा बिंबसार को सुनाई तो राजा ने क्रोध का कोई ठिकाना नहीं था, उन्होंने रानी को उसी समय बुलाया। कांपते हुए हृदय से वे बोले-रानी! तुम्हारा यह कृत्य सहन करने योग्य नहीं, मैं नहीं समझता था कि मतद्वेष में तुम इतनी अंधी हो जाओगी। यदि तुम्हें बौद्ध भिक्षुकों पर श्रद्धा नहीं थी तो तुम उनकी भक्ति भले ही न करती, लेकिन उनके ऊपर ऐसा प्राणान्तक उपसर्ग तो तुम्हें नहीं करना चाहिए था। क्या तेरा जैन धर्म इसी तरह भिक्षुओं के निदर्यता से प्राण घात की शिक्षा देता है ? तेरे परीक्षण की अंतिम कसौटी क्या बेकसूर प्राणियों का प्राणघात ही है ?

कुपित नरेश को शांत करती हुई चेलना बोली-नरेश्वर! मेरा लक्ष्य उन्हें जरा भी तकलीफ देने का नहीं था और न मेरे द्वारा उन बौद्ध भिक्षुकों को थोड़ा सा भी कष्ट पहुंचा है। मैं तो ब्रह्मचारी के उत्तर से ही यह समझ चुकी थी कि ये बौद्ध भिक्षुक निरे दंभी हैं, ये अग्नि की ज्वाला को सह नहीं सकेंगे और भाग खड़े होंगे। मैं तो आपको इनके मौन नाटक का दृश्य ही दिखलाना चाहती थी, इसे आप स्वयं देख लीजिए।

वे साधु समाधिस्थ नहीं थे,यदि उनकी आत्मा समाधिस्थ होती तो वे शरीर को जल जाने देते। शरीर के जलने से उनकी सिद्धालय में विराजमान आत्मा को कुछ भी कष्ट नहीं होना चाहिए था। वह समाधि

ही कैसी जिसमें शरीर के नष्ट होने का भय रहे, समाधिस्थ तो अपने शरीर के मोह को पहले ही जला बैठता है, फिर उसके जलने और मरने से उसे क्या भय हो सकता है।

महाराज ! वास्तव में आपके वे भिक्षु समाधिस्थ नहीं थे उन्होंने मेरे प्रश्नों का उत्तर न दे सकने के कारण मौन का दंभ रचा था। उनका दंभ अब प्रकट हो गया , आप अपने बौद्ध भिक्षुओं के इस दंभ को स्पष्ट देखिए, क्या यह सब देखते हुए आपकी उन पर श्रद्धा होगी ?

रानी के युक्तियुक्त वचन सुनकर महाराज निरुत्तर थे। लेकिन अपने गुरुओं के इस पराभव से उनके हृदय को गहरी चोट लगी। ध्यानस्थ जैन साधुओं को देखकर आज उनकी वह चोट गहरी हो गई थी, उन्होने साधु के ध्यान का परीक्षण करना चाहा। उन्होंने किसी तरह का विचार किए बिना ही अपने शिकारी कुत्ते उन पर छोड़ दिये।

साधु परम ध्यानी थे। उनके ऊपर क्या उपसर्ग किया जा रहा है, इसका उन्हें ध्यान भी नहीं था। उनकी मुद्रा उसी तरह शांत और निर्विकार थी। उनका हृदय उसी तरह आत्मध्यान में गोते खा रहा था। उनकी मौन शांति का उन शिकारी कुत्तों पर भी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। हिंसक से हिंसक, पशु भी आज उनकी इस शंति से प्रवाहित हो सकता था। कुत्ते उनके सामने आकर मंत्र कीलित सर्प की तरह शांत खड़े रह गए।

बिंबसार की आज्ञा के विपरीत कार्य हुआ। वे कुत्ते दौड़ा कर साधु की समाधि भंग करना चाहते थे, लेकिन साधु की समाधि ने कुत्तों को भी समाधिस्थ बना दिया। वे यह दृश्य देखकर दंग रह गए, साथ ही उन्हें साधु के इस प्रभाव पर ईर्षा भी हुई। वे सोचने लगे यह साधु अवश्य ही कोई मंत्र जानता है जिसके बल से इसने मेरे बलवान हिंसक कुत्तों को अपने वश में कर लिया है, लेकिन मैं इसके मंत्र बल को अभी मिट्टी में मिलाये देता हूं। मैं अभी इस दुष्ट जादूगर का सर धड़ से उड़ाए देता हूं फिर देखूंगा कि इसका जादू कहां रहता है। वे ईर्षा के सामने कर्त्तव्य को भूल गए थे। विवेक को उन्होंने ठुकरा दिया था। एक न्यायशील राजा होकर भी उन्होंने अन्याय और अत्याचार के सामने सिर झुका लिया था। कृपाण लेकर वे आगे बढ़े, इसी समय एक भयंकर काला सर्प उनके सामने फुंफकारता हुआ दौड़ा। मुनि के मस्तक पर पड़ने वाली कृपाण सर्प के गले पर पड़ी इस अचानक आक्रमण ने उनके हृदय को बदल दिया था, बदले की भावना नष्ट नहीं हुई थी। लेकिन उसमें कुछ अवश्य आत्मा गई थी, साधु के गले में मरा हुआ सर्प डालकर ही उन्होंने अपने बदले की भावना शांत कर ली।

साधु यशोधर के गले में सर्प डालकर वे प्रसन्न थे। सोच रहे थे, साधु अपने गले से सांप को निकाल कर फेंक देगा, लेकिन अब इस समय इतना बदला ही काफी है, संध्या का समय भी हो चुका था, वे संतोष की सांस लेते हुए अपने महल को चल दिए।

(2)

बिंबसार जो कुछ कर आये थे उसे वे गुप्त रखना चाहते थे, लेकिन हृदय के उनके कृत्य को अपने अंदर रखने को तैयार नहीं था। वह उसे निकाल बाहर फेकना चाहता था, तीन दिन तक तो उन्होंने अपने इस कृत्य को रानी से अप्रकट रखा। लेकिन चौथे दिन जब रात्रि को राज्य महल में अपनी शय्या पर लेटे हुए थे उनका साधु के साथ किया हुआ दुष्कृत्य उबल पड़ा। वह रानी पर प्रकट होकर ही रहना चाहता था। राजा लाचार थे, उन्होंने साधु के ऊपर सर्प डालने की कहानी कह सुनाई।

रानी चेलना इस कृत्य की कल्पना करने के लिए भी तैयार नहीं थी, सुनकर उसका हृदय कांप उठा।

वह पश्चाताप के स्वर में बोली-आर्य ? आपसे मैं क्या कहूं ? लेकिन कहना ही पड़ता है। आपने भारी अनर्थ किया है। इस कृत्य से आपने मेरे हृदय के टुकड़े टुकड़े कर दिये हैं। आप जैन साधु की सहलनशीलता, उनके त्याग और तपश्चरण से परिचित नहीं है अन्यथा आप ऐसा कार्य कभी नहीं करते।

रानी की संतोष की धारा में बहाते हुए वे बोले-रानी ! इसमें मेरा अधिक अपराध है तो नहीं जो तुम इतना अधिक खेद प्रकट करती हो। गले में सर्प डाल देने से कोई बड़ा अनर्थ तो हो ही नहीं गया है। वह मायावी उस सर्प को गले से निकालकर न मालूम कही चल दिया होगा फिर उसके लिए इतना पश्चाताप क्यों ?

एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए रानी ने कहा- आर्य ! आपका यह विश्वास गलत है। जैन साधु ऐसा कभी नहीं कर सकते। यदि वे सच्चे जैन साधु होंगे तो उनके गले में वह सर्प उसी तरह पड़ा होगा, उनके लिए तो वह उपसर्ग होगा। जैन साधु इससे अधिक प्राणान्तिक उपसर्गों की भी परवाह नहीं करते। जीवन से उन्हें मोह तो होता ही नहीं है। मोह को तो वह साधु दीक्षा लेने के समय ही त्याग देते हैं। इसका प्रमाण आपको अभी मिल जायेगा। आप इसी समय मेरे साथ चलकर देखिए, आपको मेरा कथन सत्य प्रतीत होगा।

राजा बिंबसार ने यह सब बड़े आश्चर्य के साथ सुना। प्रमाण वे चाहते ही थे। रानी के साथ उसी समय उस स्थान को चल दिए।

साधु यशोधर अपने स्थान पर उसी तरह निश्चल खड़े थे। उनके मुंह पर वही शांति झलक रही थी। आत्मसंतोष की रेखाएं उनके मुंह पर स्पष्ट दिख रही थी। उनके हृदय द्वेष और दुर्भावना के लिए तनिक भी स्थान नहीं था। गले में पड़ा हुआ सांप उसी तरह लटक रहा था।चीटे और चिउटिओं ने मिलकर वहां अपने बिल बना लिए थे। लेकिन साधु को इसमें कुछ मतलब नहीं था।

बिंबसार ने साधुकी इस अद्भुत क्षमता को देखा। रानी चेलना ने भी देखा। उसका करुण हृदय अंदर

ही अंदर रो रहा था। उसने बड़ी सावधानी से गले में पड़े सांप को निकाला। फिर नीचे चीनी फैलाकर चिउटियों को दूर हटाया। चिउटियों ने उनके शरीर को खोखला कर दिया था। रानी ने गर्मजल में भिगोकर नर्म कपड़े से उसे साफ करवाया, फिर उस पर शीतल चन्दन का लेप कर एक गहरी संतोष की सांस ली। जैन साधु रात्रि को मौन रहते हैं। इसलिये उनका उपदेश सुनने की इच्छा से उन दोनों ने रात्रि का शेष समय वहीं व्यतीत किया।

अंधकार नष्ट हुआ। दिनमणि की किरणें फूट पड़ी। साधु की शांति और धैर्य से राजा बिंबसार बहुत प्रभावित हुए थे। उनके हृदय का ताप शीतल हो चुका था। उन्होंने साधु को भक्ति से प्रणाम किया और अपने दुष्कृत्य के लिए क्षमा चाही।

साधु का हृदय तो क्षमा का लहराता हुआ महासागर था। उसमें तो द्वेष, ईर्ष्या और क्रोध ताप के लिए स्थान ही नहीं था। वे शांति चन्द्र की किरणें विखेरते हुए बोले-राजन्! आपके किस कृत्य के लिए मैं क्षमा कर दूं? आपने जो कुछ किया था वह सब द्वेष विकार के वश में होकर किया था। अब वह आपके अंदर से निकल गया है। अपराधी का जब पता ही नहीं है तब दंड किसे देना और क्षमा किसे करना? फिर मेरा बिगाड़ ही क्या किया? यह तो आपका तुच्छ परीक्षण था। मैं इस परीक्षण में उत्तीर्ण हो सका इसका मुझे हर्ष है। यदि आप मुझे परीक्षा के इस फंदे में नही डालते तो मुझे अपनी आत्मशक्ति का भान ही क्या होता? आप अपने हृदय को अधिक खिन्न मत कीजिए, पश्चाताप के आंसुओं को रोकिए और शांति सुख का अनुभव कीजिए। आपका अपराध तो कुछ था ही नहीं और यदि आप उसे मानते ही हैं तो वह तो आपके पश्चाताप के आंसुओं के साथ ही धुल गया। अब तो आप पाक साफ हैं।

साधु की इस समता पर बिंबसार मुग्ध हो गए। उन्होंने उनके द्वारा धर्म व्याख्या सुनना चाही। यशोधर ने उन्हें कल्याणकारी आत्म धर्म का उपदेश दिया-जीव, अजीव तत्वों की विशद व्याख्या की और गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यो को समझाया। साधु यशोधर के धर्मोपदेश से उन्होंने उस शांति का अनुभव किया जिसे अब तक वे नही पा सके थे। उन्हें जैन धर्म के सिद्धांतों पर अटूट श्रद्धा हुई और वे उसी समय जैन शासन के अनन्य भक्त बन गए।

महावीर वर्द्धमान के कैवल्य प्राप्त होने पर राजा बिंबसार ने उनसे धर्म के प्रत्येक पहलू को विशद रूप से समझा था। वे अपनी श्रद्धा के बल से वे महावीर के अनन्य भक्त बन गए। उनकी श्रद्धा निष्कंप थी। उसे कोई भय अथवा चमत्कार डिगा नहीं सकता था।

जिसे किसी एक पदार्थ का निश्चय नहीं होता वह अन्य प्रकार अनेक विषयों में कुशल होने पर भी सिद्धि का वरण नहीं कर सकता। तूफान में फंसी हुई नाव जिस तरह आघात और प्रत्याघाता सहती हुई। अंत में धरातल में जाकर विराम लेती है उसी प्रकार निश्चय अथवा श्रद्धा रहित मनुष्य संसार की अनेक

प्रकार की विडम्बनाओं का अनुभव करता वार वार मार्ग परिवर्तन करता, अंत में निराश बनकर अधः पात की शरण लेता है। श्रद्धा यह एक सुमेरु पर्वत सदृश अडिग निश्चय है। देवता भी जिसे चलित नहीं कर सके ऐसी दृढ़ता और अनुभव की पक्की सड़क पर बनी हुई वीरवृत्ति है। ऐसी श्रद्धा बहुत थोड़े पुरुषों में होती है। श्रेणिक राजा ऐसी अनुपम श्रद्धा रखने वाले थे और इसी श्रद्धा के कारण इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

श्रेणिक राजा को जिनदेव जिन गुरु और जैनधर्म पर असाधारण श्रद्धा थी। एक बार दर्दुर नामक देव ने उनकी परीक्षा करने का निश्चय किया।

श्रेणिक जैन साधुओं को परम विरागी, तपस्वी और निष्पृह मानते थे। जैन साधुओं में जैसी विरागवृत्ति उन जैसी निःस्पृहता अन्यत्र कहीं भी संभव नहीं, ऐसी उनकी दृढ़ श्रद्धा थी। एक समय मार्ग में जाते हुए उन्होंने एक जैन मुनि का दर्शन किया।

उसका भेष जैन साधु से बिल्कुल मिलता था, ऐसा होते हुए भी उसके एक हाथ में मछली पकड़ने का जाल था और दूसरा हाथ मांस भक्षण करने को तैयार हो इस प्रकार रक्त से सना हुआ था। एक जैन साधु की ऐसी दशा देखकर राजा श्रेणिक का हृदय कांप उठा।

राजा को अपने समीप आते देख मुनि ने जाल पानी में डाला, मानो जल की मछली पकड़ने का उसका नित्य अभ्यास हो। यह आचारभ्रष्टता राजा को असह्य प्रतीत हुई।

अरे महाराज ! एक जैन साधु होकर इतनी निर्दयता दिखलाते हुए तुम्हें कुछ लज्जा नहीं आती ? मुनि के भेष में यह दुष्कर्म अत्यंत अनुचित है। श्रेणिक ने तड़पते हुए अंत करण से यह शब्द कहा।

तू हमारे जैसे कितनों को इस प्रकार रोक सकेगा ? संघ में मेरे जैसे एक नहीं किन्तु असंख्य मुनि पड़े हैं जो इसी प्रकार मत्स्य मांस द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं। मुनि ने उत्तर दिया।

राजा का आत्मा मानो कुचल गया। उसकी आंखों के आगे अंधकार छा गया। महावीर स्वामी के संघ के मुनि ऐसा निर्बल मार्ग ग्रहण करे यह उसे बड़ा त्रासदायक प्रतीत हुआ।

वह आगे चला। उस आचार भ्रष्टता का दृश्य वह भूल नहीं सका। मुनि की दुर्दशा का विचार कर वह क्षण भर मन में दुखित होने लगा।

थोड़ी दूर पर उसे एक साधवी मिली, उसके हाथ पैर भट्टावर से रंगे हुए थे। उसकी कजरारी आँखें कृत्रिम तेज से चमकती थी, वह पान चबाती हुई राजा के सामने आकर खड़ी हो गई।

तुम साधवी हो कि वेश्या ! साधवी के क्या ऐसे श्रृङ्गार और अलंकार होते हैं ? ग्लानिपूर्वक राजा ने पूछा।

साधवी खिल खिलाकर हंस पड़ी-तुम तो केवल अलंकार और श्रृंगार ही देखते हो। किन्तु यह मेरे

उदर में छह सात मास का गर्भ है यह तुम क्यों नहीं देखते ?

भ्रष्टाचार की साक्षात् मूर्ति ! उसकी खिलखिलाहट ने निष्ठुर हास्य ने राजा श्रेणिक को दिग्मूढ़ बना दिया। यह स्वप्न है अथवा सत्य इसके निर्णय के प्रथम ही साध्वी जैसी स्त्री बोली-

तुम मुझ एक को आज इस वेष में देखकर सम्भवतः आश्चर्य से स्तब्ध हुए हो, किन्तु राजन् ! तुमने जो तनिक गहरी खोज की होती तो तुम समस्त साध्वी संघ को मेरी जैसी स्त्रियों से भरा हुआ देखते। जो आंखों से अंधा और कानों से बधिर रहा हो उसे अन्य कौन समझा सकता है ?

जैन साधु और साध्वियों में रक्खी हुई श्रद्धा कितनी निश्चल है यह तुम जान गये होंगे।

उपरोक्त शब्द श्रेणिक श्रवण नहीं कर सका, उसने कानो पर हाथ रखते हुए कहाः-

दुराचारियों ! तुम संसार को भले ही अपने जैसा मान लो, किन्तु महावीर प्रभु का साधु साध्वियों का संघ इतना भ्रष्ट पतित अथवा शिथिलाचारी नहीं हो सकता है। तुम्हारे जैसे एक इस प्रकार भ्रष्ट चरित्र के ऊपर से अन्य पवित्र साधु साध्वियों के संबंध में निश्चय करना आत्मघात है। मैं तो अब तक ऐसा मानता हूं कि जैन साधु और साध्वियों का संघ तुम्हारी अपेक्षा असंख्य गुणा उन्नत, पवित्र और सदाचार परायण है।

अंत में श्रेणिक राजा की परीक्षा करने आया हुआ दर्दुरक देव राजा के पैरों पर गिर पड़ा और उसने उनकी अचल निःशंक श्रद्धा की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

प्रबल भ्रान्तियों के सामने श्रेणिक का श्रद्धा -दीप न बुझ सका।

अचल श्रद्धा के कारण राजा श्रेणिक, अविरति होने पर भी अगली चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर होंगे ?

⌘⌘⌘

महापुरुष जम्बू कुमार

(वीरता और त्याग के आदर्श)

(1)

विक्रम संवत् से 510 वर्ष पहले की बात है यह। उस समय मगध देश में राजा बिंबसार राजा था। राजगृह उनकी राजधानी थी। उसी राजगृही में अर्हदत्त जी राज्य के सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी थे। उनकी धर्मपत्नी जिनमति थी। वीर जम्बूकुमार इन्हीं के पुत्र थे।

प्रसिद्ध विद्वान विमलराज के निकट उन्होंने विद्या अध्ययन किया था। पूर्वजन्म के संस्कार के कारण वे अत्यंत प्रतिभाशाली थे। विमल राज ने अपने सुयोग्य शिष्य को थोड़े ही समय में शास्त्र संचालन में निपुण बना दिया था। उच्च कोटि के साहित्य का अध्ययन भी उन्हें कराया था। वे अपने विद्वान् गुरु के विद्वान शिष्य थे।

बालकपन से ही वे बड़े साहसी और वीर थे। उनका सुगठित शरीर दर्शनीय था। एक समय उनके साहस की अच्छी परीक्षा हुई।

वे राजमार्ग से जा रहे थे, इसी समय उन्होंने देखा कि राजा का प्रधान हाथी विगड़ पड़ा है। महावत को जमी पर गिराकर वह अपनी सूंड को घुमाता दौड़ा आ रहा है। यमराज की तरह जिसे वह सामने पाता उसे ही चीरकर दो टुकड़े कर देता था। उसकी भयंकर गर्जना सुनकर नगर की जनता भय से व्याकुल होकर इधर उधर भागने लगी। मदोन्मत हाथी जम्बूकुमार के निकट पहुंच गया था। वह उन्हें अपनी सूंड में फंसाने का प्रयत्न कर ही रहा था कि उन्होंने उसकी सूंड पर एक भयानक मुष्टि का प्रहार किया। वज्र की तरह मुष्टि के प्रहार से हाथी बड़े जोर से चिंघाड़ उठा। फिर उन्होंने अपने हाथ के सुदृढ दंड को घुमाकर उसके मस्तक पर मारा। मस्तक पर दंड पड़ते ही उसका सारा मद चूर चूर हो गया। वह नम्र होकर उनके सामने खड़ा हो गया। मदोन्मत हाथी अब बिलकुल शांत था।

नगर की संपूर्ण जनता भयभीत दृष्टि से यह सब दृश्य देख रही थी। हाथी को निर्मद हुआ देख सभी के हृदय हर्ष से खिल गए। उनके सिर से एक भयानक संकट टल गया।

जनता ने जम्बूकुमार के इस साहस की प्रशंसा की और राजा बिंबसार के राज्य दरबार से इस वीरता के उपलक्ष्य में उन्हें योग्य सम्मान मिला।

जम्बूकुमार की वीरता पर नगर का धनिक श्रेष्ठी समाज मुग्ध था। प्रत्येक धनिक उनके साथ अपना संबंध स्थापित करने को इच्छुक था। सुन्दरी कन्याएं उनका स्नेह पाने को लालयित थी।

जंबूकुमार वैवाहिक बंधन में नही पड़ना चाहते थे। उनका हृदय आजीवन अविवाहित रहकर

विश्वकल्याण करने का था। उनकी भावनाएं महान थी। वे अपनी शक्ति का वास्तविक उपयोग करना चाहते थे। वे चाहते थे जीवन का प्रत्येक क्षण संसार का मार्गप्रदर्शक बने। जगत को सद्धर्म का संदेश सुनाने की उनकी उत्कट अभिलाषा थी। माता पिता उनके विचारों से परिचित थे, लेकिन वे शीघ्र से शीघ्र उन्हें वैवाहिक बंधनों में बंधा हुआ देखना चाहते थे। उनके विचारों को सहयोग मिला। श्रेष्ठी सागरदत्त, कुबेरदत्त, वैश्रवणदत्त और श्रीदत्त ने उन पर अपना प्रभाव डाला। चारों ने उन्हें चारों ओर से बांधना चाहा अंत में वे सफल हुए। जम्बूकुमार की हार्दिक मनोभावनाओं को जानते हुए भी ऋषभदत्त ने उन्हें विवाह का वचन दे डाला। उनका विवाह शीघ्र ही होने वाला था किन्तु इसी समय इसके बीच में एक घटना ने रंग में भंग कर दिया।

(2)

केरलपुर के राजा मृगाङ्क थे। उनकी सुंदरी कन्या विलासवती का वाग्दान राजा बिंबसार से हो चुका था। राजा मृगाङ्क उन्हें अपनी कन्या देने को तैयार थे। कन्या भी उन्हें हृदय में अपना पति स्वीकार कर चुकी थी। यह विवाह सम्बंध शीघ्र ही होने वाला था। इसी समय एक और घटना घटी।

रत्नचूल एक अभिमानी युवक था। राजा मृगांक पर उसकी शक्ति का प्रभाव था। वह था भी शक्तिशाली, उसने अपनी शक्ति से विलासवती को अपनी पत्नी बनाना चाहा। उन्होंने राजा मृगांक के पास अपना संदेश भेजकर विलासवती को अपने लिए मांगा। मृगांक अपनी कन्या राजा बिंबसार को दे चुके थे। रत्नचूल की शक्ति का उन्हें परिचय था, लेकिन किसी हालत में उन्हें यह बात पसंद न थी। उसने अपनी कन्या देने से इनकार कर दिया।

रत्नचूल को मृंगाक की यह बात असह्य हो उठी। उसने अपनी संपूर्ण सैना लेकर केरलपुर पर चढ़ाई कर दी।

मृगांक इस युद्ध के लिये तैयार नहीं था। उसकी शक्ति नहीं थी कि वह रत्नचूल का मुकाबला कर सके। इदसलिये इस संकट के समय अपनी आत्मरक्षा के लिए राजा बिंबसार से उसने सहायता मांगी। बिंबसार ने सहायता देना तो स्वीकार कर लिया लेकिन वे चिंता में पड़ गए कि रत्नचूल जैसे वीर के मुकाबले में किस बहादुर को भेजा जाय। लेकिन उनके पास अधिक सोचने के लिए समय नहीं था, उन्हें शीघ्र ही सहायता भेजनी थी। अपने वीर सैनिकों को बुलाकर उनसे इस कार्य का वीड़ा उठाने के लिए उन्होंने कहा। सभी वीर सैनिक मौन थे, जंबूकुमार भी इस सभा में निमंत्रित थे। वीरों की कायरता पर उन्हें रोष आ गया वे अपने स्थान से उठे और बीड़ा उठाकर उसे दवा लिया।

राजा बिंबसार ने उनके इस साहस की प्रशंसा की और उनके सिर पर वीर पट्ट बाँधकर मृगांक की सहायता के लिए वीर सैनिकों को साथ ले जाने की आज्ञा दी। जंबूकुमार को अपनी भुजाओं पर विश्वास था। वे अपनी वीरता के आवेश में बोले। महाराज ! मुझे आपके सैनिकों की आवश्यकता

नहीं, मेरी भुजाएं ही मेरी सेना है । मैं अकेला ही सहस्त्र सैनिकों के बराबर हूं। मैं अकेला ही जाता हूं। आप निश्चित रहिए, देखिए आपके आशीर्वाद से वह अभिमानी रत्नचूल अभी आपके चरणों पर लौटता है।

जंबुकुमार अकेले ही रत्नचूल के शिविर की ओर चल दिए। अपनी सैना के बीच में बैठा हुआ रत्नचूल पोदनपुर के किले पर आक्रमण करने की आज्ञा दे रहा था। इसी समय जंबुकुमार उनके सामने बेधड़क पहुंचा। उसने न तो उन्हें प्रणाम ही किया और न आदर सूचक कोई शब्द कही कहा। अकड़कर उनके सामने खड़ा हो गया।

एक अपरिचित युवक को इस तरह बेधड़क अपने सामने खड़ा देखकर रत्नचूल को बहुत क्रोध आया। उसने तेजस्वर मे कहा- अभिमानी युवक तू कौन है ? अपनी मृत्यु को साथ लेकर यहां किस उद्देश्य से आया है ? जंबुकुमार ने कहा- मैं राजा मृगाङ्क का दूत हूं। मैं आपको उनका यह संदेश सुनाने आया हूं। आप वीर हैं वीरों का कार्य किसी की वाग्दता कन्या का अपहरण करना नहीं है। आपको अपने इस गलत शब्दों को छोड़ देना चाहिए और इस अपराध के लिए क्षमा मांगना चाहिए।

रत्नचूल इन शब्दों को सुनकर भड़क उठा। वह बोला-दूत तुम वेशक वाक्य सूर हो। मेरे सामने इस तरह निःशंक बोलना अवश्य ही साहस का कार्य है। तुम्हारा मूर्ख राजा मेरी वीरता से अपरिचित नहीं है। लेकिन दुर्भाग्य उसका साथ दे रहा है। इसीलिए उसने तुम्हें मेरे पास ऐसा कहने को भेजा है। दूत तुम अवध्य हो, जाओ और उस कायर मृगांक को युद्ध के लिए भेजो।

राजा मृगांक आप जैसे व्यक्ति के सामने युद्ध करने को आयेगे ऐसी आशा छोड़ देना चाहिए। आपसे युद्ध करने के लिए तो मैं ही काफी हूं, यदि आपको युद्ध की बढ़ी हुई अपनी प्यास बुझाना है तो आइए हम और आप निपट लें। यह कहकर वीर जम्बुकुमार ताल ठोककर रत्नचूल के सामने खड़ा हो गया।

रत्नचूल ने अपने सैनिकों को जम्बुकुमार पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। सैनिक आज्ञा पालन करने वाले ही थे कि पलक मारते ही जंबुकुमार रत्नचूल से भिड़ गए। सैनिक देखते ही रह गए और दोनों में भयंकर युद्ध होने लगा, यह युद्ध इतना शीघ्र जिसकी किसी को संभावना नहीं थी। जंबुकुमार अपने तीव्र शस्त्र के प्रहार से ही रत्नचूल को धराशायी कर दिया। सैनिकों ने देखा, रत्नचूल जंबुकुमार के बंधन में आ चुका है।

रत्नचूल के बंधन युक्त होते ही सैनिकों ने शस्त्र डाल दिए। जंबुकुमार विजय के साथ साथ राजा मृगांक और विलासवती को भी अपने साथ राजगृह ले गए। वहां बड़े उत्सव के साथ राजा बिंबसार का विलासवती से, पाणिगृहण हुआ। इस विजय से वीर जंबुकुमार का गौरव चौगुना बढ़ गया।

(3)

सुधर्माचार्य उस दिन राजगृह के उद्यान में आए थे। उनका कल्याणकारी उपदेश चल रहा था।

जंबुकुमार के विरक्त हृदय ने उनका उपदेश सुना। धर्म के दृढ प्रचारक बनने की उनकी भावना जागृत हो उठी। युद्ध क्षेत्र का विजयी वीर, आत्म विजयी बनने को तड़प उठा। आचार्य से उसने साधु दीक्षा चाही।

साधु जानते थे जंबुकुमार अन्तस्थल को, लेकिन अभी थोड़ा समय उसे वे और देना चाहते थे अंदर सोई हुई गुप्त लालसा को जगा कर वे उसे निकाल देना चाहते थे। उन्होंने अवसर दिया। वे बोले- जम्बुकुमार ! तुम्हारा अभी एक कर्त्तव्य शेष है वह तुम्हें करना होगा उसके बाद तुम दीक्षा लेने के अधिकारी हो सकेगे। तुम्हारे माता पिता के अंदर तुम्हारे लिए जो मोह है उसे मारना होगा। जिन कन्याओं का तुम्हारे साथ वाग्दान हो चुका है जिनका ममत्व तुम्हारे जीवन के साथ बंधा हुआ है, उसे तोड़ना होगा। तुम्हें उनके मन को जीतना होगा। मानता हूं तुमने अपनेमन को मार लिया है लेकिन तुम्हें दूसरे के मन को जीतना होगा तब तुम संयम के पथ पर चल सकोगे। यह तुम्हारी कठोर परीक्षा का समय है। तुम जाओ, अपने माता पिता और वाग्दता कन्याओं से आज्ञा लेकर आओ तब मैं तुम्हें साधु दीक्षा दूंगा-

आचार्य का आदेश था। उसे तो पालन करना ही होगा। जम्बुकुमार को इस परीक्षण में उत्तीर्ण होना ही होगा। परीक्षण कठोर था लेकिन उसमें तो पूरे नंबर प्राप्त करना होंगे। वे उसी समय अपने घर पहुंचे।

(4)

इस ओर जंबुकुमार का विवाह सभारंभ चल रहा था। सेठ अर्हदत्त विवाह के हर्ष में तन्मय हो रहे थे। विषम समस्या थी। हर्ष के महासागर में तूफा उठने को था। तरंगें उठीं। जम्बुकुमार ने अपने मनोगत विचारों को पिता जी पर प्रकट किया। इस हर्षोत्सव में वे किसी तरह का आघात नहीं चाहते थे। बोले- पुत्र इस उत्सव को समाप्त होने दो, जो कन्याएं अपने जीवन की बाग डोर तुम्हारे सामने फेंक चुकी हैं उसे तुम्हें अब उठाना ही होगा, विवाह बाद तुम्हारा जो कर्त्तव्य हो उसे निश्चित करना।

पिता के हर्षोन्मत्त हृदय को जम्बुकुमार एक दम तोड़ना नहीं चाहते थे। लेकिन वे अपना कर्त्तव्य भी निश्चित करना चाहते थे।

बोले-पिताजी ! आप विवाह की बात करते हैं मुझे बंधन में डालना चाहते हैं लेकिन यह बंधन इतना कमजोर है कि मेरे छूते ही टूट जायेगा। फिर टूटे हुए बंधन का क्या होगा, यह भी जानते हें ?

अर्हदत्त कोई तर्क नहीं सुनना चाहते थे। वे तो बंधन कर देना चाहते थे, फिर वे देखना चाहते थे, बन्धन मजबूत है या कमजोर। उनका विश्वास था, बंधन कसते ही इतना मजबूत हो जायेगा कि उसे तोड़ सकना कठिन होगा। वे बोले-यही तो मैं देखना चाहता हूं कि तुम बंधन में बंधकर फिर उसे तोड़ों मैं उसी शक्ति का परीक्षण चाहता हूं और तुम्हें यह परीक्षण देना होगा।

उनका हृदय एक ही बार में सारे बंधन तोड़ देना चाहता था लेकिन वे रूके। सोचा एक कदम रुककर ही देखूं फिर आगे तो बढ़ना ही है। इस रुकने से यदि किसी को संतोष हो तो उसे भी होने दूं। वे विवाह बंधन में आबद्ध हो गए।

(5)

आज कन्याओं के सौभाग्य की रात्रि थी, उन्हें अपने भाग्य का पांसा फेंककर आज देखना था। सजा हुआ कमरा, अगुरु की गंध से महकता हुआ, मादक चित्र चारों ओर टंगे थे। वीणा की झंकार के स्वर एक साथ झंकरित हो उठे। चारों बालाओं ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया आज वे मानव के मन को जीतना चाहती थी। कामदेव की शरण लेकर विजयी कामदेव को अपने अमोघ शस्त्रों पर विश्वास था, रुप यौवन उनका साथी था। झलकता हुआ मादक प्याला सामने था, गले से उतारने भर की कसर थी।

मौन जंबुकुमार ने इस वातवरण को देखा, देखकर वह क्षुब्ध नहीं हुआ। इस समय एक मृदु झंकार उठी, उसने देखा, दो पतले लाल होंठ हिल रहे थे, प्रियतम ! एक बार अनंत जन्मों के इस सुकृत पुण्य को देखिए। कितने वर्षों की तपस्या का फल यह आपको मिल रहा है, फिर आप आगे के लिए और संचय का लोभ क्यों कर रहे हैं। उपलब्ध को न भोगना और संचय पर ही दृष्टि रखना यह तो महाकृपण कार्य हे। आप जैसे बुद्धिमान वैश्यकुमार को यह बात हम क्या सिखलाएं। यह तो आपको स्वयं जानना चाहिए, प्राप्त को भोगना और आगे संचय के लिए कर्त्तव्य शील होना ही लाभ का उद्देश्य है। प्राप्त त्याग कर अप्राप्त की आशा करना उसी तरह है जिस तरह घड़े के पानी को फेंककर उमड़ने वाले धन से जल की आशा करना। अप्राप्त तो गया हुआ है, उसके लिए प्राप्त को भी जाने देना कहां की बुद्धिमत्ता है ?

जम्बुकुमार ने गंभीर होकर कहना शुरु किया -

जिसे तुम प्राप्त कहती हो वह तो कुछ अपना है ही नहीं । दूसरों के धन को अपना मानकर उसे भोगना यह तो अमानत में खयानत करना है। हमने अपना अभी प्राप्त ही क्या किया है ? उसी की प्राप्ति के लिए ही तो मैं यह पराया छोड़ रहा हूं। मैं पुण्य की अमानत स्वीकार नहीं करना चाहता। अमानत वही स्वीकार करते हैं जो कुछ अपना नहीं कमा सकते। मैंने अपने धन की कुछ झांकी देखी है, उसकी चमक के आगे यह पुण्य के द्वारा दीपित क्षणिक प्रभा ठहरती ही नहीं है। तुमने उस प्रभा के दर्शन ही नहीं किये हैं। यदि तुम उस वास्तविक प्रकाश के दर्शन करना चाहती हो तो मेरे साथ उस प्रकाश मार्ग की ओर चलो। फिर तुम उस प्रकाश को देख सकोगी जिससे सारा विश्व प्रकाशित होता है। इस क्षीण विलास की चमक मेरे नेत्रों को चकाचौंध नहीं कर सकती। इसमें विलासी पुरुष ही आकर्षित हो सकते हैं- केवल वही पुरुष जिन्होंने आत्म दर्शन नहीं किया है।

तुम्हारा यह मादक यौवन और यह विलास किसी कामी पुरुष को ही तृप्ति दे सकता है मुझे नहीं। मेरी वासना तो मर चुकी है, उसे जीवित करने की शक्ति अब तुममें नहीं है। निष्फल प्रयत्न करके मेरा कुछ समय ही ले सकती हो इसके अतिरिक्त तुम्हें मुझसे कुछ नहीं मिलेगा।

बालाओं ! तुम्हें मेरे द्वारा निराश होना पड़ा रहा है, इसमें मेरा अपराध कुछ नहीं है। मेरा पथ पहले ही निश्चित था। मैं अपने निश्चित पथ पर चलने के लिए ही अग्रसर हो रहा हूं। तुम्हें यदि मेरे जीवन से स्नेह है यदि तुम मेरे जीवन को प्रकाशमय देखना चाहती हो यदि तुम चाहती हो कि मेरा जीवन तुम्हारी

विलास लीला तक ही सीमित रहकर सारे संसार का बने तो तुम मेरी अवरोधक न बनकर मुझे अपने बंधनों को मुक्त करने में मदद करो।

एक दिन के लिए बनी हुई बालापत्नियों ने अपने पति के अंत स्तल की पुकार सुनी। वह पुकार केवल शाब्दिक नहीं थी। यह किसी निर्बल आत्मा का दंभ नहीं था। वह एक बलवान आत्मा की दिव्य वाणी थी। बालाओं के हृदय को उसने बदल दिया। वे आगे कुछ कहने को असमर्थ थीं। अपने इस जीवन के स्वामी के चरणों पर उन्होंने मस्तक डाल दिया। करुण स्वर से बोली-स्वामी यह जीवन तो अब आपके चरणों पर अर्पित हो चुका है, उसे अब हम किसकी शरण में ले जाये आप हमारे मार्ग के दीपक हैं आप ही हमें मार्ग दिखलाइए। हमारा कर्त्तव्य क्या है यह हमें समझाइए।

जम्बुकुमार का हृदय एक भार से हल्का हो चुका था। अब तक जो उनके लिए बोझ थी वही उनका सार्थक ही बन रहा था। उनके सामने एक ही पथ था। उसी पथ पर चलने का उन्होंने आदेश दिया।

मार्ग साफ हो चुका था। उस पर चलने भर का विलंब था। माता पिता अब उनके अवरोधक नहीं रह गये थे।

विपुलाचल पर गौतमस्वामी केवली की शरण में सब पहुंचे माता,पिता, पत्नियां विद्यतु चोर और उसके साथी सब एक ही पथ के पथिक थे।

चौबीस वर्ष के तरुण युवक ने गणाधीश गौतम के चरणों में अपने जीवन को डाल दिया। गौतम ने उनके विचारो की प्रशंसा की और लोक कल्याण का उपदेश दिया। गणाधीश का आशीर्वाद लेकर वे अपने गुरु सुधर्माचार्य के निकट पहुंचकर बोले- गुरुदेव ! क्या मेरी परीक्षा समाप्त हो चुकी है या अभी कुछ और मंजिले तय करनी हैं।

गुरुदेव उन पर प्रसन्न थे। बोले-जंबुकुमार ! तुम तेजस्वी त्यागी हो। तुम्हारा सांसारिक कर्त्तव्य समाप्त हो चुका है। अब मैं तुम्हें दीक्षा दूंगा। सुधर्माचार्य ने उन्हें साधु दीक्षा उनके साथ पिता अर्हदत्त, विद्यतु चोर और उसके 500 साथियों ने भी साधु दीक्षा ली।

जंबुकुमार ने उग्र तपश्चरण किया। तपश्चर्या के प्रभाव से उन्हें पूर्ण श्रुतज्ञान प्राप्त हुआ। जिस दिन उन्हें अद्भुत शास्त्र ज्ञान उपलब्ध हुआ था उसी दिन उनके गुरु सुधर्माचार्य को कैवल्य प्राप्त हुआ।

जंबुकुमार तपश्चर्य के क्षेत्र में अब बहुत आगे बढ़ गये थे। उन्होंने अपने बढ़े हुए तप के प्रभाव से कर्म बंधन को कमजोर कर लिया था। पैंतालीस वर्ष की आयु में जंबुकुमार को कैवल्य लाभ हुआ। कैवल्य के प्रभाव से आत्मदर्शन हुआ।

चालीस वर्ष का जीवन धर्मोपदेश और संसार को शांति सुख के पथ प्रदर्शन में व्यतीत हुआ।

कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा को वे मथुरापुरी के उद्यान में अपने योगों का निरोध कर बैठे, इसी समय उनका आत्म नश्वर शरीर से निकल कर मुक्ति स्थान को पहुंचा। जनता ने एकत्रित होकर उनका गुणगान किया और उनकी पुण्य स्मृति को अपने हृदय में धारण किया

तपस्वी - वारिषेण

(आत्मदृढ़ता के आदर्श)

(1)

मगधसुन्दरी राजगृह की कुशल और प्रवीण वेश्या थी। वह अत्यंत सुन्दरी तो थी ही लेकिन उसकी कामकला चातुर्यता और हावभाव विलासों की निपुणता ने उसे और भी विमुग्ध कर दिया था- उसके भावपूर्व गायन, मृदु मुस्कान और तिरछी चितवन पर अनेक युवक विवेकशून्य हो जाते थे अपना हृदय और सर्वस्व समर्पित कर देते थे।

धनिक और विलासप्रिय मानवों को अपने विलास से भरे कृत्रिम लावण्य के ऊपर आकर्षित करने में वह अत्यंत निपुण थी। वह किसी को मधुर वाक्य विलास से, किसी आशापूर्ण कटाक्षों से, किसी को नयनाभिरंजित नृत्य से और किसी को स्निग्ध आलिंगन द्वारा अपने रूप जाल में फंसा लेती थी और उनका धर्म और वैभव समाप्त कर देती थी।

राजगृह में उसके अनेक प्रेमी थी, लेकिन उसका वास्तविक प्रेम किसी पर नहीं था। उसके अनेक सौन्दर्योपासक थे, लेकिन वह किसी की उपासिका नहीं थी, उसकी उपासना केवल द्रव्य के लिए थी। उसके अनेक चाहने वाले थे, लेकिन वह केवल अपनी चाह की विक्रेता थी।

अपनी रूप की रस्सी में बांधकर उसने अनेक युवकों को दुर्व्यसन के गहरे गड्ढे में पटक दिया था। उस गर्त में से कोई मानव अपने स्वास्थ्य का स्वाहा कर अनेक रोगों का उपहार लेकर निकलता था, और कोई अपना संपूर्ण वैभव फूंककर पथ का भिखारी बनकर निकल पाता था। कोई न कोई उपहार पास किए बिना उसके द्वार से निकल जाना कठिन था।

उसकी सीधी, सरल किन्तु कपटपूर्ण बातों और उदीप्त विलास मंदिरा के पान से उन्मत्त, विवेकशून्य मानव, विषय सुख शांति की इच्छा रखते थे। उसके तीव्र, दाहक और प्रबल वेग से बहने वाले कृत्रिम प्रेम की भिक्षा चाहते थे और सौन्दर्य की उपासना मे तन्मय रहकर प्रसन्न होना चाहते थे। किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम था कि यह मायावीपन का जीवित प्रतिबिंब, दुर्गति का जागृत दृश्य, अधः पतन सर्वनाश और अनेक आपत्तियों का विधाता केवल धन वैभव खींचने का जाल है।

आज सबेरे मगध सुंदरी विलास वस्तुओं से पूर्ण अपनी उच्च अट्टालिका पर बैठी थी। इसी समय कोकिल की मनोमोहक को कूकने उसके सामने वसंत को मुग्ध कर सौन्दर्य को उपस्थित कर दिया, उसके हृदय में रागरंग और विलास की उदीप्त भावना भर दी। वह हृदयहारी वंसत की शोभा निरीक्षण के लोभ को संवरण नहीं कर सकती। मादक श्रृङ्गार से सजकर वसंत उत्सव मनाने के लिए वह राजगृह के

विशाल उपवन की ओर चल पड़ी। उपवन के नवीन वृक्षों पर विकसित हुए मधुर कुसुमों को देखकर उस विनोदिनी का हृदय खिल उठा। मधुर रस से भरे हुए पुष्प समूह पर गुंजार करते हुए मधुपों के मधुर नाद ने उसके हृदय को मुग्ध कर दिया। उपवन की प्रत्येक शोभा से उसका हृदय तन्मय हो उठा था। कोकिल का कलित कूंजन पक्षियों का मधुर कलरव और प्रेम का संदेश सुनाते हुए एक डाली से दूसरी डाली पर फुदकना, चहचाना हृदय को बरबस छीन रहा था।

उपवन के सजीव सौन्दर्य को देखते हुए उसकी दृष्टि एक दूसरी ओर जा पड़ी यह एक चमकता हुआ हार था जो श्रीकीर्ति श्रेष्ठी के गले में पड़ा हुआ था। मगध सुन्दरी का मन उसकी मोहक प्रभा पर मुग्ध हो गया। वह आश्चर्य चकित होकर विचार करने लगी। मैंने अब तक कितने ही धनिकों को अपने रूप जाल में फंसाया और उनसे अनेक अमूल्य उपहार प्राप्त किए, लेकिन इस तरह के सुंदर हार से मेरा कंठ अब तक शोभित नहीं हो सका, यह मेरे सौन्दर्य के लिए अत्यंत लज्जा की बात है। अब इस हार से कंठ सुशोभित होना चाहिए नहीं तो मेरा सारा आकर्षण और चातुर्य निष्फल होगा।

नारियों को अपनी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार बहुमूल्य वस्त्रों और आभूषणों से प्रकृति प्रेम हुआ करता है। अधिकांश महिलाएं चमकीले आभूषण और भड़कीले वस्त्रों को पहन कर ही अपने को सौभाग्य शालिनी समझती हैं। वेशक उनमे सद्गुणों के लिए कोई प्रतिष्ठा न हो, विद्या और कलाओं का कोई प्रभाव न हो, शील और सदाचार का कोई गौरव न हो, लेकिन वह केवल नयनाभिरंजित वस्त्र और आभूषणों से ही आपने को अलंकृतकर लेने पर ही कृत कृत्य समझ लेती हैं। अपने को संपूर्ण गुण सम्पन्न और महत्वशालिनी समझ लेने में फिर उन्हें संकोच नहीं होता। इसलिए ही नारी गौरव के सच्चे भूषण और अनमोल रत्न विद्या, कला, सेवा, संयम, सदाचार आदि सद्गुणों का उनकी दृष्टि में कोई महत्व नहीं रहता। संसार में यश और योग्यता प्राप्त करने वाले बहुमूल्य गुणों का वे कुछ भी मूल्य नहीं समझती, और न उनके पाने का उचित प्रयत्न करती हैं। वे हर एक हालत में अपने को कृत्रिमता से सजाने का ही प्रयत्न करती हैं। गहनों के इस बढ़े हुए प्रेम के कारण वे अपनी आर्थिक परिस्थिति को नहीं देखती वे नहीं देखती जेवरों से सजकर स्वर्ण परी बनने की इच्छा पूर्ति के लिए उनके पति को कितना परिश्रम करना पड़ता है, कितना छल और कपट करके अर्थ संग्रह करना पड़ता है। और वे किस निर्दयता से उनके उस उपार्जित द्रव्य को जेवरों की बलिवेदी पर बलिदान कर देती हैं। कितनी ही आभूषणप्रिय महिलाऐं अपनी स्थिति कोभी नहीं देखती और दूसरी धनिक बहनों के सुंदर गहनों को देखकर ही उनके पाने के लिए अपने पति और पुत्रों को सदैव पीड़ित किया करती है, और सुन्दर गृहस्थ जीवन को अपनी आभूषण प्रियता के कारण कलह और झगड़े का स्थान बना देती हैं।

आज कल विलास प्रियता और दिखावट का साम्राज्य है, चारो ओर आंखों में चकाचौंध कर देने वाली सभ्यता का बोलबाला है। आज संतानरक्षा, कलासंपादन, पाकशिक्षा आदि महिलोचित गुणों

की ओर महिला समाज का थोड़ा सा भी ध्यान नहीं है। समाज देश और राष्ट्र सेवा का तो वह नाम तक भी नहीं जानती। जो महिलाऐं अशिक्षित हैं वे कलह लड़ाई झगड़ा और आपस के विरोध में ही अपना जीवन बरबाद कर देती हैं, लेकिन वर्तमान शिक्षा के पालने में पली हुई शिक्षित महिलाओं के जीवन का भी कोई ध्येय नहीं है। उन्हें रात्रि दिन की बढ़ी हुई विलास प्रियता से ही छुटकारा नहीं मिलता। कृत्रिमता पराधीनता और फैशन के इतने जबर्दस्त बंधन में वे पड़ी हैं कि एक क्षण को भी अपने को वे उससे मुक्त नहीं कर सकती। अपने कृत्रिम सौंदर्य को चमकाने और बढ़ाने में वे अपने द्रव्य और स्वास्थ्य का बड़ी निर्दयता से बलिदान करने में नही हिचकतीं। उनके सौन्दर्य साधन के लिए करोड़ो रूपयों का विदेशी सामान खरीदना पड़ता है, लेकिन इतने पर भी उनकी सौन्दर्य लिप्सा समाप्त नहीं होती। हमेशा की बढ़ती हुई मांग से उनके संरक्षकों की नाक में दम आ जाता है। विलास प्रियता के अतिरिक्त उन्हें अपना कोई कर्तव्य नहीं दिखता उनकी इस मूर्खता के कारण बच्चों का पालन पोषण भी उचित रीति से नहीं हो पाता। वे शक्तिशाली और चारित्रवान नहीं बन पाते। धर्म भक्ति, और आत्म सुधार की बातें तो उनसे सैकड़ों कोस दूर रहती हैं। इस तरह आज की नारी रोगिणी, आलसी, निर्बल और कर्तव्य हीना बनकर अपने जीवन को नष्ट कर रही है।

मगध सुन्दरी विलास प्रिय वेश्याथी उसका हार के सौन्दर्य पर मुग्ध होना कोई महत्व की बात नहीं थी। हार के आकर्षण ने उसके मन पर विचित्र प्रभाव डाला। अब उस जगह वह एक क्षण भी स्थिर नहीं रह सकी। हार के पाने के इच्छा उसके हृदय में बलबती हो उठी अपने घर आकर वह उदासीन होकर अपनी शैय्या पर लेट गई।

(2)

विद्यतु राजगृह का प्रसिद्ध चोर था, अपने हस्त कौशल और चौर्य कला में वह अत्यंत दक्ष था। जिस वस्तु के पाने की इच्छा वह करता था उसे वह प्राप्त करके ही छोड़ता था। अपनी कुशलता के कारण उसे अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता था और न कभी अपने कार्य में वह असफल होता था। वह अपने उद्देश्य पर दृढ़ रहता था उद्देश्य पूर्ति के लिए उसके पास आसुरी शक्ति साहस और दृढ़ता थी। उसे अपनी बुद्धि और साहस पर विश्वास था। अनेक धनिकों की बहुमूल्य वस्तुओं का उसने अपहरण किया था लेकिन आज तक किसी के पकड़ने में नहीं आया।

यह बात अवश्य थी कि नगर की असंख्य बहुमूल्य संपत्ति का हरण करने पर भी उसके पास कुछ नहीं था, वह अब तक निर्धनता का आगार ही बना था। खुले दिल से वह उन वस्तुओं का उपभोग भी नहीं कर सकता था। उसकी अतृप्त लालसा सदैव जागृत रहा करती थी। सच है अन्याय और छल से पैदा किया हुआ धन शारीरिक और मानसिक तृप्ति भी नहीं दे सकता और न उसका उचित उपयोग और उपभोग भी हो सकता है। संतोष, तृप्ति और आतम सुख की कल्पना करना तो उससे व्यर्थ ही है। वह

पाप, अशांति और असंतोष की भीषण ज्वाला जलाता है और अंत में स्वयं खाक हो जाता है।

विद्युत का मगध सुन्दरी पर हार्दिक स्नेह था व उसके जीवन मरण की समस्या थी। उसकी इच्छा पर वह नाचता था, उसकी इच्छापूर्ति के लिए वह अपने को मृत्यु के मुख में डालने को भी तैयार रहता था। अपने जीवन की बाजी लगाकर वह उसके लिए बहुमूल्य उपहार लाकर संतुष्ट करता था। मगधसुन्दरी भी उस पर प्रसन्न थी। अपनी कृत्रिम रूपराशि पर लुभाकर वह उससे इच्छित कार्य करा लेती थी।

रात्रि ने अपने पूर्ण अंधकार का साम्राज्य स्थापित कर लिया था। मंद प्रकाश के साथ तारागण ही उसके प्रभाव को कुछ कम कर रहे थे। दिन भर के परिश्रम से संतप्तमान व निद्रा की शांतिदायिनी गोद की शरण लेने को उत्सुक हो रहे थे। इसी समय दीपकों की तीक्ष्ण ज्योति से चमकती हुई मगधसुंदरी की अट्टालिका पर विद्युत ने धड़कते हुए हृदय से प्रवेश किया वह सोच रहा था- मैं अभी जाकर उस सुन्दरी को मुग्ध कर कटाक्षपात से अपने नेत्रों को तृप्त करूंगा। उसका हर्षित हुआ मुखमंडल मुझे देखकर कितनी प्रसन्नता से चमक उठेगा। मेरे पहुंचते ही उसके विलास की सीमा चरम हो उठेगी। अहा! मुझ पर वह कितना प्यार करती है। अनेक वैभवशाली व्यक्तियों से भरे हुए नगर में उसके इतने अधिक स्नेह का वरदान मुझे ही प्राप्त है। उसकी बातों में कितना माधुर्य है, उसका मृदुहास्य कितना मुग्धकर है, उसका सौन्दर्य कितना आकर्षक है।

आज वह अन्य दिन की अपेक्षा मुझ पर अधिक प्रसन्न होगी। आज मैं कितना बहुमूल्य रत्न लाया हूं। इसकी चकाचौंध पर उसके नेत्र मुग्ध हो जायेंगे। उसका प्रत्येक अङ्ग हर्ष के वेग से पागल हो उठेगा। विचार की मधुर तरङ्गे उमड़ातें हुए वह उसके विलासगृह में पहुंचा।

उसने बहुमूल्य रत्न मगधसुंदरी के सामने रख दिया और उसकी प्रसन्न मुखमुद्रा देखने के लिए उत्कंठित हो उठा। लेकिन उसके आश्चर्य का कुछ ठिकाना नहीं रहा, उसने देखा अपनी शैय्या पर पड़ी हुई मगधसुंदरी ने उस बहुमूल्य लाल कीओर मुंह उठाकर भी नहीं देखा, और निराशभाव से उसी तरह पड़ी रही। विद्युत का हृदय उसकी इस अवहेलना में धड़कने लगा। वह सोचने लगा-क्या कारण है जिससे इसके मन पर उदासीनता का इतना गहरा प्रभाव पड़ रहा है। क्या मुझसे इसके प्रतिकूल कोई कार्य बन पड़ा है जो मेरी ओर यह आंख उठाकर भी नहीं देखती, वह अत्यंत मधुर स्वर से बोला-प्रिये! प्रभा से चमकते हुए तुम्हारें मुखमण्डल पर आज विषाद की यह कालिमा क्यों झलक रही है। मुझसे कहो, किस चिंता राहु ने तुम्हारे चन्द्रमुख का ग्रास किया है। इस विषाद भरे तेरे मुखमण्डल को देखने के लिए मैं एक क्षण भी समर्थ नही। तेरी यह निराशा मेरे हृदय के टुकड़े टुकड़े कर रही है। अपने हृदय की चिंता मुझ पर शीघ्र प्रकट कर, मैं उसे शीघ्र नष्ट करने का प्रयत्न करूंगा।

अपने ऊपर अत्यंत अनुरक्त हुए विद्युत के सहानुभूति सूचक इन शब्दों को सुनकर मगधसुंदरी का

उदास मुख कुछ समय को चमक उठा, उसके नेत्रों पर एक मधुर मुस्कान डालती हुई मगधसुंदरी बोली-प्राणवल्लभ ! तुम मुझ पर जितना प्यार करते हो वह तुम्हारा केवल दंभ मात्र ही प्रतीत होता है। मुझे तुम अपने प्राण से प्रिय कहने का दावा पेश करते हो लेकिन मैं तो तुम्हारे इस दावे को कोरा शब्द जाल ही समझती हूं। मैं समझती हूं तुम मुझ पर हृदय से प्यार नहीं करते, यदि तुम मुझे चाहते होते तो गहरी निराशा की खाई में मुझे क्यों गिरना पड़ता ?

विद्यतु के सिर पर अचानक बिजली गिर पड़ी। उसने धड़कते हुए हृदय से कहा-प्रियतमे ! तू यह क्या कह रही है ? मैंने आज तक तेरी किसी भी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। तेरी प्रत्येक इच्छा पूर्ण करने के लिए मैंने अपने जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं समझा फिर मेरे प्रेम पर तुझे इतना अविश्वास क्यों हो रहा है ? मुझे अपने प्राणों से भी इतना स्नेह नहीं है जितना तुझसे है। फिर तुझे इतनी निर्दय बनकर मुझ पर इस तरह के वाक्य वाणों की वर्षा नहीं करना चाहिए। मैं तेरी इच्छाओं का दास हूं बोल ! तेरी ऐसी कौन सी इच्छा है जिसने तुझे इतना निराश और हताश बना डाला है। विद्युत के रहते तेरी इच्छाएं पूर्ण न हो सकें यह मेरे लिए कलंक की बात है।

मगध सुंदरी विद्युत पर अपना प्रभाव पड़ते देखकर और भी अधिक मृदु मुस्कान से बोली प्रियतम ! मैं तुम्हारे ऊपर अविश्वास नहीं करती हूं। मैं यह जानती हूं तुम मेरे लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने को तैयार रहते हो, और अनेक बहुमूल्य वस्तुएं उपहार में देते रहते हो, लेकिन इतना सब कुछ होने पर मेरा कंठ श्रीषेण श्रेष्ठी के बहुमूल्य हार से अब तक सूना ही है। ओह ! उस चमकदार हार की प्रभा अब तक मेरी आंखों के सामने नृत्य कर रही है। यदि उसे पहनकर मैं तुम्हारे सामने आती तो तुम मेरे सौन्दर्य को देखते ही रह जाते। यदि तुम्हारे जैसे कुशल प्रियतम के होते हुए भी मैं वह हार नहीं पा सकी तो मेरा जीना बेकार है। प्रियतम ! बोलो क्या वह हार तुम मेरे लिए ला सकते हो ? आह ! यदि वह सुन्दर हार मैं पा सकती यह कहते हुए उसके मुंह पर फिर एक विषाद की रेखा नृत्य करने लगी।

विद्युत ने उसे सान्त्वना देते हुए दृढ़ता के स्वर में कहा-ओह प्रियतमें ! इस साधारण कार्य के लिए इतनी अधिक चिंता तूने क्यों की ? मैं समझता था इतनी लम्बी भूमि का अंदर कोई बड़ा रहस्य होगा। लेकिन यह तो मेरे बाएं हाथ का खेल है। उस तुच्छ हार के लिए इतनी बैचेनी हो रही है ! तू उसे अब दूर कर विद्युत के हस्त कौशल को और साथ ही श्रीषेण श्रेष्ठी के उस चमकते हुए हार को अपने गले में पड़ा अभी ही देखेगी।

मगधसुन्दरी हर्ष से खिल उठी थी, उसने पूर्णेन्दु की हंसी विखेरते हुए कहा-प्रियतम् ! अहा ! आप वह हार मुझे ला देंगे ? आप अवश्य ही ला देंगे। आप जैसे प्रियतम होते मैं उस हार से कैसे वंचित रह सकती हूं ? हार देकर आप मेरे हृदय के सच्चे स्वामी बनेंगे। प्रियतम् ! आज आपके सच्चे प्रेम की परीक्षा होगी। मैं देखती हूं कितने शीघ्र मेरा हृदय हार से विभूषित होता है।

विद्युत अब एक क्षण भी वहां नहीं ठहर सका। हार हरण के लिए वह उसी समय श्रीषेण श्रेष्ठी के महल की ओर चल पड़ा। उसने अपनी कला का परिचय देते हुए श्रेष्ठी के शयनागार में प्रवेश किया। श्रीषेण के गले का चमकता हुआ हार उसके हाथ में था। हार लेकर वह महल के नीचे उतरा। उसका दुर्भाग्य आज उसके पास ही था। नीचे उतरते हुए राज्य सैंनिकों ने उसे देख लिया। विद्यतु ने भी उन्हें देखा था। उसका हृदय किसी अज्ञात भय से धड़क उठा। लेकिन साहस और निर्भयता ने उसका साथ दिया, नीचे उतरकर अब वह राज पथ पर था।

विद्युत ने हार चुरा तो लिया लेकिन वह उसकी चमकती हुई प्रभा को नहीं छिपा सका। उसके हाथ में चमकते हुए हार को देखकर सैनिक उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़े। सैनिकों को अपने पीछे दौड़ता देख विद्युत भी अपनी रक्षा के लिए तीव्रगति से दौड़ा। भागने में सिद्धहस्त था। प्रत्येक मार्ग उसका देखा हुआ था। वह इधर उधर से चक्कर काटता सैनिकों को धोखा देता हुआ जन शून्य श्मशान के पास पहुंचा। उसने अपने को बचाने का भरसक प्रयत्न किया था। लेकिन आज उसका सारा कौशल बेकार था वह अपने को बचा नहीं सका। सैनिक उसके पीछे तीव्रगति से दौड़े हुए आ रहे थे। उसने साहस करके पीछे की ओर देखा सैनिक उसके बिलकुल निकट आ चुके थे। अब वह सैनिकों के हाथ पड़ने को ही था-उसका जीवन अब सुरक्षित नहीं था, इसी समय दैव ने उसकी रक्षा की एक उपाय उसके हाथ लग गया, उसे अपने को बचाने के प्रयत्न में सफलता मिली। पास ही एक वृक्ष के नीचे राजकुमार वारिषेण योग साधन कर रहे थे, उसने उस बहुमूल्य हार को उनके सामने फेंक दिया और स्वयं वे पास के पेड़ों की झुरमट में जा छिपा।

(3)

राजकुमार वारिषेण राजगृह के प्रसिद्ध नरेश बिंबसार के प्रतापशाली पुत्र थे। माता चेलिनी द्वारा उन्हें बाल्यावस्था से ही धर्म और सदाचार संबंधी उच्चकोटि की शिक्षा उन्हें मिली थी। रानी चेलना उच्चकोटि की धार्मिक प्रतिभाशाली महिला थी, पथभृष्ट हुए राजा बिंबसारको उन्होंने धर्म के श्रेष्ठ मार्ग पर लगाया था। विदुषी और धर्मशीला माता के जीवन का प्रभाव वारिषेण के कोमल हृदय पर पड़ा था।

बालकों के जीवन की सच्ची संरक्षिका और उसे सुयोग्य बनाने वाली सर्वश्रेष्ठ शिक्षिका उसकी जननी ही है। पुत्र को जो शिक्षा जननी बाल्यावस्था से ही सरलतापूर्वक हंसते और खेलते हुए देखकर उसके जीवन को मधुर और सुखमय बना सकती है उसकी पूर्ति सैकड़ों शिक्षिकाओं द्वारा भी नहीं हो सकती। माता पिता के आचरणों को बालक बाल्यावस्था से ही ग्रहण करता है। पिता की अपेक्षा बालक को माता के संरक्षण में अपना अधिक जीवन व्यतीत करना पड़ता है। बालक का हृदय मोम के सांचे की तरह होता है, माता जिस तरह के चित्र उसके मानस पटल पर उतारना चाहे उस समय आसानी से उतार सकती है। बालक माता के प्रत्येक संस्कार उसके आचरण, विचार और संकल्पों का अपने

अंदर एक सुन्दर चित्र बनाता रहता है, वह जो उस समय उसका दायरा केवल माता की गोद तक सीमित रहता है उसके चारों ओर वह जिन विचारो के रंगों को पाता है उन्हीं से अपने विचारों के धुंधले चित्रों को चित्रित करता है। समय पाकर उसके वही धुंधले चित्र वही अपरिपक्व विचार एक दृढ़ संकल्प स्थान ग्रहण कर लेते हैं। वही संकल्प उसके जीवनसाथी होते हैं। समय की गति और अनुकूल वायु उन्हीं विचारों को जीवन देकर पुष्ट करती है।

विदुषी चेलिनी इस मनोविज्ञान को जानती थी। उसने वारिषेण के जीवन को पवित्रता के सांचे में ढालने का महान प्रयत्न किया था। उसने उस वातावरण से अपने पुत्र को बचाने का प्रयत्न किया था जिसमें पड़कर बच्चों का जीवन नष्ट हो जाता है।

अधिकांश महिलाएं अपने बालकों को आडम्बर में मग्न रखकर उनके जीवन को विलास मय बना देती हैं। श्रृंगार और बनावट द्वारा उन्हें हाथ का खिलौना ही बनाए रहती हैं। जरा जरा सी बातों में उन्हें डरा धमकाकर और भूत का भय दिखाकर उनका हृदय भय से भर देती हैं। विद्या, कला, नीति और सदाचार के स्थान पर असभ्यतापूर्ण विदेशी श्रृङ्गार और बनावट से उनका मन और शरीर सजाती रहती है। उनके खाने के लिए शुद्ध पवित्र वस्तुएं न देकर बाजार की सड़ी गली मिठाइयों और नमकीनों की चाट लगाकर उन्हें इन्द्रिय लोलुप बनाती हैं। भृष्ट, दुराचारी, व्यसनी तथा विवेकहीन सेवकों की संरक्षता में देकर उनकी उन्नति और विकास मार्ग बंद कर देती हैं। उन दुर्व्यसनी सेवकों से वह गंदी गालिया सीखते हैं। अपवित्र आचरणों से अपने हृदय को भरते हैं और अपने जीवन को निम्नतर बनाते हैं। उनके हाथ में जीवन विकसित करने वाली पवित्र पुस्तकें न देकर उन्हें जेवरों से सजाती हैं, विद्या और ज्ञान संपादन की अपेक्षा वे खेल को ही अधिक पसंद करती हैं। विदेशी खिलौनों और भड़कदार भूषणों के खरीदने में जितना द्रव्य वे बरबाद करती हैं उसका शतांश भी उसके ज्ञान संपादन में नही करतीं। वे यह भी नहीं देखतीं कि बालक दुर्व्यसनपूर्ण खेल और असभ्य क्रीड़ाओं में मग्न रहकर अपना जीवन नष्ट कर रहा है। वे अपने अनुचित प्यार के सामने बालको के वास्तविक जीवन चित्र का दर्शन ही नहीं कर पातीं।

विदुषी चेलिनी ने अपने पुत्र को बालपन से ही सदाचारी और ज्ञान श्रेष्ठ महात्माओं के नियंत्रण में रक्खा था। उच्च कोटि के साहित्यक और धार्मिक ग्रंथों का उसे अध्ययन कराया था। सुयोग्य माता की संरक्षकता में राजकुमार वारिषेण का पालन हुआ था। सद्गुण और सदाचार की छाया में वे बढ़े थे। पवित्रता और विवेक उनके साथी थे।

अमित वैभव अपार राजप्रासाद में वे रहते थे। तरुणी बालाए उन्हें प्राप्त थी। विलास की उन्हें कमी न थी, इतना सब कुछ होने पर भी वे उसमें रमे नहीं थे। वैभव की खुमारी और यौवन के उन्माद का उन पर असर नहीं था। वे अपनी परिस्थिति को पहचानते थे। साधना के पथ को वे भूले नहीं थे। इन्द्रियमन और

मनोनिग्रह का उन्होंने अभ्यास किया था। आत्मसंयम के लिए वे प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास किया करते थे। उपवास के दिन उनका सारा कार्यक्रम आत्ममनन और ज्ञान उपार्जन के लिऐ ही होता था। विषयवासना से विरक्त रहकर मन के काम क्रोध आदि विकारों के जीतने का वे अभ्यास करते थे। सारे दिन मन को आत्ममनन में ध्वस्त रखकर रात्रि के समय वे श्मशान भूमि में जाकर योगाभ्यास किया करते थे। इस समय वे मन और शरीर की सभी क्रियाओं से विरक्त रहकर आत्मचिंतन में ही निरत रहते थे।

आज चतुर्दशी की रात्रि को अपने कार्यक्रम के अनुसार वे श्मशान में योगाभ्यास कर रहे थे। दुर्भाग्य के हाथों में पड़ा हुआ अपनी रक्षा केलिए भागता विद्युत वहां पहुंचा था, उसने अपने हाथ का चमकता हुआ हार ध्यान निमग्न वारिषेण के सामने फेंक दिया और स्वयं कहीं जाकर अलोप हो गया था।

वारिषेण के सामने पड़े हुए हार को सैनिकों ने उठा लिया, हार उठाकर उसके चुराने वाले की उन्होंने खोज की इस खोज के लिए उन्हें परिश्रम नहीं करना पड़ा। चमकते हुए हार के प्रकाश में अपने पास ही उन्होंने एक व्यक्ति को समाधि लगाए देखा। बस वह समझ गए कि हार का चुराने वाला यही व्यक्ति है, चोरी के अपराध से बचने के लिए ही इसने समाधि लगाने का स्वांग रचा है। वे उन्हें हार का चुराने वाला समझ कर उसकी ओर बढ़े, लेकिन यह क्या, उनके मुंह की ओर देखकर वे चौंक पड़े। अरे ! यह तो राजकुमार वारिषेण हैं । महाराज के पुत्र वारिषेण को वहां देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वे सोचने लगे-तब क्या इस बहुमूल्य हार के चुराने वाले राजकुमार वारिषेण हैं ? यह होना भी क्या संभव है ? क्या हमारे नेत्र हमें धोखा तो नहीं दे रहे हैं ? उन्होंने आंखों को रगड़ फिर देखा, उन्हें निश्चय हो गया यह कुमार वारिषेण ही है। तब क्या इस बहु मूल्य हार को इन्हीं ने चुराया है ? लेकिन राजपुत्र ने अपने बचने का ढंग भी खुब बनाया है। हार फेंककर किस तरह ध्यानमग्न हो गए, मानो हम इस तरह ध्यानमग्न देखकर इन्हें छोड़ ही देंगे, हमें इन्होंने निरा मूर्ख ही समझ रखा है। यदि यह राजपुत्र है तो क्या हुआ ? क्या राजपुत्र होने के नाते ही इस गुरुतर अपराध को करते देखकर भी हम इन्हें छोड़ देंगे ? नहीं, हमसे यह कभी नहीं होगा, हम राज्य के विश्वासपात्र सेवक हैं। अन्याय और अत्याचार से जनता की रक्षा करने का महान कर्त्तव्य लेकर हम नियुक्त हैं। हमारे रग रग में कर्तव्य का गर्म खून भरा हुआ है, हमसे यह कभी नहीं होगा। राज्य प्रभाव अथवा वैभव की सत्ता के डर से हम अपराधी को कभी नहीं छोड़ सकते। हमारे न्याय शील महाराज की ऐसी आज्ञा कदापि नहीं है। उनकी आज्ञा है कि राजा हो या रंक, धनिक हो या निर्धन, सबल हो या निर्बल, अपराध की तुला पर सब एक हैं। न्याय का कांटा किसी के व्यक्तित्व के आगे नहीं झुक सकता। तब हमें चोरी के अपराध में इन्हें अवश्य ही गिरफ्तार करना चाहिए। यह सब सोचकर उन्होंने हार के ही साथ राजकुमार वारिषेण को भी गिरफ्तार कर लिया और उन्हें लेकर वे न्यायालय की ओर चल दिए।

(4)

प्रातः कालीन समय था। महाराज बिंबसार राज्य सिंहासन पर आरुढ़ थे। उनका मुखमंडल आज बहुत गंभीर हो रहा था। सभासद और मंत्रीगण सभी नितात मौनभाव से स्थिर हुए बैठे थे, सारा सभामंडल निस्तत्व और शून्य हो रहा था। अचानक ही राजकोतवाल को संबोधित कर महाराज ने अपना मौन भंग किया। वे बोले-कोतवाल! अपराधी को मेरे सामने उपस्थित करो। महाराज की आज्ञा का उसी समय पालन हुआ- अपराधी के रूप में राजकुमार वारिषेण उनके सामने खड़े थे। उनके अपराध की चर्चा कुछ समय पहले ही सारे नगर में फैल गई थी, उन्हें अपराधी के रूप में खड़ा देखकर नगर निवासियों के हृदय कुछ समय को कापं गए। इस आश्चर्यजनक घटना ने उनके मन पर विचित्र प्रभाव डाला था। वे स्वप्न में भी इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि ऐसा दृश्य उन्हें कभी अपनी आंखें के सामने देखने का अवसर मिलेगा। राजपुत्र की सच्चारित्रता पर उनका अडोल विश्वास था, वे उन्हें मानव नहीं किन्तु साधु की श्रेणी में समझते थे, ऐसे साधुहृदय कुमार को अपराधी के रूप में देख सकना उनके लिए एक अलौकिक घटना थी।

महाराजा बिंबसार ने अपराधी की ओर तीक्ष्णदृष्टि से देखा फिर वे अपने अधिकार पूर्ण स्वर में बोले-राजकुल को कलंकित करने वाले राजपुत्र! आज तू राज्यसेवकों द्वारा चोरी के गुरुतर अपराध में पकड़ा गया है, तेरा अपराध अक्षम्य है। राज्य की न्याय सत्ता का उलंघन करके अपनी प्रजा के सामने तूने जो घृणित आदर्श उपस्थित किया है उससे आज राज्यकुल का मस्तक नीचा हो गया है, तुझे उचित राज्य दंड देकर मैं उसे ऊंचा करूंगा। श्मशानभूमि जाकर ध्यान का ढोंग रचने वाले और अपने को महान् धार्मिक प्रकट कर जनता को धोखों में डालने वाले तेरे जैसे पापात्मा के लिए सैकड़ों धिक्कार हैं। ओह! जिसकी बाह्य सरल और शांत मुखमुद्रा को देखकर मैं उस पर मुग्ध था और जिसे अपने विशाल राज्य का स्वामी बनाना चाहता था, जिसके हाथ में प्रजा के न्याय,सदाचार और धर्म की रक्षा की बागडोर होती, जो न्याय सिंहासन पर बैठकर अपनी प्रजा के न्याय करने का अधिकारी होता, उस राज्य के होने वाले सम्राट का ऐसा हीनाचार, इतना घोर पतन मुझे आज देखना पड़ रहा है। इतना कहते कहते वह कुछ समय को मौन हो गए, उनका हृदय ग्लानि और घृणा से भर गया फिर वे अपने को संभालकर क्षीण स्वर में बोले-आह! आज मेरे लिए यह कितने कलंक की बात है कि तेरे जैसा दुराचारी मेरा पुत्र है, मेरा कर्तव्य है कि न्याय की रक्षा लिए इस दुराचारी को उचित दंड दूं और इसका उचित दंड है प्राण वध। यदि यह दुराचारी जीवित रहेगा तो प्रजा में अवश्य ही इस तरह दुराचारों की वृद्धि होगी इसलिए उसे प्राणदंड देना ही उपयुक्त होगा। फिर उन्होंने तीव्र स्वर में कहा-अपराधी! तेरा अपराध स्पष्ट है, तेरे इस गुरुत्तर अपराध के लिए मैं तुझे प्राणदंड की आज्ञा देता हूं। बधिको! इसे बध्यभूमि में ले जाकर मेरी आज्ञा का पालन करो।

प्रिय राजपुत्र के लिए इतने कठोर दंड की आज्ञा सुनकर सारी जनता का हृदय करूणा से आर्द हो गया। लेकिन इस आज्ञा के विरुद्ध किसी को भी कुछ कहने का साहस नहीं था। वे राजा के कठोर न्याय को जानते थे। वे यह भी जानते थे कि एक बार निर्णय दे देने पर सम्राट् बिंबसार अपने निश्चय से नहीं हटते, उनके सामने दया की याचना करना बेकार थी ? उन्हें निश्चय था कि वे सत्य न्याय के सामने सब तरह के संबंधों को ताक पर रख देते हैं। वे निष्पक्ष न्यायी हैं, न्याय सिंहासन के सामने उनके सभी व्यवहारिक संबंधों का अंत हो जाता है। अस्तु समस्त जनता ने वज्र हृदय से इस भयानक दंडाज्ञा को सुनकर मौन धारण कर लिया।

राजपुत्र वारिषेण ने निश्चल मन से निर्भयता के साथ अपने प्राण वध का हुक्म सुना, उनके पवित्र हृदय पर इस आज्ञा का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे उसी तरह स्थिर और प्रसन्न थे जिस तरह सदैव रहते थे मृत्यु का उन्हें भय नहीं था। उनके हृदय को यदि किसी तरह भी व्यथा थी तो यही कि वे निर्दोष थे और एक निर्दोषी को दंड मिलना वे अन्याय समझते थे। लेकिन उन्हें आत्म विश्वास था, वे समझते थे यदि मेरी आत्मा बलवान है तो मैं अवश्य ही निर्दोष सिद्ध हूंगा। राजाज्ञा क्या संसार भी मुझे दोषी करार नहीं दे सकता। उन्होंने निर्भय होकर अपने को बधिकों के सुपुर्द कर दिया, बधिक उन्हें पकड़ कर बध्य भूमि की ओर ले चले।

(6)

पातकी मानवों के हृदय में भय का आतंक भरने वाली और अनेक अपराधियो का संसार से अस्तित्व मिटा देने वाली बधिक की तलवार आज कुमार वारिषेण के सिर पर लटक रही थी। वह तलवार कितने ही सदोष्य व्यक्तियों की जीवन ज्योति नष्ट कर चुकी थी, और कितने ही निर्दोष होने पर भी सदोष कहलाने वाले पुरुषों का रक्त पान कर चुकी थी। किन्तु वधिकों का कठोर हाथ आज न मालूम किस अज्ञातभय से कांप उठा था। करुणा की छाया न छू सकने वाला उनका हृदय आज करुणा कादम्बिनी की तरंगों से उमड़ पड़ा था। उन्होंने एक क्षण को राजपुत्र वारिषेण के सुन्दर और निर्दोष मुख की ओर देखा और फिर एक बार अपने हाथ की क्रूर तलवार की ओर देखा, देखकर वे बड़े धर्म संकट में पड़ गए। वे सोचने लगे-यह धर्मप्राण राजपुत्र भी क्या बधके योग्य हैं ? तब क्या अपने राजपुत्र का वध करके मुझे अपनी तलवार को कलंकित करना होगा ? आह ! मुझे यह सब करना ही होगा। मैं राज्य का सेवक हूं। सेवक का कर्त्तव्य कठोर होता है, उसे अपने स्वामी की आज्ञा के सामने अत्यंत प्रिय स्नेहबंधन को भी तोड़ डालना होता है। कितने ही धार्मिक विचार और स्वतंत्र भावनाओं को ठुकरा देना होता है। वास्तव में सेवकों का कोई स्वतंत्र मन होता ही नहीं है, उनका तन, मन और उनकी सभी चेष्टाएं स्वामी के हाथ बिक जाती हैं। निश्चयतः सेवा कार्य बड़ा कठिन है और स्वामी को प्रसन्न रख सकना तो

हवा को बांधना है। सेवक यह जान नहीं सकता कि स्वामी किस क्रिया से प्रसन्न होता है। यदि वह अपने स्वामी की प्रत्येक उचित अनुचित्त आज्ञा का पालन कर उसे संतुष्ट करना चाहता है तो वह खुशामदी और चापलूस कहलाता है। यदि किसी कार्य के लिए अपनी स्पष्ट सम्मति देता है तो उच्छ्रंखल और धृष्ट समझा जाता है। अल्प बोलने पर मूर्ख और अधिक बोलने पर वाचाल कहलाता है। उसके सद्‌गुणों और कर्त्तव्यों का स्वामी की दृष्टि में कोई मूल्य नहीं होता।

मानव मन का स्वामी कहलाता है, उसे मनोनुकूल कार्य करने का प्रकृति प्रदत्त अधिकार होता है। किन्तु क्या सेवकों के भी मन होता है ? उन्हें भी अपने मनोनुकूल कार्य करने का कभी अधिकार हुआ करता है ? नहीं , उन बेचारों को तो अपने स्वामी के हाथ की उंगली के इशारे पर ही नाचना पड़ता है। सैकड़ों भर्त्सनाऐं अपमान भरी क्रूर दृष्टियें और कोप पूर्ण दुर्वचनों को उन्हें नित्य प्रति ही सहन करना पड़ता है। उन्हें केवल अपने स्वामी की स्नेह भरी दृष्टि देखने के लिए अपने शरीर, मन और वाणी का बलिदान कर देना होता है। स्वामी को प्रसन्न रखने के लिए उनके सैकड़ों अप्रत्यक्ष गुणों का गान करके अपनी रसना को तृप्त करना होता है, उनके योग्य और अयोग्य कार्यों में अपने शरीर को झांक देना पड़ता है, और धर्म, लज्जा, सत्य आदि सद्‌गुणों को तिलांजलि देकर उनकी सभी उचित अनुचित आज्ञाओं का पालन करना पड़ता है। आह ! सेवक सबसे निकृष्ट है । मुझे राजज्ञा का पालन करना अनिवार्य है। जो कुछ भी हो इस सुन्दर राजपुत्र को प्राण विहीन कर मुझे अपना कर्त्तव्य का पालन करना ही होगा। यह सब सोचकर राजकुमार की गर्दन पर तलवार का बार करने को तैयार हुआ।

मानवों की रक्त की प्यासी तलवार का बार कुमार वारिषेण की गर्दन पर ठीक तरह से पड़े। उनके मस्तक विहीन शरीर को देखने की भयंकरता का अनुभव करने वाले बधिकों ने अपने नेत्रों को बंद कर लिया, एक क्षण बाद ही उन्होंने दुःख ग्लानि और करुणा के साथ उनकी गर्दन पर दृष्टि डाली। वह बेजान तो थे। तलवार का बार ठीक हुआ है, राजकुमार वारिषेण का सुंदर मस्तक पृथ्वीमंडल पर पड़कर उसे अवश्य ही रक्तरंजित कर देगा किन्तु यह देखकर उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा कि उनका सुंदर मस्तक कल्पवृक्षों की दिव्य मालाओं से सुशोभित होकर अपने स्थान पर प्रसन्न वंदन खड़े हुए है। उनका पवित्र मुखमंडल अखंड दीप्ति से चमक रहा है। बधिक को शंका हुई कहीं यह स्वप्न तो नहीं है। उसने अपने हाथ की तलवार पर एक दृष्टि डाली। वह पहले ही जैसी सुंदर और चमकीली थीं, रक्त का एक भी धब्बा उस पर नहीं पड़ा था, आश्चर्य चकित होकर वह राजा के पास दौड़ा गया और इस चमत्कार पूर्ण घटना की उन्हें सूचना दी। वह भय से कांपते हुए बोला-

महाराज ! इतने अचंभे की बात मैंने आज तक नहीं देखी। राजकुमार के शरीर के अंदर बड़ा ही चमत्कार है, आप चलकर देखिए, मैंने उनके शरीर पर तलवार का बार किया लेकिन उनके पुण्यमय

शरीर पर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ।

बधिक के द्वारा कुमार वारिषेण के संबध में इस आश्चर्य जनक घटना का होना सुनकर अपने मंत्रियों सहित वहां जाने का प्रयत्न करने लगे। इसी समय उन्होंने अपने दरबार में एक व्यक्ति को आते हुए देखा-वह विद्युत चोर था। विद्यतु यद्यपि अत्यंत निष्ठुर प्रकृति का पुरुष था लेकिन जब उसने प्रजाप्रिय कुमार वारिषेण के निर्दोष प्राण नष्ट होने का संवाद सुना तब उसका हृदय जो कभी किसी घटना से नहीं पिघलता था-करुणा से आर्द्र हो उठा। इसी समय उसने बधिकों के द्वारा कुमार वारिषेण की विचित्र रीति से प्राण रक्षा का समाचार सुना। अब उसे अपने अपराध के प्रकट होने का भी भय हुआ था इसलिए यह शीघ्र से शीघ्र महाराज के पास अपना अपराध प्रकट करने के लिए आया था। आते ही वह महाराजा के चरणों में गिर पड़ा और बोला-महाराज ! आप मुझे नहीं जानते होंगे। मैं आपके नगर का प्रसिद्ध चोर विद्युत हूं, मैंने इस नगर में रहकर बड़े बड़े अपराध किए हैं। यह अमौलिक हार मैंने ही चुराया था लेकिन अपने को सैनिकों के हाथ से बचता हुआ न देखकर ध्यानस्थ हुए कुमार के सामने फेंक दिया था। वास्तव में कुमार बिल्कुल निर्दोष हैं। हार का चुराने वाला तो मैं हूं, आप मुझे प्राण दण्ड दीजिये। विद्युत चोर के कथन से महाराज को कुमार वारिषेण की निर्दोषता पर पूर्ण विश्वास हो गया। वे शीघ्र ही वधस्थल की ओर पहुंचे।

कल्पवृक्ष की मालाओं से सुशोभित, पुण्य की पवित्र आभा से परिपूर्ण राजकुमार वारिषेण की भव्य मुखमुद्रा को उन्होंने दूर से ही देखा उसे देखकर राजा, बिंबसार को अपने द्वारा दी गई अन्यायपूर्ण दंडाज्ञा पर बहुत ही पश्चाताप हुआ, उनका हृदय पश्चाताप के वेग से भर आया। वह अपने पुत्र का दृढ़ आलिंगन कर हृदय के आताप को अश्रुओं द्वारा बहाते हुए बोले-पुत्र ! क्रोध की तीव्र भावना में बहकर, विचार शून्य होकर ,मैंने तेरे लिये जो दंडाज्ञा दी थी उसका मुझे बड़ा खेद है। तेरे जैसे दृढ सत्यव्रती और सच्चरित्र पुत्र के लिए संपूर्ण जनता के समक्ष जो तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया है उसे मैं अपना महान् अपराध समझता हूं। आह ! क्रोध के वेग ने मुझे बिलकुल अज्ञानी बना दिया था इसलिए मैंने तेरी पवित्रता पर तनिक भी विचार नहीं किया। पुत्र ! तू बिलकुल निर्दोष है, तू मेरे उस अन्याय तथा अविचार पूर्ण कार्य के लिए क्षमा प्रदान कर। वास्तव में तू सच्चा धर्मात्मा और दृढ प्रतिज्ञ है। धार्मिक दृढ़ता के इस अपूर्व चमत्कार ने तेरी सत्यनिष्ठा को सारे संसार में अखंड रूप से विस्तृत कर दिया है। देवों द्वारा किए आश्चर्यजनक कार्य ने तेरी सच्चरित्रता पर अपनी दृढ़ छाप लगा दी है, तेरी इस अलौकिक दृढ़ता और क्षमा के लिए तुझे मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

महाराज के पश्चाताप पूर्ण हृदय से निकले करुण उद्गारों से कुमार वारिषेण का हृदय विनय और प्रेम से आविर्भूत हो गया। कहने लगा-पिताजी ! आपने मुझे दंड देकर न्याय की रक्षा और कर्तव्य पालन

किया हैं आपका यह अपराध कैसे कहा जा सकता है ? कर्तव्य पालन कभी भी अपराध की कोटि में नहीं आ सकता। हाँ, यदि आप मुझे सदोष समझकर भी पुत्र प्रेम से आकर्षित होकर मुझे उचित दंड नहीं देते तो यह अवश्य ही आपका अपराध होता।

जो राजा मनुष्य प्रेम अथवा व्यवहारिक सम्बन्ध में पड़कर न्याय का उल्लंघन करते हैं वह न्याय की हत्या करने वाले अवश्य की अपराधी हैं। मैं जानता हूं मैं अपराधी नहीं था, लेकिन आपके न्याय ने तो मुझे अपराधी ही पाया था, फिर आप मुझे दंड न देते तो आपकी जनता इसे क्या समझती ? क्या वह यही नहीं समझती कि आपने पुत्र-प्रेम में आकर न्याय की अवज्ञा की है, ऐसी दशा में आप क्या उस लोकोपवाद को सहन करते हुए न्याय की रक्षा कर सकते ? कभी नहीं ? आपने मुझे दंड देकर न्याय सत्ता की रक्षा करते हुए प्रजावत्सलता का पूर्ण परिचय दिया है, आपकी इस न्यायपरायणता से आपका सुयश संसार में विस्तृत रूप से प्रख्यात होगा। मुझे आपके न्याय का गौरव है, मेरा हृदय उस समय जितना प्रसन्न था उतना ही अब भी प्रसन्न हो रहा है।

यह तो मेरे पूर्व जन्म के कृतकर्मों का संबंध था जिसके कारण मुझे अपराधी की श्रेणी मे आना पड़ा। कर्मफल प्रत्येक व्यक्ति के लिए भोगना अनिवार्य है इसके लिए किसी व्यक्ति को दोष देना मूर्खता है।

धर्मभक्त पुरुषों के साहस, दृढ़ता और धार्मिकता का परीक्षण तो उपसर्ग और आपत्तियें ही हैं। यदि मेरे ऊपर यह उपसर्ग न आया होता, इस तरह मेरा तिरस्कार न हुआ होता तो मेरे सद्आचरण और आत्म दृढ़ता का प्रभाव मानवों पर कैसे पड़ता ? चंदन जितना घिसा जाता है, पुष्प यंत्र में जितने पेले जाते हैं उनसे उतना ही अधिक सौरभ विकसित होता है। स्वर्ण जितनी तेज आंच पाता है उतनी ही अधिक चमक वह पाता है। इस तरह धार्मिक और कर्तव्य निष्ठ व्यक्ति आपत्ति यंत्र में जितना अधिक पिलते हैं उनकी यश, कीर्ति और साहस सुरभि उतनी ही अधिक विस्तृत होती है। पिताजी आप इस कार्य से अपने हृदय को खेदित मत कीजिए इसमें आपका रंच भर दोष नहीं हैं।

राजकुमार वारिषेण हर्ष वर्धक और महत्वपूर्ण शब्द सुनकर महाराजा का हृदय हर्षापल्लवित हो गया। वे उसे अपने हृदय से लगाकर बोले-पुत्र! तेरे जैसे विवेकशील राजपुत्र का यह सब कहना उचित है। तू उन्नत विचार है अब तुझे राजधानी में चलकर वियोग व्यथित माता को दर्शन देकर प्रसन्न कर वह तेरे वियोग में बैठी आंसू बहा रही है।

अपने अल्प समय के जीवन में संसार नाटक के अनेक परिवर्तनों का निरीक्षण कुमार ने किया था, इस परिवर्तन ने उनके सन्यासी हृदय को सन्यास से भर दिया था, उनका मन संसार से विरक्त हो उठा था। सांसारिक स्नेह ओर वैभव के प्रति उन्हें अत्यंत घृणा हो गई थी। उनका मन अब लोक कल्याण भावना से परिपूर्ण हो गया। वे विरक्तता पूर्ण स्वर में राजा बिंबसार बोले, पिताजी मैं अब

इस नश्वर संसार के क्षणिक विषय विलास में क्षणभंगुर वैभव के प्रलोभन में अपने आपको एक क्षण के लिए भी नहीं रखना चाहता। अब तो मैं मानव हित के लिए अपना आत्मोसर्ग करूंगा। यह सब उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा और फिर उनसे आज्ञा लेकर वे अपनी माता और पत्नी के पास पहुंचे उनके सामने उन्होंने अपने हृदय के विचारों का प्रकाशन किया और उनके हृदय का मोह शांतकर वे तपस्वियों के संघ में जा मिले। वहां उन्होंने दिगंबरत्व धारण किया और वे आत्म चिंतन में अपने मन को लीन करने लगे।

(7)

राज्यमंत्री अग्निभूति का पुत्र पुष्पडाल था वह उन्नतमना धर्म भक्त और सत्कर्म निष्ठ था। देव उपासना, व्रत संयम और दानादि कृत्यों में वह सदैव निरत रहता था।

प्रातः काल के 10 बजे का समय था, वह अपने द्वार पर खड़ा हुआ किसी अतिथि के लिए भोजनदान देने को प्रतीक्षा में था इसी समय उसने तपश्चर्या की तीव्र आंच में तपाये हुए तेजस्वी साधु वारिषेण को देखा इसे उसने अपना सौभाग्य समझा, उन्हें आहारदान दिया। साधु भोजन ग्रहण कर बन की ओर चल दिये। पुष्पडाल के हृदय में बाल्यावस्था का प्रेम लहराने लगा, उसी प्रेम से आकर्षित होकर युवक पुष्पडाल उनके पीछे पीछे चलने लगा। चलते हुए वह ध्यानस्थान तक पहुंचा। वहां वह कुछ क्षण को ठहरा उसने तपस्वी वारिषेण से अपने लिए कुछ आदेश चाहा। तपस्वी वारिषेण के निकट लोक कल्याण भावना के अतिरिक्त और देने को क्या था ? उन्होंने उसे वही उपदेश दिया। पर पुष्पडाल का हृदय निर्मल था। उसके हृदय पर इस उपदेश का प्रभाव पड़ा वह उसी समय संसार से विरक्त होकर तपस्वी बन गया।

पुष्पडाल ने उस समय संसार का त्याग तो कर दिया था लेकिन उसके मन की इच्छाऐं अभी मरी नहीं थीं। उसने यह त्याग क्षणिक उत्तेजना में आकर किया था इसलिए कुछ समय बाद ही उसके हृदय में विषय लालसा की क्षुद्र तरंगे लहराने लगीं। अपने हृदय को जीतने के लिए वह आध्यात्मिक ग्रंथों का अधिक समय तक अध्ययन करता था, विषय विरक्त के भाषणों को सुनता था, और अपने मन को वश में करने का प्रयत्न करता था। लेकिन उसके हृदय की वासना नष्ट नहीं होती थी। एक दिन वह कामविकारों से अत्यंत अधीर हो उठा। पत्नी संयोग की इच्छा ने उसके हृदय को वे फल कर दिया वह महाव्रत के क्षेत्र से उतर अपनी पत्नी से मिलने के लिए नगर की ओर चल दिया।

तपस्वी वारिषेण ने युवक साधु पुष्पडाल के हृदय का अध्ययन किया था। वे उसके हृदय की कमजोरी को जानते थे और उसे निकाल देना चाहते थे। उन्होंने पुष्पडाल के ही साथ नगर को प्रस्थान किया और वे कहीं न जाकर सीधे अपने राजमहल में पहुंचे।

महाव्रती वारिषेण को राज्यमहल में इस तरह प्रवेश करते हुए देखकर माता चेलना का हृदय किसी आशंका से भर गया, लेकिन वे कुछ नहीं बोली।

साधु वारिषेण ने महल में प्रवेश कर माता के संदेह को नष्ट करते हुए कहा-माताजी! आप मेरी पूर्व पत्नि को मेरे निकट उपस्थित कीजिए। देव बाला के सौन्दर्यं को लज्जित करने वाली तरुणिऐं उनके सामने उपस्थित थी उन्होंने भक्ति के आवेग से भरकर साधु को प्रणाम किया फिर वह उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा में नतमस्तक होकर उनके सामने कुछ क्षण को खड़ी रहीं।

तपस्वी वारिषेण ने पुष्पडाल की ओर देखते हुए कहा, साधु पुष्प डाल ! तुम जानते हो सौन्दर्य और यौवन से पूर्ण ये मेरी पत्निये हैं यह विलास पूर्ण मेरा यह राज्य भवन है। यह समस्त वैभव का साम्राज्य किसी समय में था, मैंने इन सबका त्याग कर दिया है मेरे त्याग से यह सब वैभव आज शून्य हो गया है, क्या तुम्हारे हृदय में इस तरह के वैभव प्राप्ति और उसके उपभोग की इच्छा होती है ?

पुष्पडाल अपने हृदय की कमजोरी समझ गया। तपस्वी वारिषेण की त्याग भावना का उसके मन पर आज विलक्षण प्रभाव पड़ा। विषय की ओर जागृत होने वाले उसके मन का विषदन्त टूट गया था वह उनके चरणों में नत होकर पश्चाताप के स्वर में बोला-साधु श्रेष्ठ ! रहने दीजिए अब आगे कुछ कहकर मुझे लज्जित न कीजिए। तपस्विन् ! मैं बड़ा अज्ञानी था। तृप्ति के क्षेत्र में पहुंच कर भी मेरा मन अतृप्त बना था। अब मेरा वह स्वप्न भंग हो गया। आपने मेरे मन का काटां निकाल दिया। अब मेरा मन बिलकुल शांत है, उस पर से विषय वासना का तूफान निकल गया है। अब मैं वह निर्बल हृदय तपस्वी नहीं रहा। अब पुष्पडाल ने अपने कर्तव्य मार्ग को दृढ़ता से ग्रहण किया है, आप उसके पिछले मन के पापों को धोने के लिए जो चाहे सो प्रायश्चित दीजिए।

ऋषिश्रेष्ठ वारिषेण को उसके दृढ़ संकल्प से प्रसन्नता हुई वह बोले-साधुवर ! तुम अब उस मार्ग पर आ चुके हो जिस पर चलना तुम्हारा कर्तव्य था। तुम्हे अपनी पिछली कमजोरी के लिए दुखी नहीं होना चाहिए। मदनदेव और मोहराजा का प्रताप ही ऐसा है तो महान् व्यक्तियों के मस्तक को झुका देता है मुझे हर्ष है तुम्हारे मन पर से उसका प्रभाव चला गया है। अब तुम्हारा आत्मोत्थान का मार्ग निष्कंटक है। उन्होंने पुष्पडाल को वन में ले जाकर उसे प्रायश्चित दिया। युवक साधु पुष्पडाल ने निश्चल मन से अपने आपको कठिन तपस्या से निमग्न कर लिया।

तपस्वी वारिषेण और साधु रत्न पुष्पडाल एक साथ रहकर आत्म उपासना करते थे, आत्मोत्थान का उपदेश देते थे और जनता के आत्म कल्याण की उत्कट भावना रखते थे। बहुत समय तक तपश्चर्या में निरत रहकर दोनों ने अपना पूर्ण आत्मोत्थान किया।

⌘⌘⌘

गणराज गौतम

(सत्य के महान् उपासक)

(1)

भारतवर्ष के प्रदेशों की सुन्दरता को जीतने वाले मगध देश में ब्राह्मण नामक प्रसिद्ध नगर था। वेद पाठियों की उच्च और ललित ध्वनि से वह सदा ही पूरित रहता था।

ब्राह्मणोचित कर्त्तव्य में निरत श्रुतविज्ञ शांडिल्य उस नगर के प्रधान पुरोहित थे। उनकी पत्नी स्थड़िला थी, समीप के अनेक ग्रामों में उनका यथेच्छ आदर और सम्मान था।

श्रुत विज्ञ शांडिल्य के तीन पुत्र थे उनमा नाम गौतम, गार्ग्य और भार्गव था विद्वान् पुत्रों के समूह से वेष्ठित विप्रराज शांडिल्य सचमुच ही बृहस्पति की तरह सुशोभित होते थे। उनके तीनों पुत्र ज्योतिष, वैद्यक, अलंकार, न्याय, काव्य, सामुद्रिक आदि सभी विद्याओं के पारगामी थे। गौतम अपने सब बंधुओं की अपेक्षा अधिक प्रतिभाशाली और विद्वान थे। उनके वेदज्ञान और क्रियाकांड की जानकारी अत्यंत उत्कृष्ट थी। उनकी तर्क शैली भाषण और व्याकरण संबंधी योग्यता उस समय के सभी वैदिक विद्वानों में श्रेष्ठ थी। उनका गंभीर और युक्ति पूर्ण तेजस्वी भाषण और वाद विवाद की अपूर्व शैली देखकर बड़े बड़े वैदिक ज्ञानी आश्चर्य में पड़ जाते थे।

विप्रराज गौतम की विलक्षण बुद्धि के प्रभाव से उनके पास शिष्यों का बड़ा भारी समूह एकत्रित हो गया था, उन सबकी गणना 500 थी गौतम बड़े अहंमन्य ब्राह्मण थे। उन्हें अपनी बुद्धि तर्क और ज्ञान का बड़ा अभिमान था, अपनी विद्या और ज्ञान की तुलना करने वाला वे सारे संसार में किसी को भी नहीं समझते थे वे अपने ज्ञान के अहंकार में सदैव मस्त रहा करते थे। उनके अहंकार को उनके शिष्यगण अपनी सेवा और नम्रता द्वारा और भी अधिक बढ़ाया करते थे, उन्हें वे बृहस्पति से भी अधिक विज्ञ समझते थे। विप्रराज गौतम को अपनी शिष्य मंडली पर गौरव था। इतना शिष्य समुदाय किसी का नहीं था इसलिये वे अपनी शिष्य मंडली के बीच में अभिमान के शिखर पर बैठे हुए अपने अक्षर ज्ञान की प्रशंसा में मग्न रहा करते थे।

(2)

प्रातः काल का समय था, प्रकृतिदेवी प्रशांत और गंभीर थी, सूर्य ने स्वर्णमयी किरणों के आलोक से लोक को स्वर्ण चित्रित बना दिया था।

वर्द्धमान महावीर प्रभात के इस सौंदर्य का निरीक्षण कर रहे थे, वे उषा के चित्रित वंदन पर आकर्षित थे। उन्होंने देखा, उषा की वह लालिमा धीरे धीरे नष्ट हो गई और उसके स्थान पर नभ मंडल का शुभ

स्थान दिखने लगा। उन्होंने इस परिवर्तन को देखा, इस परिवर्तन से उनके हृदय को एक विचित्र विचार धारा बह उठी। वे सोचने लगे- यह संसार कितना परिवर्तनशील है।

इसकी सभी वस्तुएं नाशवान और क्षणिक हैं। वस्तु की अवस्था एक क्षण को भी स्थिर नहीं रहती वह क्षण प्रतिक्षण बदलती रहती है। इस क्षणिक विश्व का दृश्य कितना नश्वर है, और इस क्षणिक लीला का दिग्दर्शन करते करते मानव अपने जीवन को समाप्त कर देता है। इस नष्ट होने वाले संसार नाटक की रङ्ग भूमि में अपने आत्म गौरव को मानव किस तरह भुला देता है। ओह ! यह विवेक से च्युत मानव मोह सम्राट् के वश में हुए संसार की विलास वासना और विषय प्रलोभन में अनुरक्त होकर अपनी संपूर्ण शक्ति को खो बैठता है। उसे अपनी आत्मसत्ता, कर्त्तव्य और वास्तविक सुख साम्राज्य का बोध ही नहीं होता।

स्वार्थ मग्न मानव, केवल, धन, वैभव और इन्द्रिय सुख साम्राज्य की कल्पना करने वाला मानव अपने चारों और स्वार्थ का ही साम्राज्य देख रहा है ? और अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए अन्याय और अत्याचार करने से नहीं हिचकिचाता। शक्ति और वैभव के मद से अंधा होकर, निर्बल,अनाथ और असहाय जंतुओं के जीवन का वह कुछ भी मूल्य नहीं समझता। कितने मूक पशुओं का बलिदान होता हुआ मैं देख रहा हूं, बधिक की तलवार के नीचे पड़े हुए कितने दीन पशुओं का हृदय विदारक चीत्कार सुन रहा हूं, ओह ! थोड़ी सी लालसा के लिए इतना हिंसाकांड यह हो रहा है। यह अज्ञानी मानव धर्म के वास्तविक रहस्य को बिलकुल ही नहीं समझते। उन्होंने केवल क्रियाकांड और ज्ञान शून्य कायक्लेश में ही अपने कर्त्तव्यों की इति श्री समझ ली है। ओह ! कितने अज्ञ हैं यह मानव, तब ऐसी दयनीय दशा को देखते हुए क्या मेरा कर्त्तव्य नहीं है कि मै इनका मार्ग प्रदर्शन करूं, गहन वन में भटकते हुए भोले भक्तो को भक्ति का असली रहस्य समझाऊं और विलासिता की नींद में गहरे डूबे हुए मानवों को जागृत करूं। क्या मैं इन्हें इस अन्याय अत्याचार और आत्मपतन के गहरे गड्ढे में गिरने दूं ? नहीं मैं यह सब नहीं देख सकूंगा । बहुत देखा अब मैं एक क्षण के लिए भी इसे देखने को तैयार नहीं हूं।

मैं इन अज्ञ मानवों को सत्कर्तव्य के दिव्य प्रकाशमय सरल पथ का प्रदर्शन करूंगा, इनके हृदय में सत्य ज्ञान की दिव्य प्रभा को भरूंगा और आत्म सुख के उच्चतम शिखर पर ले जाऊंगा। यह सब कैसे होगा ? मैं स्वयं सत्य उपदेशक बनूंगा, सन्मार्ग का प्रदर्शक बनूंगा, उसके लिए मुझे राज्य प्रलोभन के किले को चकनाचूर करना होगा, विलास बंधन के टुकड़े-टुकड़े करना होंगे और इस गृहस्थाश्रम के आत्मोन्नतिनिरोधक संकीर्ण क्षेत्र से निकल कर महाव्रत के विस्तृत मैदान में उतरना होगा। तब यही होगा, मैं तपस्वी बनूंगा। एक क्षण में उनका हृदय वैराग्य से भूषित हो गया। वह बाल-ब्रह्मचारी, वह अद्वितीय आत्मविजयी यह प्रबल बलशाली, मदन विजयी महावीर उसी समय सांसारिक राग-त्याग का संकल्प करने लगे।

मानवों ने उनके विचार का अनुमोदन किया वे स्वयं उन्हें रत्न घटित पालकी में बिठलाकर वन की ओर ले चले। वन में जाकर महावीर वर्धमान पालकी से उतरे उन्होंने अपने आभूषणों को, सिर पर से मुकुट को और बहुमूल्य वस्त्रों को जीर्ण तृण सदृश अकिंचन समझ कर त्याग दिया और अपने सुकुमार करों से सिर के केशों को उखाड़कर डाल दिया फिर **ॐ नमः सिद्धेभ्यः** कहते हुए निर्मल शिला पर बैठकर ध्यानस्थ हो गए।

भगवान महावीर तीव्र तपश्चरण में तन्मय थे। सुमेरु शिला समान निश्चल, निश्चेष्ठ और निर्भय, उनका शरीर तपश्चरण की प्रभा से चमक उठा था। प्रलय, तूफान, वर्षा, शीतल उष्ण की अनेक बाधाओं का उनकी अविनश्वर आत्मा पर कुछ प्रभाव नहीं था- पाषाण स्तंभ की तरह वे अड़िग अडोल, और अचल थे।

भ्रमण करते हुए रुद्र ने उन्हें देखा-उनकी इस शांति छबि को देखकर उसे विद्वेष हुआ। पूर्व संस्कार के प्रबल प्रकोप के कारण वर्द्धमान महावीर को देखते ही उसके मन में द्वेष की दाह दहकने लगी वह उन्हें निश्चल ध्यान से विमुख करने का प्रयत्न करने लगा। उसने अपनी संपूर्ण दानवी शक्ति का प्रयोग किया, लेकिन वह असमर्थ रहा भयानक उपसर्गों और परिषहों के सामने महावीर-महावीर ही बने रहे। अंत में रुद्र पराजित हुआ उसे अपने दुष्कृत्य पर बड़ी लज्जा और ग्लानि हुई। अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिए उसने महावीर के चरणों में पड़कर अपने अपराधों की क्षमा मांगी और वह अपने स्थान को चला गया।

दृढ़व्रती वर्द्धमान अनंतशक्ति महात्मा महावीर ने कठोर उपसर्गो के सामने विजय प्राप्त की। आत्म शक्ति से बढ़े हुए भगवान् महावीर ने ध्यान की संरक्षता से अपनी समस्त आत्म शक्तियों का संगठन किया फिर पद दलित ठुकराए और क्षीण हुए मोह सुभट पर भयंकर प्रहार किया। ध्यान की तीव्रता के सामने मोह एक क्षण को भी स्थित नहीं रह सका। उसके साथी क्रोध, मान, माया, लोभ राग, द्वेष आदि के पैर भी उखड़ गए, उसका सम्पूर्णतः पतन हुआ।

महावीर के निर्मल आत्मा में अनंत ज्ञान का प्रकाश स्फुरत हुआ उसके उदित होते ही संपूर्ण आत्म गुण विकसित हो गए, केवलज्ञान और अनंतदर्शन की दिव्य शक्ति से उन्होंने संसार के सभी पदार्थों का दिग्दर्शन किया।

(4)

आत्मविजयी महात्मा महावीर के अलौकिक ज्ञान साम्राज्य का महामहोत्सव मनाने के लिए स्वर्गाधिपति इन्द्र देवताओं के समूह सहित आया। इनके अभूतपूर्व केवलज्ञान साम्राज्य की महिमा प्रदर्शित करने के लिए कुबेर को उनका सुन्दर सभास्थल बनाने का आदेश दिया। मानवों के हृदयों में आश्चर्य हर्ष और आनंद की धारा बहाने वाला सभास्थल बन गया। उसमें बारह सभाएं थीं सभा के

बीच में सुंदर सिंहासन था, सिंहासन पर बैठे हुए भगवान महावीर के दिव्य शरीर का दर्शन कर देव और मानव अपने नेत्रों को सफल बनाने लगे।

महावीर के समवशरण में प्रत्येक जाति के मानव को समान अधिकार था। प्राणी समुदाय उनका भाषण सुनने को उत्सुक था, लेकिन दिव्यध्वनि प्रकट नहीं हुई। इन्द्र ने इसका कारण जानना चाहा, वे कारण समझ गए। कारण यह था कि उनकी दिव्य ध्वनि से प्रकट होने वाले उपदेशों की व्याख्या करने वाला कोई विद्वान् उस समय वहां उपस्थित नहीं था। इन्द्र शीघ्र ही इस समस्या को हल करना चाहते थे। मानवों के चंचल चित्त को वे जानते थे उपस्थित जनता महावीर की वाणी सुनने को कितनी उत्सुक है उन्होने इस समस्या के सुलझाने का प्रयत्न किया और वे उसमे सफल भी हुए। समस्या का एक ही हल था- गौतम ब्रह्मण को लाना। परंतु उसका लाना भी तो कठिन था लेकिन उसे कौन लाए ? अंत में इन्द्र ने स्वयं इस कार्य को अपने हाथ में लिया। उन्होंने जनता को संबोधित करते हुए कुछ समय को धैर्य रखने का आदेश दिया और फिर वे ब्रह्माण का वेष धारण कर विद्वान् गौतम को लाने के लिए चल दिए।

गौतम शिष्य मंडली के समूह में बैठे हुए अपनी प्रतिभा के प्रबल तेज को प्रकाशित कर रहे थे। वे दीर्घ शिखाधारी अपने पांडित्य का अनुचित अहंकार रखने वाले वेद विषय पर गंभीर व्याख्यान दे रहे थे उनका हृदय अत्यंत प्रसन्न और सुख मग्न था। विवेचना करते हुए उन्होंने एक बार अपनी शिष्य मंडली की ओर गंभीर दृष्टि से देखा। शिष्यगण सरल और मौनरूप से गुरुदेव के मुख से निकले गंभीर विवेचन को उत्सुकता के साथ सुन रहे थे। इसी समय शिखा सूत्र से वेष्टित एक शरीरधारी ब्रह्मण ने व्याख्यान सभा मे प्रवेश किया ब्रह्मण अत्यंत वृद्ध था उसके चेहरे से विद्वत्ता स्पष्ट रूप से झलक रही थी व्याख्या सुनने की इच्छा से वह सबसे पीछे एक स्थान पर बैठ गया।

गौतम का विवेचन वास्तव में विद्वत्ता पूर्ण था। बड़े झरने के कलकलनाद की तरह धारावाहिक रूप से बोल रहे थे। गंभीर तर्क और युक्तियों से वे अपने सिद्धान्त की पुष्टि करते जाते थे। शिष्यमंडली मंत्रमुग्ध की तरह उनका व्याख्या सुन रही थी। ओजस्विनी भाषा में विवेचन करते हुए विद्वान गौतम सचमुच ही सरस्वती के पुत्र की तरह मालूम पड़ रहे थे। उनकी उक्तिएं उनकी गवेषणाएं ओर उनकी वक्तृता का डंका चमत्कारिक था। विद्वानों की दृष्टि में आज का व्याख्यान उनका अत्यंत महत्वपूर्ण था, व्याख्यान समाप्त हुआ। धन्य धन्य की उच्च ध्वनि से सभास्थान गूंज उठा। सम्पूर्ण शिष्यमंडली ने एक स्वर से इस अभूतपूर्व व्याख्यान का अनुमोदन किया।

शिष्य समूह में बैठा हुआ एक वृद्ध पुरुष ही ऐसा था जिसके मुंह से न तो कोई प्रशंसात्मक शब्द ही निकला और न उसने इस व्याख्यान का कुछ भी समर्थन ही किया। वह केवल निश्चल दृष्टि से उनके मुंह की ओर ही देखता रहा। विद्वान् गौतम उसके इस मौन को सहन नहीं कर सके वे कुछ क्षण को सोचने लगे। मेरे जिस भाषण को सुनकर कोई भी विद्वान् प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता उसके प्रति इस

ब्रह्मण की इतनी उपेक्षा क्यों है ? इसने अपना कुछ भी महत्व प्रदर्शित नहीं किया। तब क्या इसे मेरा भाषण रचा नहीं ? अच्छा तब इसे अपने भाषण का और भी चमत्कार दिखलाना चाहिए। देखूं इसका मन कैसे मुग्ध नहींहोता है। मैं देखता हूं यह ब्राह्मण अब मेरी प्रशंसा किए बिना कैसे रह सकता है ? वे अपने प्रखर पांडित्य की धारा बहाते हुए अपने विशाल ज्ञान का परिचय देने लगे। इस अंतिम व्याख्यान में उन्होंने अपनी संपूर्ण प्रतिभा के चमत्कार को प्रदर्शित कर दिया था। उनकी शिष्य मंडली ने भी उनका इस तरह धारावाहिक और तर्क तथा गवेषणा पूर्ण भाषण कभी नहीं सुना था, यह चित्र लिखित थे। द्विगुणित जयध्वनि से एक बार सभा मंडप फिर गूंज उठा, व्याख्यान समाप्त हुआ, विद्वान गौतम का सारा शरीर पसीने से तर हो गया था। अन्य दिन की अपेक्षा आज अपने भाषण में उन्हें अधिक परिश्रम करना पड़ा था। उन्होंने देखा वृद्ध ब्राह्मण अब भी मौन था। उनके चेहरे पर इस भाषण का कुछ भी प्रभाव पड़ा नहीं दिखता था।

गौतम अब अपने आश्चर्य को नही रोक सके, वृद्ध ब्राह्मण की ओर एक तीव्र दृष्टि डालते हुए वे बोले। विप्र ! तुमने मेरे इस पांडित्य भरे हुए चमत्कारिक भाषणा का कुछ भी अनुमोदन नहीं किया। क्या तुम्हें मेरा यह व्याख्यान नहीं रुचा ? तब क्या मेरा भाषण सर्वोकृष्ट नहीं था ? क्या मेरे समान कोई महाविद्वान् इस पृथ्वी-मंडल पर तुमने देखा है ? मुझसे स्पष्ट करो तुमने मेरे इस भाषण की प्रशंसा क्यों नहीं की ?

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा- विद्वान् गौतम ! आपको अपनी विद्वता का इतना अभिमान नहीं होना चाहिए, आपसे सहस्त्रगुणी अधिक प्रतिभा रखने वाले विद्वान् इस पृथ्वी मंडल पर हैं।

आश्चर्य से अपना मस्तक हिलाते हुए सम्पूर्ण शिष्य मंडली ने एक स्वर से कहा- कदापि नहीं, गुरुराज समान प्रतिभा संपन्न पुरुष इस पृथ्वीमंडल पर दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। उनका स्वर क्रोधपूर्ण था।

वृद्ध ब्राह्मण ने शिष्य समुदाय के क्रोध को मधुर शब्दों के द्वारा शमन करते हुए दृढ़ता के स्वर में कहा। मैं अपने शब्दों को इस विद्वत् परिषद के सामने साहस के साथ फिर से दुहराता हूं, मैं विश्वास पूर्वक कहता हूं मेरे शब्द अकाट्य है विद्वान् गौतम अब अपने धैर्य को स्थिर नहीं रख सके। वे बोले-ब्राह्मण ! मुझे परिचय दो वह कौन महा विद्वान् है जो महात्मा गौतम के पांडित्य के सामने अपने पांडित्य के अभिमान को सुरक्षित रख सकता है।

वृद्ध ब्राह्मण ने गंभीर स्वर में कहा-महामना गौतम ! अभिमान की धारा में इतने अधिक मत वह जाओ। वास्तव में तुम्हारा ज्ञान है ही कितना ? तुम उन महा विद्वान का परिचय जानना ही चाहते हो तो मैं तुम्हें उनका परिचय देता हूं सुनो-अपने अतुलित ज्ञान के प्रभाव से पूर्ण वे मेरे गुरु हैं।

तुम्हारे गुरु ! ब्राह्मण तुम यह क्या कहते हो ? तुम्हारे वे गुरु कौन हैं, कहा रहते हैं, मुझे उनकी विद्वता

का कुछ परिचय दो। आश्चर्यचकित गौतम ने कहा-

वृद्ध ने अत्यंत गंभीर होकर कहा-विद्वान् गौतम ! घबड़ाओं मत, मैं तुम्हें अपने विद्वान् गुरु का परिचय दूंगा। लेकिन परिचय देने के पहले मेरे एक प्रश्न का उत्तर आपको देना होगा उस प्रश्न की गंभीरता से ही मेरे विद्वान् गुरु का परिचय तुम जान लोगे।

गौतम ने शीघ्रता से कहा-ब्राह्मण ! अपना प्रश्न बोलो मैं सुनूं। वह कौन सा प्रश्न है जो गौतम की तीक्ष्ण प्रतिभा के सामने उपस्थित रह सकता है।

वृद्ध ब्राह्मण अब संतोष की पूर्ण सांस लेकर कहा-विद्वान गौतम ! आप प्रश्न का उत्तर अवश्य देंगे ? लेकिन प्रश्न के साथ ही मेरी एक प्रतिज्ञा भी है वह भी आपको स्वीकार करना होगी। यदि आप मेरी प्रतिज्ञा स्वीकृत करने में समर्थ हों तो अपने प्रश्न को आपके सामने उपस्थित करूं।

गौतम ने साहस के साथ कहा-ब्राह्मण ! मैं सुनना चाहता हूं तुम्हारी वह प्रतिज्ञा कौन सी है ? जिसका भय दिखलाकर तुम विद्वान् गौतम को ठगना चाहते हो। तुम प्रतिज्ञा निर्भय होकर कहो। गौतम को जिस तरह अपनी अखंड विद्वत्ता पर विश्वास है उसी तरह उसे यह भी विश्वास है कि वह तुम्हारी प्रतिज्ञा को पूरा कर सकेगा।

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा-अच्छा ! विद्वान् गौतम ! तब आप मेरी प्रतिज्ञा को सुनिए। मेरी यही प्रतिज्ञा है जो विद्वान पुरुष मेरे प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देकर मेरे हृदय की शंकाएं नष्ट कर देगा मैं उसका आजीवन शिष्य बनकर उसकी सेवा करूंगा, और यदि वह किसी तरह से मेरे प्रश्न का उचित उत्तर नहीं दे सकोगे तो उसे मेरे गुरु का शिष्यत्व स्वीकार करना पड़ेगा। कहिए, आप इस प्रतिज्ञा को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं ।

गौतम ने अपना मस्तक ऊंचा उठाते हुए कहा-ब्राह्मण ! गौतम इस प्रतिज्ञा को सहर्ष स्वीकार करता है, तुम अपना प्रश्न उपस्थित करो।

वृद्ध ब्राह्मण तो यह चाहता ही था, उसे मनचाही मुराद मिली। उसने कहा-विद्वान गौतम ! आप मेरी प्रतिज्ञा स्वीकार करते हैं, मैं आप पर विश्वास करता हूं। अच्छा, अब आप मेरे प्रश्न को सुनिए।

वृद्ध ब्राह्मण ने अपने प्रश्न को गौतम के सामने एक काव्य के रूप में रक्खा।

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहिंतं जीव षट्काय लेश्या।
पञ्चान्येऽचास्तिकाया व्रत, समिति गति ज्ञानचारित्रभेदाः ।।
इत्येतन् मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैप्रोक्तमर्हद्भिरीशैः ।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मातिमान् यः स वैशुद्ध दृष्टिः ।।

काव्य समाप्त हुआ। वृद्ध ब्रह्मण ने नम्र होकर कहा-महामना गौतम ! कृपया मेरे काव्य के भेदों को

मुझे समझाने का कष्ट कीजिए।

प्रश्न सुनकर विप्रराज गौतम का हृदय कुछ समय को विक्षुब्ध हो गया-जिस तरह प्रबल आंधी के वेग से पड़ा हुआ शुष्कपात समूह नभमंडल में इधर उधर उछलता है, समुद्र की भयानक तरंगों से जहाज का जीवन डगमगाने लगता है, उसी तरह गौतम का प्रतिभारूपी महावृक्ष डगमगाने लगा। वह विचार-सागर में निमग्न होकर संशय के गोते खाने लगे, वह सोचने लगे-तीन काल क्या ? छह द्रव्य कौन से हैं। नव पदार्थ कौन से ? छह काय के जीव, छह लेश्या, पंचास्तिकाय आदि यह सब क्या ? मैं तो इनके प्रभेदों को जानता ही नहीं, जानना तो दूर रहा मैंने तो अभी तक इन्हें सुना भी नहीं है ? इस वृद्ध ब्राह्मण को इनका मैं क्या उत्तर दूं। बेशक इस समय तो मुझे यही मालूम हो रहा है-ओह ! आज मेरे ज्ञान की यह क्या दुर्दशा हो रही है ? क्या मैं वही विजयी गौतम हूं ? इस तरह विचार करते हुये कुछ समय को मौन हो गए।

गौतम को अधिक समय तक विचार में गोते खाते हुए देखकर वृद्ध ब्राह्मण ने उन्हें जागृत करते हुए कहा-महामना गौतम ! मुझे विलंब हो रहा है, कृपया आप मेरे प्रश्नों का उत्तर शीघ्र दीजिए। यदि आप इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकते हों तो अपनी प्रतिज्ञा का पालन कीजिए, और शीघ्र ही मेरे गुरु के पास चलकर उनकी शिष्यता स्वीकार कीजिए।

वृद्ध ब्राह्मण की बात सुनकर गौतम उसी तरह चौक पड़े जिस तरह गाढ़ निद्रा में निमग्न कोई व्यक्ति कोई भीषणनाद सुनकर एक दम चौंक पड़ता है। लेकिन उन्होंने अपने को शीघ्र ही सावधान कर लिया। वे अपने हृदय की तीव्र गति को रोकते हुए बोले-ब्राह्मण। इस तुच्छ प्रश्न का तुझे क्या उत्तर दूं। मेरे सामने यह प्रश्न कोई महत्व नहीं रखता। मैं तेरे इस प्रश्न का उत्तर अभी दूंगा, लेकिन मैं तेरे गुरु के समक्ष ही इसे समझाऊंगा, और उन्हें अपनी विद्वत्ता का परिचय दूंगा। तू मुझे बतला, तेरे गुरु कौन हैं ?

वृद्ध ब्राह्मण बोला-गौतम ! आप मेरे गुरु के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं। लेकिन मैं समझता हूं आप उनसे अपरिचित नहीं है। उनकी विश्व पदार्थ प्रदर्शिनी-ज्ञानशक्ति से आप परिचित अवश्य हैं। फिर भी यदि आपको उनके नाम जानने की इच्छा है तो सुनिए, मैं आपको बतलाता हूं -

जिनके चरणों पर महामानी विद्वानों के मस्तक झुक जाते हैं और जो अपने सामने संसार के पदार्थों को जानते और देखते हैं वे महामान्य वर्द्धमान महावीर मेरे गुरु हैं।

गौतम ने सुना, सुनकर वे आश्चर्यपूर्ण स्वर में बोले-ओह ! इंद्रजाल विद्या से मानवों को विमोहित करने वाला और अपने को स्वयं घोषित करने वाला दिगम्बर महावीर तेरा गुरु हैं ? अच्छा चल, मैं उससे अवश्य ही विवाद करूंगा और तेरे प्रश्न का भी उत्तर दूंगा।

ब्राह्मण वेषधारी इन्द्रराज जो कुछ चाहते थे वही हुआ। वे किसी तरह ज्ञानमद से मदोन्मत्त गौतम ब्राह्मण को भगवान् महावीर के सभास्थल में ले जाना चाहते थे, जिसे गौतम ने स्वयं ही स्वीकृत

किया। वे प्रसन्न होकर बोले-विद्वान् गौतम ! हम आपकी बात से सहमत हैं , आप शीघ्र ही मेरे गुरु के पास चलिए।

(5)

महावीर के सभास्थल की महिमा बढ़ाने वाला सभा के बीच में एक विशाल मानस्तंभ था जिस पर जैनत्व का प्रदर्शन केशरिया झंडा लहरा रहा है। मानस्तंभ के चारों ओर शांति का साम्राज्य स्थापित करने वाली दिगम्बर मूर्तियां विराजमान थी। छद्मवेषधारी इन्द्र के साथ साथ चलते हुए दूसरे मानस्तंभ को देखा। उसे देखते ही उसके हृदय पर विलक्षण प्रभाव पड़ा, वह महावीर की महत्ता का विचार करने लगा उसके हृदय का मिथ्या अहंकार उस मानस्तंभ को देखते ही कुछ कम हो गया, उसका मन अब सरल और शांत था। सरलता के प्रदाह में वहकर उसने वर्द्धमान महावीर के सभास्थल में प्रवेश किया।

अनंत दीप्ति से सूर्यमंडल की प्रभा को लज्जित करने वाले महावीर को उसने देखा, देवता और अगणित मानव समूह शांत नम्र और शांत हुआ उनका उपदेश सुनने को उत्सुक हुआ बैठा है। एक बार पूर्ण दृष्टि से उन्होंने उनके शांत सरल और विकार रहित मुख मंडल को देखा, उनकी शांत मुद्रा का गौतम के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा, उनका मन विनय और भक्ति नम्र हो गया। कभी किसी के सामने न झुकने वाला उनका मस्तिक भगवान महावीर के आगे झुका, उनका सारा अभिमान गलित हो गया।

हृदय का अहंकार नष्ट होते ही सद्विचार की भावनाएं लहराने लगीं , वह बोलने लगे-अहा ! जिस महात्मा का इतना प्रभाव है, जिसके समवशरण की इतनी महिमा है, बड़े ऋषि महात्मा से बादविवाद करके मैं किस तरह विजय प्राप्त कर सकता हूं ? इनके सामने मेरा बात करना हास्य करने के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा। सूर्य मंडल के सामने क्षुद्र जुगनू की समता करना, केवल अपनी मूर्खता का परिचय देना ही कहा जायेगा। खेद है मुझे अपने अक्षरज्ञानका इतना अभिमान रहा, लेकिन मुझे हर्ष है कि मैंने उसकी तह को शीघ्र ही पा लिया।

यह सच है जब तक कोई साधारण मानव अपने सामने किसी असाधरण व्यक्ति को नहीं देखता तब तक उसे अपनी क्षुद्रता का भान नहीं होता, और उसे बड़ा अभिमान रहता है। ऊंट जब तक पहाड़ की उच्च चोटी के सामने से नहीं निकलता तब तक अपने को संसार में सबसे ऊंचा मानता है, लेकिन पहाड़ के नीचे से आते ही उसका अपनी उच्चता का सारा अभिमान गल जाता है। मेरी भी आज वही दशा है। सत्य ज्ञान और विवेक से रहित मैं अपने को पूर्ण ज्ञानी मानता हुआ मैं अब तक कूपमंडूक ही बना था, लेकिन महात्मा के दर्शन मात्र से मेरा सारा भ्रमजाल भंग हो गया। अब यदि मैं अपने को वास्तविक मानव बनाना चाहता हूं तो मेरा कर्तव्य है कि मैं इनसे वाद विवाद न करूं, नहीं तो इस विवाद में मुझे सिवाय हास्य और अपमान के कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। मेरा जो कुछ गौरव आज है वह भी नष्ट हो जायेगा। इसके अतिरिक्त मैं इनके उस ब्राह्मण शिष्य के प्रश्न का उत्तर देने में भी असमर्थ रहा, इसलिये मुझे

अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार इनका शिष्यत्व ग्रहण करना चाहिए, ऐसे सर्व पूज्य महात्मा का शिष्य बनना भी मेरे लिए एक महान् गौरव की बात होगी। इस तरह विचार करते हुए महामना गौतम ने अपने संपूर्ण शरीर को पृथ्वी तक झुका कर भगवान महावीर को साष्टांग प्रणाम किया। मोह कर्म का परदा भंग हो जाने से उनका हृदय सम्यग् श्रद्धा और ज्ञान से भर गया था, उन्होंने भक्ति के आवेश में आकर भगवान् महावीर की सुन्दर शब्दों में स्तुति की, फिर उनका शिष्य बनकर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की प्रार्थना की। भगवान् महाविर ने अपनी करुणा की महान् धारा बहाते हुए उसे अपनी शरण में लिया और उसे जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान की। गौतम के साथ उसके दोनो बंधुओं और सभी शिष्यों ने भी जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की। जैन धर्म की जय से सारा आसमान गूंज उठा।

सभास्थित सभी व्यक्तियों ने गौतम के इस समयोपयोगी सुकृत्य की सराहना की। अभिमान के शिखर पड़ चढ़ा हुआ विवादी गौतम एक समय में ही भगवान महावीर का प्रधान शिष्य बन गया। साधुओं के गण ने भी उन्हे अपना प्रधान स्वीकार किया, और उन्हें गणधर की उपाधि प्रदान की। यह सब कार्य पलक मारते हुआ, मानो किसी जादूगर ने जादू कर दिया हो, ऐसा यह सब कार्य हो गया। भगवान् महावीर के यह अद्भुत आकर्षण प्रभाव था जो अहिंसा और सत्य के रहस्य से विमुख मिथ्याज्ञान में आसक्त गौतम एक क्षण में ही मोक्षलक्ष्मी का महापात्र बन गया। धन्य महावीर की सार्वभौमिक साम्यदृष्टि और धन्य महामना गौतम का सौभाग्य।

(6)

पांखडों का ध्वंस करने वाली, मिथ्यावादियों की मदविमर्दक और सत्यार्थ धम्र का रहस्य उद्घाटित करने वाली महावीर की वाणी का प्रकाश हुआ। उनकी दिव्यध्वनि द्वारा सप्ततत्व, पंचास्तिकाय , नव पदार्थ, छह काय के जीव, छह लेश्या, मुनियों के पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति और गृहस्थों के बारह व्रत और ग्यारह श्रेणियों का विवेचन होने लगा। गृहस्थ और साधु जीवन के कर्तव्य समझायें जाने लगे और मानवों के मन की सभी शंकाओं का जाल नष्ट होने लगा।

जयतीति जैन शासनम् की पताका विश्व के प्रकाशमय उच्चकाश में फहराने लगी, महानवादी अपना मिथ्यामद त्यागकर भगवान् के धर्म शासन की शरण में आए। क्रियाकांडों का अकांड तांडव समाप्त हुआ। अज्ञानता का अंधेरा भागा। अत्याचार और अनाचारों की आंधी रुकी, हिंसा और बलिदान प्रथा का अस्तित्व नष्ट हुआ और संसार के सभी प्राणी सुख और शांति की गहरी सांस लेने लगे।

कार्तिकी कृष्णपक्ष अमावस्या की रजनी धन्य थी, उस समय कुछ तारे झिलमिले हो रहे थे, सूर्य अपना सुनहला संदेश सुनाने के लिए रात्रि की क्षीण चादर में छिपा हुआ मुस्कुरा रहा था, अंधतम कुछ समय में ही अपने साम्राज्य से हाथ धोने को था, प्रभात होने में अभी कुछ विलम्ब था। दिन और रात्रि के इस सुन्दर संगम के समय में इन्द्र ने अपने आसन को कम्पित होते देखा। उन्होंने शीघ्र ही अपनी तीक्ष्ण

बुद्धि को जगाया, उससे उन्हें मालूम हुआ महावीर के निर्वाण का समय आ गया है। आज इसी समय रजनी के इसी क्षीण प्रकाश में महावीर का प्रकाशमान आत्मा, मध्यलोक की स्थिति को त्याग देगा, वह लोक के सर्वोत्कृष्ट अंतिम भाग में प्रविष्ठ होगा, मुक्तिलोक की अधिष्ठात्री शिव सुन्दरी का सौभाग्य आज बढ़ेगा, वह वर्द्धमान महावीर को अपना आलिंगन देकर अक्षय सुख का अनुभव करेगी ! उनका हृदय हर्ष विभोर हो गया।

पावापुर का सुरम्य स्थल पवित्र तीर्थ स्थल बन गया। देव मानव जिस जिसने सुना सबका मन प्रसन्नता के वेग से भर गया। सभी ने वहां उपस्थित होकर उनके चरणों पर अपना मस्तक झुकाया ललित स्वर से उनकी स्तुति की, यश कीर्तन किया, विनय की और पूजा की। भक्ति में न समाने वाला सागर उनके हृदय में उमड़ आया था। अग्निकुमार जाति के देवो ने अब अपना कर्त्तव्य करना आरंभ किया, सूर्यकांति की मणियों से चमकते हुए अपने मुकुट को उसने भगवान महावीर के चरणों पर झुकाया। उसके कांतिपूर्ण मुकुट से दीप्तिमान प्रभा प्रकाशित होने लगी, उस प्रचंड प्रभा में एक अद्भुत दैवी शक्ति थी, उससे अग्नि की तीव्र लहरें स्फुरत हुयीं, उन्होंने भगवान् महावीर के दिव्य शरीर को एक क्षण में भस्म कर दिया। उनका आत्मा संपूर्ण कर्मजाल से मुक्त होकर लोक के अंतिम भाग में अचल रूप से स्थिर हो गया।

उनके शरीर की भस्म को उपस्थित संपूर्ण जनता ने अपने मस्तक पर चढ़ाया औरअपने को कृतकृत्य समझा।

संध्या समय हुआ। गणराज गौतम अब मौन रहकर अपने आत्मध्यान में मग्न थे। अपने आत्मप्रकाश को उन्होंने देखा था, उसके ऊपर अपना परदा डालने वाले कर्मों की शक्ति पर उन्होंने विचार किया। उन्होंने देखा ध्यान की शक्ति के आगे कर्म शक्ति अब क्षण क्षण में क्षीण हो रही है। कर्म शक्ति का संपूर्ण नाश करने के लिए उन्होंने ध्यान का अंतिम अनुष्ठान किया। इस अनुष्ठान में कर्मो का क्षीण जाल जलकर भस्म हो गया। उन्होंने महान् कैवल्यज्ञान को प्राप्त किया।

मानव देवताओं ने दीपकों के दिव्य प्रकाश से उनका कैवल्य उत्सव मनाया, संपूर्ण दिशाएं जगमग जगमग हो उठीं, फिर सबने मिलकर उनकी केवलज्ञान लक्ष्मी का पूजन किया। दिव्य दीपकों की दिव्य दीप्ति से अमावस्या का कृष्ण अंग चमक उठा। दीपमालिका उत्सव समाप्त हुआ। कार्तिकी अमावस्या सफल हो गई। अपने तमपूर्ण अंचल में कैवल्य के दिव्य प्रकाश को लेकर वह सौभाग्यवती बन गई। उसने उसे अपने सुंदर प्रभात जीवन में भगवान् महावीर के चिरस्मरणीय निर्वाण गौरव को धारण किया, और संध्या के अवसान में ज्ञानलक्ष्मी के प्रकाश से संसार को प्रकाशित किया।

कैवल्य के प्राप्त होने के बाद गणराज गौतम ने महावीर वर्द्धमान के अहिंसा और सत्य का प्रकाश चमकाया। उसे सारे संसार में विस्तृत किया आज वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

स्वामी समंतभद्र

(दृढ ओर तेजस्वी धर्मप्रचारक)

(1)

स्वामी समंतभद्र अचल आत्मश्रद्धा, दृढ़ विश्वास और अपूर्व आत्मत्याग की जीती जागती मूर्ति थे, मनुष्य की दृढ़ इच्छा शक्ति, अनन्य श्रद्धा पत्थर को भी पिघला सकती है, इस बात के वे ज्वलन्त उदाहरण थे। उनके तेज, दृढ़ता और गौरव से भरे हुए वाक्य हृदय में बिजली की झनझनाहट पैदा कर देते हैं, वे उनके शब्द वज्रनिनाद से हृदय को कंपा देते हैं । उनके आत्मविश्वास की कोई सीमा ना थी, उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा का कुछ अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता था। उन्हें अपने ऊपर कितना विश्वास था, उन्हें जिनधर्म पर कितनी श्रद्धा थी, शिवलिंग टूट गया और उसके स्थान पर जिनेन्द्र प्रतिमा स्थापित हो गई- धन्य ऋषि तेज, धन्य उपासना!

सब तो भक्ति करते हैं उपासना करते हैं किन्तु वह दृढ़ निश्चय वह पूर्ण तन्मयता क्यों उत्पन्न नहीं होती ? क्योंकि वह उपासना कोरी उपासना होती है, केवल मात्र उपासना की नकल होती है।

स्वामी समंतभद्र ने उपासना द्वारा आत्मा के अपूर्व उज्जवल, प्रकाश को देखा था, शुद्धात्मा की अलौकिक शक्तियों की चमकती हुई बिजली का अनुभव किया था, भक्ति की शक्ति और उपासना के प्रत्यक्ष फल को प्रदर्शित किया था, उनकी उपासना, वह एकाग्रचिंतन, वह सर्वस्व त्याग, वह तन्मयता, वह अर्पणता, वह एकनिष्ठा, अहा! वह अनुपम थी, अपूर्व थी।

यदि आज हममें उस उपासना का शतांश भी उत्पन्न हो सके, उस सच्ची तन्मयता में यदि हम अपने को एक क्षण को भी निमग्न कर सकें तो क्या संसार को फिर से जैन महिमा के जीते जागते चित्रों का दर्शन नहीं कर सकते है ? अवश्य, किन्तु हम तो प्रार्थना के शब्दों को ही कण्ठ कर लेते हैं, और उन्हें ज्यों को त्यों मूर्ति के सम्मुख पढ़ देते और मानो जैनत्व के ऋण से अपने को मुक्त समझ लेते हैं , किन्तु क्या ऐसी भावना रहित शुष्क प्रार्थनाओं का भी कोई मूल्य हो सकता है ?

प्रार्थना के लिए सुंदर शब्दों की आवश्यकता नहीं, ढोल और मंजीरों की झनझनाहट की दरकार नही, और न आकाश पाताल एक करने की ही आवश्यकता है, उसके लिए आवश्यकता है हृदय के भावों को जाग्रत करने की, जरूरत ही सोती हुई सत्य भक्ति को स्फुरत करने की, यही सच्ची प्रार्थना का रहस्य है और वही सच्ची प्रार्थना है।

ऐसे महात्मा के जन्मस्थान, उनके वंश, उनके माता पिता और उनके अपूर्व कृत्यों का सुनिश्चित और पूर्ण परिचय प्राप्त न हो सकता, हमारी इतिहास शून्यता और अरुचि का ही प्रतिफल है, पता नहीं कितनी महान आत्माएं हमारी इतिहास शून्यता के गर्भ में विलीन हो गई होंगी, जिनके अस्त्तिव का भी

पता लगाना आज दुर्लभ है।

भारत वर्ष में धार्मिकता का इतिहास है, जहां अन्य राष्ट्रकर्म के इतिहास रहे हैं , वहां भारतवर्ष कर्म विमुक्ति का इतिहास रहा है, और इस इतिहास की अधिकांश सामग्री जैनियों के धार्मिक ग्रंथो में भरी पड़ी है, किन्तु हमें अपने प्रमाद और दुर्भाग्य से आज वह सामग्री अप्राप्त है, और हमें आज अपनें इतिहास की खोज करने के लिए विदेशीय व्यक्तियों और उनकी खोजों का अनुकरण और अनुसरण करने के लिए लाचार होना पड़ रहा है।

इतिहास के विद्वानों ने स्वामी जी को राज्य वंशी घोषित किया है और इस बात का बिलकुल विश्वास हो गया है, एक राज्यवंशी के हृदय में ही इतनी प्रचंड सामर्थ्य इतना तेज प्रस्फुटित हो सकता है।

हां, तो स्वामी जी का जन्म क्षत्रिय राज्यवंश में हुआ था और उनका नाम था शान्तिवर्मा।

बाल्यावस्था से ही उन्हे जैन धर्म की शिक्षा प्राप्त हुई थी, वह जैन धर्म के अनन्य श्रद्धालु और भक्त थे, जैन सिद्धात पर उन्हें अटूट विश्वास था। उनका मन जैन शास्त्रों के अध्ययन में संलग्न रहता था और सत्यान्वेषण के लिए उनका आत्मा सदैव व्यग्र रहता था। जैन धर्म की सेवा करने के लिए वह सदैव तत्पर रहते थे, जैन धर्म और धर्मात्मों के ऊपर उन्हें सच्चा स्नेह था। वह बंध श्रद्धा के पक्षपाती नहीं थे। सत्य शून्य अनुकरण उन्हें पसन्द नहीं था। वे वस्तु स्थिती की तह में प्रवेश करने का प्रयत्न करते थे, और सत्य की प्राप्ति में ही उन्हें आनंद आता था। यही कारण था कि निकट भविष्य में वह जैन धर्म के अद्वितीय नैयायिक और महात्मा बन गए।

(2)

यह एकान्त सत्य है कि मनुष्य का भविष्य जीवन बाल्यावस्था की शिक्षा और संस्कारों की भित्ति पर स्थिर रहता है। बालकों को जैसी शिक्षा और संस्कार बाल्यावस्था में प्राप्त हो जाते हैं, युवावस्था में उसी का विकास होता रहता है, उनका आचरण बाल्यावस्था में ही प्राप्त हुई शिक्षा के ऊपर अवलंबित रहता है।

जिन बालकों को बाल्यावस्था से ही धर्मचरित्र संगठन और संयम सम्बंधी शिक्षा प्राप्त हुई, उन्होंने अपनी बढ़ती हुई अवस्था में अपने को संसार की बुरी वासनाओं से बचा लिया और अंत में महानता को प्राप्त किया।

बाल्यावस्था के धार्मिक संस्कारों के कारण शांतिवर्मा का जीवन वासना से सर्वथा शून्य था। उन्होंने अपनी युवावस्था को पवित्रता के रङ्ग में रङ्ग डाला था। लोकोपकार को ही उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था, सांसारिक कार्यो के संपादन में उन्हें किंचित् भी स्नेह और उल्लास नहीं था।

चढ़ती हुई जवानी में जबकि युवक मदोन्मत हो जाते हैं और अपने चारित्र को कलंकित कर डालते हैं विषय विलास के सम्मुख अपना मस्तक झुका देते हैं, और उनके दास बनते हैं, उसी जवानी की अवस्था में उन्होंने अपने को बिलकुल निष्कलंक, और संयमी बना लिया था।

आप एक आदर्श युवक थे। आपके चेहरे से पवित्रता की एक अपूर्व ज्योति झलकती थी, सुगठित शरीर, प्रशस्त ललाट और दिव्यतेज प्रत्येक-व्यक्ति के ऊपर अपना अद्भुत प्रभाव डालता था।

आप में एक गुण दृढ़ता का अपूर्व था। जिस कार्य को आप करना चाहते थे उसे पूरा करके ही छोड़ते थे। कोई भी विघ्न बाधा कार्य को पूर्ण करने के संकल्प से आपको डिगा नही सकती थी। समय के मूल्य को भी आप खूब जानते थे, अपने प्रत्येक समय को लोकोपकार, दिव्य विचार, और ग्रन्थावलोकन में ही व्यतीत करतेथे। आलस्य तो आपको छू भी नहीं पाया था, और व्यार्थाभिमान तो किंचित् भी नहीं भाता था। हां स्वाभिमान आत्मसम्मान की तो आप साक्षात् मूर्ति थे। किसी के असत् विचार और मिथ्या प्रशंसा को आपका हृदय सहन नहीं कर सकता था।

(3)

जिस महात्मा के हृदय में प्रबल आत्मशक्ति, स्फुरित हो रही होगी यह साधारण लोकसेवा से कभी भी संतुष्ट नहीं हो सकता, वह तो पराधीनता बंधन को तोड़कर विशाल कर्मक्षेत्र में उतरने का प्रयत्न करेगा।

युवक शांतिवर्मा का जीवन यद्यपि लोककल्याण कामना में ही लगा रहता था। किन्तु वह इतने से ही संतुष्ट नहीं थे। उनके हृदय में संसार में बिलकुल विरक्त होकर कल्याण करने की प्रबल भावना जागृत हुई।

संसारजनित किन्हीं कठिनाइयों से आक्रमणित होकर वह उसका त्याग नहीं करना चाहते थे, और न किसी प्रकार से यश और प्रतिष्ठा की उन्हें आकांक्षा थी। जो मनुष्य यश और प्रतिष्ठा के लिए अथवा गृहास्थावस्था संबंधी कठिनाइयों से भयभीत होकर संसार का त्याग करते हैं उन्हें वह आत्मबंधक समझते थे।

ऐसे शुष्क त्याग से कुछ भी आत्मकल्याण नहीं हो सकता ऐसा वह मानते थे। त्याग के इस लक्ष्य को ही वह दूषित समझते थे, ऐसे मनुष्य सत्य और न्याय पर दृढ़ नहीं रह पाते। सिंह वृत्ति उनके चित्त में प्रवेश नहीं कर पाती, स्वाधीनता उनसे दूर हो जाती है, प्रशंसा और यश के झकोरे उसे तपस्या से डिगाकर अपनी ओर खींचते हैं और वह त्यागी मनुष्य योग तथा भोग दोनों की सीमा का त्याग कर जाता है, ऐसा उनका सिद्धांत था।

उनके हृदय में यश की कुछ कामना नहीं थी। वह तो केवल स्व पर कल्याण के उच्च सोपान पर चढ़ने को उत्सुक थे, इन्द्रिय दमन और मनोनिगृह की कठिन कसौटी पर वह अपने आत्मा को कसना चाहते थे। विश्व से **सत्त्वेषु मैत्रीय** का नाता जोड़ना चाहते थे और अपने को संसार के कोलाहल से, लोकिक प्रवृत्ति से विमुक्त रखकर स्वतंत्रता पूर्वक भ्रमण कर अपने उपदेश द्वारा लोक को सत्य का अनुगामी बनाना चाहते थे।

अंत में उन्होंने अपनी दृढ़ भावना को उपयोग में लाने का सदप्रयत्न कर ही डाला और एक दिन इच्छापूर्वक गृह त्यागकर श्री गुरु के चरणों में अपने को समर्पित कर दिया।

गुरू ने वैराग्य और लोककल्याण से भरे हुए उनके हृदय को परखा और उन्हें जैनेश्वरी मुनि दीक्षा प्रदान की। क्षण भर में वह सर्वत्यागी मुनि बन गए। उनका आत्मा एक अपूर्व हर्ष से प्रभावित हो गया। वह अपने जीवन को कृतकृत्य समझने लगे।

(4)

उन्होंने अपना अल्प समय ही ऋषि अवस्था में व्यतीत कर पाया था कि पूर्वजन्म के असाता कर्म ने उनके ऊपर आक्रमण किया। उन्हें महा भयानक भस्मक रोग उत्पन्न हुआ, क्षुधा की ज्वाला उग्र रूप से धधकने लगी, मुनि अवस्था में जो अल्प रूखा सूखा भोजन उन्हें प्राप्त होता था वह अग्नि में सूखे तृण की तरह भस्म हो जाता था और क्षुधा की ज्वाला उसी भयानक रूप से जलती रहती थी, इससे उनका शरीर प्रतिदिन क्षीण होने लगा।

इस भयानक वेदना से स्वामी जी तनिक भी विचलितनहीं हुए और इस दारुण दुःख को सातापूर्वक सहने लगे, किन्तु इस रोगने उनके लोक कल्याण और जनसेवा वृत्ति के मार्ग को रोक दिया था।

स्वामी समंतभद्र कायरता पूर्वक आलस्य में पड़े रहकर अपना जीवन व्यतीत नहीं करना चाहते थे। वह अपने जीवन के प्रत्येक क्षण से जैन धर्म की प्रभावना और उसके सत्य संदेश से संसार को पवित्र बनाना चाहते थे इस मार्ग में यह व्याधि कंटकस्वरूप हो गई थी, इतना ही नहीं था किंतु अब तो वह इस भयानक वेदना के कारण शास्त्रोक्त मुनि जीवन बिताने में भी असमर्थ हो गये थे।

वह केवल मात्र नग्न रहकर प्रतिष्ठा के इच्छुक नहीं थे उन्हें केवल मुनिवेष से मोह नहीं था। वह नहीं चाहते थे कि मुनि वेष धारण करते हुए उसके नियमों की अवहेलना की जाय। यदि वास्तव में उन्हें मुनिवेष से मोह होता, यदि वह अपनी वेदना की किंचित् भी चर्चा करते हो गृहस्थों द्वारा उन्हें गरिष्ट मिष्ट स्निग्ध भोजन प्राप्त हो सकता था, किन्तु इस प्रकार की क्रियाओं को वे मुनि वेष को कलंकित करना समझते थे, और नियमविरुद्ध जीवन बिताना भी वे उचित नहीं समझते थे। उस समय की परिस्थिति उनके सामने महा भयंकर थी। उन्हें जीवन से मोह नहीं था, शरीर को तो वह इस आत्मा से कब से भिन्न मान चुके थे। शरीर परित्याग में उन्हें कोई खेद नहीं था, उन्हें यदि खेद था तो यही कि उनके लोककल्याण की भावनाएं अभी पूर्ण नहीं हो सकती थी। शरीर द्वारा आत्मा और अन्य प्राणियों की उन्नति की लालसा अभी उनकी तृप्त नहीं हो पाई थी, किन्तु इस भयंकर व्याधि के सामने उनका कुछ वश नहीं था। अन्ततः उन्होंने सन्यास द्वारा नश्वर शरीर से अपना सम्बंध त्याग देने का निश्चय किया।

सौभाग्य से उन्हे लोक कल्याणकारी अनुभवी गुरु का संसर्ग प्राप्त हुआ था, उनमें समयोचित विचारशक्ति विद्यमान थी। उन्हें अपने प्रिय शिष्य की भावना ज्ञात हुई। न्यायशास्त्र की संसार में दुन्दुभि बजाने वाले अपने प्रतिभाशाली शिष्य का असमय में वियोग हो जाना उन्हें इच्छित नहीं था। वह

समझते थे कि स्वामी समंतभद्र से लोक का भविष्य में अधिक कल्याण होगा, इनके द्वारा संसार को न्याय के रूप में जैन दर्शन प्राप्त होगा। वह उनके जीवन को असमय में नष्ट हुआ नहीं देखना चाहते थे किन्तु ऐसी अवस्था में वह मुनिवेष धारण कर रह भी नहीं सकते थे अस्तु। एक बार उन्होंने स्वामी जी को समीप बुलाकर कहाः-

वत्स तुम जिस प्रकार हो सके व्याधि से निर्मुक्त होने का उद्योग करो इसके लिए चाहे जहां वेष मे विचरण करो। स्वस्थ हो जाने पर तुम फिर मुनि दीक्षा धारण कर सकते हो। यदि शरीर स्थिर रहता है तब धर्म और लोक का कल्याण कर सकते हो, लौकिक और आत्मिक कल्याण के लिए शरीर एक अत्यंत आवश्यक साधन है, इस साधन को पाकर इसके द्वारा संसार की जितनी अधिक सेवा की जा सके कर लेना चाहिए, किन्तु वह सेवा स्वस्थ शरीर द्वारा ही की जा सकती है। अस्तु तुम कुछ समय के लिये संघ से स्वतंत्र रहकर अपने शरीर को स्वस्थ बनाओ।

स्वामी जी ने अपने गुरु महाराज की समयोचित आज्ञा स्वीकार की, इस वेष द्वारा आत्मकल्याण की गति को उन्होंने रूकते हुए देखा अस्तु, उन्होंने इस वेष का त्याग करना उचित समझा और दिगंबर मुद्रा का त्याग कर दिया।

अब वे अपने स्वास्थ सुधार के लिए स्वतंत्र थे। मुनिवेष की बाधा उन्होंने अपने ऊपर से हटा दी थी, और यह कार्य उनका उचित ही था। पद के आदर्श अनुसार कार्य न कर सकने पर यही कहीं अत्यंत उचित है उनसे नीचे पद को ग्रहण कर लिया जाये किन्तु आदर्श में दोष लगाना यह अत्यंत घृणित और हानिप्रद है।

किन्तु इसके प्रथम तो वह दिगम्बर थे, उनके पास कोई वस्त्रादि था ही नही, और इस दिगंबर वेष द्वारा किसी प्रकार के वस्त्रादि की याचना नहीं कर सकते थे, अस्तु। उन्होंने भस्म से अपने सारे शरीर को अलंकृत कर लिया और इस प्रकार जीवन के अत्यंत प्रिय वेष का उन्होने परित्याग कर दिया इस वेष का परित्याग करते समय उनका हृदय कितना रोया था, मानसिक वेदना से वह कितने संतापित हो उठे थे मानो कोई अपना सर्वस्व खो रहा हो किन्तु वह निरूपाय थे, धर्म रक्षा के लिए वह ऐसा करने के लिऐ लाचार थे। आंसुओं से अपने ज्वलित हृदय को सींचते हुए उन्होंने अपने हाथों से ही वह सब कुछ किया।

उन्होंने यह सोचकर अपने हृदय में संतोष किया कि धर्म का पालन तो हृदय से होता है, मेरा हृदय धर्माचरण से परिलुप्त है, मेरा श्रद्धा खड्ग के पानी की तरह अचल है। यदि दैव विपाक से मुझे यह वेष धारण करना पड़ रहा है किन्तु भस्म में छिपे अंगारे की तरह मेरा जैनत्व तो मेरे अंदर धधक रहा है।

(5)

भिक्षु का वेष धारण कर स्वास्थलाभ की इच्छा से गुरु को प्रणाम कर उन्होंने वहां से प्रणाम करते हुए मार्ग में उन्हें पौड्रपुर नामक नगर मिला। उक्त नगर मे बौद्ध भिक्षुओं के लिए एक विशाल दानशाला थी वहां पर प्रतिदिन गरिष्ठ और सुस्वादु भोजन भिक्षुओं को प्राप्त होता था। बस अब क्या था, स्वामी जी ने

शीघ्र ही बौद्ध साधु का वेष धारण कर बौद्धशाला में प्रवेश किया, और वहां कुछ दिनों तक उन्होंने निवास किया। किन्तु वहां भी उन्हें पर्याप्त भोजन प्राप्त नहीं हो सका और उनके रोग में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। अस्तु, कुछ दिन ठहरकर ही वहां से वह आगे चल दिए। चलते चलते दशपुर नामक नगर में पहुंचे, वहां वैदिक धर्म की प्रभावना थी। अतः बौद्ध वेष त्यागकर स्वामी जी भागवतधर्मीय साधु बन गए, परन्तु वहां जो सदावर्त भोजन मिलता था उससे उनके रोग में किंचित् शान्ति नहीं हुई। अस्तु वहां से चलकर वह वाराणसी पहुंचे।

वाराणसी उस समय शैव भक्तो का प्रधान केन्द स्थान था। वहां का राजा शिवकोटि भी बड़ा भारी शिवभक्त था। उसने शिवजी का एक विशाल मंदिर निर्माण करवाया था और उसकी पूजा वह शैव ब्रह्मणों से षड्रस एकान्न औरविपुल नैवेद्य द्वारा नित्य प्रति करवाता था। उस नैवेद्य की ठाठवाट देखकर स्वामी जी तत्काल शैव ऋषि बन गए मस्तक पर जटा बढ़ा लिए कमंडलु, रुद्राक्ष की माला आदि उपकरण ले लिए और एक लंबा चौड़ा त्रिपुंड लगाकर शिवजी के मंदिर में पहुंचे।

अनेक वेष परिवर्तन करने पर भी स्वामी के श्रद्धान में किसी प्रकार भी कमजोरी उत्पन्न नहीं हुई थी। प्रबल रोग के कारण यद्यपि उनका चरित्र शिथिल हो गया था। परंतु उनके सम्यक्त्व वा श्रद्धान में कुछ भी अंतर नहीं पड़ा था। वे अत्यंत सम्यग्दृष्टि थे। उनके अंतरंग में सम्यक्त्व की प्रचंड ज्वाला जगमगा रही थी। अंतरंग के स्फुर्यमान सम्यक्त से और बाह्य के फुलिंग वेष से स्वामी जी उस समय ऐसे शोभित होते थे जैसे कीचड़ से लिपटा हुआ अत्यंत चमकदार मणि।

मध्यान्ह का समय हुआ। बड़े भारी आयोजन साथ साथ शिवजी के लिए विपुल नैवेद्य अर्पण होने लगा, शैव साधु का वेष धारण किए हुए स्वामी जी भी उस समय वहां उपस्थित थे। उन्होने कहा- यदि महाराज की आज्ञा मुझे मिल जाये तो मैं यह सारा नैवेद्य भोलानाथ को स्वयं भक्षण करा सकता हूं। स्वामी जी की बात सुनकर आश्चर्य से शिवभक्त चौंके, उन्होंने शैव साधु के मस्तिष्क को विकृत समझा। किसी चंचल प्रकृति पुरुष ने इस आश्चर्य जनक वार्ता को महाराज के कानों तक पहुंचाया। राजा के हर्ष का कुछ पारावार नहीं रहा, वह शीघ्र ही स्वामी जी के दर्शन के लिए वहां उपस्थित हुए। उन्होंने बड़ी श्रद्धा से स्वामी जी को प्रणाम किया, और आज्ञा दी कि यह प्रासाद नवागत ऋषि महाराज के हाथों से शिवजी को अर्पण किया जाय। स्वामी जी तो इसके लिये तैयार ही थे। उन्होंने मंदिर के किवाड़ बंद किए और नैवेद्य जिससे सैकड़ों ब्रह्मणों का पेट भरता था, उदरदेव की भेंटकर गए। यह दृश्य देखकर राजाओं को शैव साधु पर बड़ी श्रद्धा हो गई। फिर क्या था नित्य प्रति के लिए यही नियम हो गया। लोक समझते थे कि प्रसाद को शिव जी भक्षण कर जाते हैं किन्तु यह स्वामी जी ही सब सटाक जाते थे। इस प्रकार तीन चार मास तक स्वच्छन्दता पूर्वक उन्होंने अपने उदरदेव की पूजा की, अब प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा प्रसाद शेष रहने लगा। यह देखकर शिव भक्तों के हृदय में शंका उत्पन्न होने लगी।

(6)

अनेक भक्तों का शिवजी के प्रसाद से उदर पालन होताथा। स्वामी जी के कारण उनकी आजीविका में अंतराय आ गया। इसलिए यह नवीन शिवभक्त उन्हें कांटे के समान खटकता था, किन्तु राजा की आज्ञा के कारण बेचारों का कुछ भी वश नहीं चलता था। शिव जी का प्रसाद बचने से शिवभक्तों को यह अवसर हाथ लगा। उन्होंने अपना बदला चुकाने की इच्छा से राजा से जाकर भोजन के बचने का समाचार सुनाया। राजा ने आकर स्वामी जी से पूछा-महाराज, यह भोजन क्यों बचने लगा ? स्वामी जी नेकहा- शिवजी की क्षुधा इतने समय तक भोजन करते करते तृप्ति हो गई, अब वह कम आहार करते हैं और इसी से नैवेद्य छोड़ देते हैं। किन्तु स्वामी जी के इस उत्तर ने महाराजा के हृदय को संतोष नहीं पहुंचाया। अस्तु उन्होंने वास्तविक घटना का रहस्य समझाने के लिए शिवभक्तों को संकेत किया, शिवभक्त तो यह चाहते ही थे, वे इस बात का पता लगाने का प्रयत्न करने लगे।

महादेवजी को बिल्वपत्र जाते थे। एक ओर उनका बड़ा ढ़ेर लगा हुआ था, शिवभक्तों ने स्वामी जी की परीक्षा के लिए मनुष्य को उस ढ़ेर में छिपा दिया। उसने चुपचाप स्वामी जी की सारी करतूतें देखी ओर तत्काल ही राजा से जाकर कहा-महाराज! यह तपस्वी तो बड़ा ढ़ोंगी और शिवद्रोही है, इसने अब तक महाराज को भारी धोखा दिया, यह सारे नैवेद्य का तो स्वयं भक्षण कर जाता है और शिवाजी को एक कण भी नहीं देता।

पुजारी की बातों को सुनकर राजा अत्यंत कुपित हुए, उन्होंने उसी समय स्वामी को बुलाकर उनसे कहा- तू बड़ा मायावी है तूने मुझे इतने दिन तक बड़ा धोखा दिया, अब मैंने तेरी सारी चालाकी देख ली है। अरे! तू तो कहता था कि मैं शिवजी को भोजन कराता हूँ किन्तु तू तो खुद की सारा भोजन हड़प कर जाता है, और हाँ तू शिवजी को नमस्कार क्यों नही करता, अच्छा तू इसी समय मेरे सामने शिवजी को नमस्कार कर।

राजा की बात सुनकर स्वामी जी तड़प उठे, उनका मस्तक गर्व से ऊंचा हो उठा, सम्यक्तव का तेज उनकी नसों में भर आया। उन्होंने गर्व पूर्वक तेजस्वी भाषा में कहा- आपके शिवजी राग द्वेष युक्त हैं और मैं राग द्वेष से रहित श्री जिनेन्द्र देव का उपासक हूं। यह राग द्वेष युक्त देवता मेरे नमस्कार को कभी सहन नहीं कर सकते। यदि मैं इन्हें नमस्कार करूंगा तो शिवपिंडी के खंड खंड हो जायेंगे।

स्वामी जी का ओजस्वी वक्तव्य सुनकर राजा ने समझा, अवश्य यह कोई महान व्यक्ति है, किन्तु शिवजी के अपमान की बात को स्मरण करते ही उनका हृदय क्रोध से संतापित हो उठा। उन्होंने कहाः- भिक्षुक ! व्यर्थ की बातों से क्या लाभ ? इस पिंडी को नमस्कार कर और अपना चमत्कार दिखला, अन्यथा अपने प्राणों के ममत्व को त्यागकर शिवजी के अपमान के प्रतिफल के लिए तैयार हो जा।

स्वामी जी ने पूर्व की ही भांति तेजस्विनी भाषा में कहाः- राजन्! आप मेरा चमत्कार देखना चाहते हैं अच्छा! देखिए ? सत्यभक्त कभी मृत्यु से नहीं डरता। मृत्यु को तो वह सदैव निमंत्रण देता रहता है। आप कल इसी समय आकर मेरी शक्ति की परीक्षा कीजिये, मैं कल शिव जी को नमस्कार करूंगा ।

राजा ने भिक्षुक का वचन स्वीकार किया, उन्होंने उसी समय अपने सेनापति को आज्ञा दी कि इस भिक्षुक को इसी कोठरी में कैद कर इसके चारों ओर सख्त पहरा लगा दो और खूब सावधानी रक्खों यह कहीं भागकर न जा सके, कल सेवेरे आकर मैं इसकी परीक्षा लूंगा।

स्वामी जी सिपाहियों के सख्त पहरे के साथ साथ कोठारी में बंद कर दिये गये। अंधकार के अतिरिक्त उनका वहां कोई सहायक नहीं था।

(7)

स्वामी जी को अपने ऊपर विश्वास था। उन्हें अपनी आत्म दृढ़ता पर अभिमान था, वह सत्य को साक्षात् करा देने वाले महान् आत्माओं में से थे, उन्होंने उसी समय आत्म उपासना में अपने को तन्मय कर दिया। भक्ति की प्रचंड तरंगें उनके हृदय में अद्भुत प्रकाश फैलाने लगी। उन्होंने अपनी समस्त मनोकामनाएं, समस्त इच्छायें प्रभुभक्ति में परिणत कर दी भक्ति की अपूर्व शक्ति का चमत्कार उत्पन्न हुआ। अनायास ही दिव्य प्रकाश से सारी कोठरी प्रकाशित हो उठी। स्वामी जी ने नेत्र उद्घाटित किए, उन्होंने देखा एक अपूर्व सुंदरी रमणी उनके सम्मुख उपस्थित थी, वह पद्मावती देवी थी। स्वामी जी की अनन्य भक्ति से उसका आसन विचलित हो उठा था। उसने मधुर स्वर से कहा-वत्स! तुम पक्के सत्यनिष्ट तपस्वी हो, तुम्हारा विश्वास वज्र के समान अटल है, तुम अपने मन में किसी प्रकार की चिंता मत करना, तुम्हारा समस्त कार्य सफल होगा। तुम स्वयंभूस्तोत्र की रचना करो, बस यही स्तोत्र अपने चमत्कार से संसार को विस्मित कर देगा, इतना कहकर देवी अदृश्य हो गयी।

योगी का हृदय नवीन उल्लास से खिल उठा। उनके अन्तः करण का कांटा निकल गया। वे गदगद हो उठे। अपूर्व आभास उनका उन्नत ललाट चमक उठा। मानो उन्होंने विजय को साक्षात् प्राप्त कर लिया।

प्रातः काल हुआ। राजा ने तपस्वी की परीक्षा के लिए शिवालय की ओर प्रस्थान किया। नगर की जनता उमड़ पड़ी, शिवालय जन समूह से व्याप्त हो गया। कोठरी का द्वार उद्घाटित हुआ। स्वामी जी ने राजा को दर्शन दिए। वह आत्म तेज के दिव्य प्रकाश से विकसित हुए मुख मण्डल पर अनंत प्रदीप्त धारण किए हुये थे, उनके दिव्य कान्तिमय भव्य मुख मण्डल को देखकर राजा कुछ समय को अवाक रह गये। उन्होंने देखा-एकांत अंधकारमय कोठरी में वद्ध हुए मस्तक पर मृत्यु के भयंकर दंड को लटकते हुए स्वामी जी के मस्तक पर तनिक भी भय नहीं है, उन्होंने सारी शक्ति का संचय कर कहा-भिक्षुक! परीक्षा के लिए तैयार हो जा।

स्वामी ने कहा-महाराज! मैं कटिबद्ध हूं। आप शिव मूर्ति की रक्षा के लिए उसे चौबीस जंजीरों से कसवा दीजिए और फिर मेरे प्रताप को देखिए।

राजा की आज्ञा का शीघ्रतः पालन किया गया।

राजा को एक बार संबोधित करते हुए स्वामी जी ने फिर कहा- राजन्! मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं शिव पिंडी को नष्ट भ्रष्ट करूं किन्तु तेरा आग्रह मुझे ऐसा करने के लिए मजबूर कर रहा है, मेरे चमत्कार को

देख ! यह कहते हुए स्वामी समंतभद्र ने प्रभावशाली भाषा में चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति पढ़ना शुरु की। वे स्तुति उसी समय रचते जाते थे और साथ ही साथ पढ़ते भी जाते थे। इस प्रकार उन्होंने सात तीर्थंकरों की स्तुति समाप्त कर डाली और आठवें तीर्थंकर की स्तुति का प्रथम छन्द समाप्त कर उन्होंने दूसरे छन्द का **यस्यांगलक्ष्मी परिवेश भिन्नं।** को प्रारंभ ही किया था कि तत्काल ही शिवलिंग की सब जंजीरें अपने आप टूट गयीं और पिंडी फटकर उसमें श्री चंद्रप्रभ प्रभु की चतुर्मुख प्रतिमा प्रकट हो गई।

महात्मा के दृढ़ आत्म तेज का जीता जागता चित्र देखकर राजा अत्यंत प्रभावान्वित हुए। उनके हृदय पर जैन धर्म के महत्व की अविछिन्न छाप लग गई, भक्ति के उद्देश्य से पूरित होकर वह महात्मा के चरणों में पड़ गए, बोले-महात्मन! आपकी भक्ति को धन्य है, साधारण में ऐसी आसाधारण शक्ति का होना अत्यंत असम्भव है ! कृपया आप अपना आत्मपरिचय देकर कृतार्थ कीजिए। कहिए आपने किस वंश को कृतार्थ किया है और यह छद्मवेश आपको किस लिए धारण करना पड़ा। राजा की प्रार्थना सुनकर महात्मा जी ने अपना निम्नकार परिचय देते हुए कहाः-

काच्यां नग्नाटकोऽहं मलमलिनतनुर्लोबुशे पाण्डपिण्डः।
पुण्ड्रोण्डे शाक्यमिभक्षुर्दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राट्॥
बाराणस्यामभूवं शशिधरधवलः पाण्डुरगस्तपस्वी।
राजन् ! यस्यास्तिशक्ति सव दतु पुरतो जन निर्ग्रंथवादी॥

मैं कांची नगरी का नग्न दिगम्बर ऋषि, शरीर में भस्मक व्याधि होने से पुडनगरी में बौद्ध भिक्षुक बनकर रहा। फिर दशपुर नगर में मिष्टान्न भोजी परिव्राजक बना रहा। फिर तेरे नगर बनारस में आकर व्याधि शांति की इच्छा से शैव तपस्वी बनकर रहा। हे राजन् ! मैं जैन निर्ग्रंथ स्याद्वादी हूं, यहां जिसकी शक्ति बाद करने की हो, वह उपस्थित होकर मेरे सम्मुख बाद करें।

महात्मा के अन्तिम शब्द बिजली की भांति राजा के कानों में गूँज उठे। उनकी अद्भुत क्षमता और उनका आत्म-परिचय प्राप्त कर राजा ने समझ लिया कि जैन धर्म के एक समर्थ आचार्य और उद्भट विद्वान हैं। उन्होंने अपने पूर्व कार्यों की स्वामी जी से क्षमा मांगी और उनकी स्तुति की।

उपर्युक्त घटना का राजा शिवकोटि के हृदय पर अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा, उनको जैनधर्म पर गहरी श्रद्धा हो गई उन्होंने स्वामी जी से श्रावक के व्रत ग्रहण किए। उनके साथ साथ और भी अनेक लोगों ने जैनधर्म की दीक्षा ग्रहण की।

स्वामी जी भस्मक व्याधि से मुक्त हो चुके थे, उन्होंने आचार्य के समीप जाकर पुनः अपना दीक्षा संस्कार किया और वह पुनः दिगम्बर मुनि हो गए।

दिगम्बर मुनि हो जाने पर पुनः दीर्घतपश्चरण करने में तन्मय हो गए और शीघ्र ही संघ के आचार्य बन गए। राजा शिवकोटि ने स्वामी जी के पास रहकर जैनधर्म के उच्च सिद्धांतों का अध्ययन किया, और

वह एक अच्छे विद्वान् बन गए। कुछ दिनों के पश्चात् उन्होंने स्वामी जी के पास जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की, और निर्ग्रंथ जैन साधु बन गए। उन्होंने प्राकृत भाषा में मुनियों के आचार सम्बन्धी भगवती आराधना का नाम का एक उच्चकोटि का ग्रंथ बनाया।

आचार्य पदवी प्राप्त कर स्वामी समंतभद्र ने अनेक देशों में भ्रमण किया औन अपनी अलौकिक वाग्मिता द्वारा भारत के अनेक मतावलंबी विद्वानों को परास्त कर यत्र तत्र जैन धर्म का प्रकाश किया। उनके सिंह नाद से एक समय भारत का कोना कोना गूंज उठा, कोई भी बादी उनके सामने बाद करने को तैयार नहीं होता था। वह बाद के क्रीड़ा क्षेत्र में अप्रतिद्वंदी सिंह के समान विचरण करते थे, उनकी प्रतिस्पर्द्धा करने वाला उस समय दक्षिण भारत में ही नहीं किन्तु सारे भारत में कोई नहीं था।

एक समय स्वामी जी बाद करते हुए **करहाटक** नामक नगर में पहुंचे उस समय वह नगर वादियों का क्रीड़ा क्षेत्र था, अनेक उद्‌भट विद्वान् राजा की सभा में रहते थे वहां पर उन्होंने रण भेरी बजाते हुए निम्नकार घोषणा की थी-

पूर्वे पाटलिपुत्रमध्यनगरे मेरी मया ताडिता।
पाश्चान्मालवसिन्धुढ़क्कविषये काञ्चीपूरे वैदिशे।।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुमटं विद्योत्कटं संकटम्।
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम।।
अवटु तटमटति झटितिस्फुट चटुवाचाट धूर्जटेर्जिव्हा।
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवति सति वा कथान्येषाम्।।

विन्ध्यगिरि के एक जिन मंदिर में एक शिला पर मल्लिषेण प्रशस्ति नाम का बड़ाभारी लेख खुदा है जिसकी नकल प्रो. राइस नाम के अंग्रेज ने अपनी श्रवणबेलगोल नाम की पुस्तक में प्रकाशित की है उसमें यह श्लोक अंकित है।

अर्थ- पहले मैंने पाटिलपुत्र (पटना) नगर में बाद की भेरी वजाई फिर मालवा सिन्धु देश ढक्का (ढांका-बंगाल)काञ्चीपुर विदैशी मे भेरी बजाई, ओर अब बड़े बड़े विद्वान वीरों से भरे हुए इस करहाटक नगर को प्राप्त हुआ हूं, इस प्रकार हे राजन् ! मैं बाद करने के लिए सिंह के समान इतस्ततः क्रीड़ा करता फिरता हूं।

हे राजन् ! जिसके आगे स्पष्ट वा चतुराई से चटपट उत्तर देने वाले महादेव की भी जिव्हा शीघ्र ही अटक जाती है उस समंतभद्र वादी के उपस्थित होते हुए तेरी सभा मे विद्वानों की तो कथा ही क्या है ?

इस प्रकार स्वामी समन्तभद्र ने सारे भारत में भ्रमण कर अपनी कट्टर युक्तियों द्वारा बौद्धः नैयायिक, सांख्य आदि के एकान्तवाद को नष्ट कर अनेकांत का प्रकाश फैलाया। आपकी विद्या के प्रकाश से कुछ समय के लिए जैन धर्म उग्रदीप्ति से प्रकाशमान हो गया था।

जैन धर्म प्रचार के अतिरिक्त स्वामी जी ने उच्च कोटि के न्याय ग्रंथों की रचना कर जैन धर्म का महान उपकार किया है। यद्यपि संस्कृत भाषा के अतिरिक्त, प्राकृत, कनडी, तमिल, आदि अनेक भाषाओं पर आपका अधिकार था किन्तु उन्होंने संस्कृत भाषा के उद्धारक के लिए अपने ग्रंथों की रचना संस्कृत में ही की है। यद्यपि उस समय प्राकृत भाषा में ग्रंथ निर्माण होते थे, परंतु संस्कृत भाषा को संसार में प्रस्तरित करने का सद्उद्देश्य उन्होंने ग्रहण किया और इस प्रकार संस्कृत भाषा का उद्धार कर संस्कृत साहित्य के इतिहास में अपने आप को अमर बनाया।

वर्तमान में स्वामी समन्तभद्र द्वारा बनाए हुए निम्न ग्रंथ जैन समाज में प्रसिद्ध हैं, गंधहस्ति महाभाष्य, युक्तानुशासन, स्वयंभू स्तोत्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, जिनसत्तालंकार, तत्वानुशासन, जीवसिद्धि, प्राकृत व्याकरण, प्रमाण पदार्थ, कर्म प्राभृत टीका।

स्वामी समंतभद्र समस्त ग्रंथों में गंधहस्ति महाभाष्य अत्यंत महान् ग्रंथ है, तत्त्वार्थ सूत्र की यह सबसे बड़ी टीका है, इसकी श्लोक संख्या चौरासी हजार है। यह ग्रंथ कितना महत्वशाली और अभूत पूर्व होगा। इसका अनुभव इसके 140 श्लोकों के प्रारंभिक मंगलाचरण से लगाया जा सकता है जिसे देवागम स्तोत्र व आप्तमीमांसा कहते हैं, उस पर बड़े बड़े टीका ग्रंथ बन चुके हैं।

इसकी पहली टीका अष्टशती नाम की है जो ८०० श्लोकों में है और जिसके कर्ता वादिगजकेशरी अकलंक भट्ट हैं। दूसरी टीका अष्टसहस्री है जिसे विद्यानंदि स्वामी ने अष्टशती के ऊपर बनाई है। एक टीका श्री वसुनंदि सिद्धांत चक्रवर्ती ने की है जिसे देवागम वृत्ति कहते हैं, ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथ से आज जैनियो का शास्त्र भंडार शून्य है यह उसके अत्यंत दुर्भाग्य की बात है। वास्तव में इस ग्रंथ के खो जाने से जैनियों का सर्वस्व ही खो गया।

स्वामी जी के ग्रंथों में रत्नकरण्ड श्रावकाचार और बृहत्स्वयंभू स्तोत्र का काफी प्रचार है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार जैन समाज के प्रत्येक धार्मिक हृदय बालक को कंठस्य होगा। वह श्रावकाचार छोटा किन्तु महत्वपूर्ण ग्रंथ है। बृहत्स्वयंभू स्तोत्र में न्याय से परिपूर्ण प्रार्थनात्मक श्लोक से भक्ति के साथ साथ न्याय का अपूर्व संबंध जोड़ा गया है।

जिन शतक महा चमत्कार पूर्ण अलंकारों से विभूषित एवं मनोहर चित्र काव्य है। इसके पढ़ने से स्वामी जी के शब्द चमत्कार का अपूर्व परिचय प्राप्त होता है। शेष ग्रंथ अभी प्रकाश में नहीं आए हैं स्वामी जी के वह शेष ग्रंथ भी बड़े महत्वपूर्ण होंगे।

न्याय और सिद्धांत के अतिरिक्त काव्य और व्याकरणादि विषयों पर स्वामी जी के लिए हुए ग्रंथों का अनुमान किया जाता है किन्तु दुर्भाग्य से अभी उनका कहीं पता नहीं है।

इस प्रकार स्वामी जी ने अपने जीवन में लोककल्याण के लिए सर्वत्र भ्रमण कर व अनेकांत के महत्व को संसार में प्रकट किया और जैन धर्म के झंडे को उन्नति के उच्च गगन को फहरा दिया।

धन्य है उनकी धार्मिक दृढ़ता और अपूर्व प्रतिभा और धन्य है उनका अमर काव्य!

मुनिरत्न ब्रह्मगुलाल

(महान् भावपरिवर्तक)

(1)

राजकुमार के सामने आज एक विवाद उपस्थित था, मित्र मंडली उनकी बात स्वीकार नहीं करती थी। उसका कहना था आप अनुचित प्रशंसा कर रहे हैं। उसकी कला साधारण श्रेणी की है। उसमें भाव परिवर्तन की वह स्वाभाविक शक्ति नहीं है जो कलाविदों को संतोष दे सके।

राजकुमार उनकी कला को सर्व-श्रेष्ठ प्रमाणित करना चाहते थे, उन्हे उनकी कला में एक विचित्र आकर्षण जान पड़ता था। गुणद्रोही दुर्जन मित्रों को एक जैन व्यक्ति की यह प्रशंसा असहनीय हो उठी थी, द्वेषाग्निने प्रचंड रूप धारण कर लिया था।

एक दिन की बात थी, राजकुमार के एक अनन्य संबंधी उस दिन आए थे। राजकुमार कलाविद ब्रह्मगुलाल के भावपरिवर्तन की प्रशंसा का लोभ संवरण नहीं कर सके।

मित्रगण उनकी प्रशंसा से आज अधिक उत्तेजित हो उठे थे। उनका एक मित्र अपने हृदय की उत्तेजना को नहीं रोक सका। वह बोला- इस तरह का स्वांग रच लेना एक साधारण नटका कार्य है उसमें कला के दर्शन कहीं भी नहीं मिलते। हां, यदि वह कलाविद है तो आज हम उसकी कला के दर्शन करना चाहते हैं, वह अपनी उच्च्व कोटि की कला का परिचय दे।

राजकुमार को ब्रह्मगुलाल के स्वाभाविक कलाप्रदर्शन पर विश्वास था। वह बोले-मित्र महोदय परीक्षण कर सकते हैं।

मित्र ने कहा- जब हम आज उन्हें सिंह के रूप में देखना चाहते हैं।

राजकुमार ने दृढ़ता से कहा-आप उन्हें जिस रूप में देखना चाहते हैं, उसी में देखेंगे। मुझे विश्वास है आपको उनके परीक्षण से संतोष होगा।

वेष रख लेना तो साधारण बात है। लेकिन उसमें वही पराक्रम और तेज होना चाहिए दूसरे मित्र ने कहा-

उनके लिए यह सब संभव है राजकुमार ने फिर उत्तर दिया। मित्रमंडली आज अपने हृदय की भावनाएं पूर्ण करना चाहती थी, उन्हें अवसर भी मिल रहा था, बोले-तब हम सिंह का पराक्रम देखने के लिए प्रस्तुत हैं ।

आपकी इच्छा पूर्ण होगी, राजकुमार ने उन्हें विश्वास दिलाया।

मित्र मंडली ने उनके इस कार्य का अनुमोदन किया।

(2)

नाट्यकला विशारद ब्रह्मगुलाल पद्मावती पोरवाल जाति के एक जैन युवक थे, उनका जन्म विक्रम संवत् सौलह सौ के लगभग टापा नामक नगर में हुआ था। टापा नगर की राजधानी सूदेश थी।

ब्रह्मगुलाल को बाल्यावस्था में ही नाट्यकला से स्नेह था। युवक हो जाने पर अब उनकी नाट्यकला पूर्ण विकसित हो चुकी थी।

राजकुमार की अंतरंग परिषद में वे अपनी कला का प्रदर्शन किया करते थे। उनके भाव परिवर्तन पर राजकुमार और उनकी मंडली मुग्ध थी। दर्शकों के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेने की उसमें विचित्र शक्ति थी। जो वेष वे रखते थे उनमें स्वाभाविकता के वास्तविक दर्शन मिलते थे, यह होते हुए भी राजकुमार की मित्रमंडली उनसे प्रसन्न नहीं थी, वह उन्हें किसी प्रकार अपमानित करने का अवसर देख रही थी, आज उन्हें अवसर मिल गया था, वे अत्यंत प्रसन्न थे।

(3)

राजकुमार ने ब्रह्मगुलाल जी को बुलाकर कहा-कलाविद् ! आज तुम्हें अपनी कला को कुछ और ऊंचे लेजाकर उसके दर्शन कराना होंगे, मित्रमंडली आज तुम्हारी कला का परीक्षण करना चाहती है।

ब्रह्मगुलाल के सामने आज यह रहस्यमय प्रश्न उपस्थित हुआ था। वे रहस्य का उद्घाटन चाहते थे लेकिन-क्या आपकी मित्र मंडली अब तक मेरी कला का परीक्षण नहीं कर सकी ? कितने समय से मैं कला का प्रदर्शन कर रहा हूं। फिर आज यह नवीन धारा क्यों ?

कलाविद् ! आज तुम्हें अपनी कला का परीक्षण देना ही होगा, यूं तो तुम्हारा प्रत्येक कला का प्रदर्शन महत्वशाली और आकर्षक होगा, लेकिन आज तुम्हें कुछ और अधिक करना होगा। राजकुमार ने कुछ दृढ़ता के साथ कहा।

यदि ऐसा है तो बतलाइए मुझे इस परीक्षण के लिए क्या करना होगा। जानते हो सिंह के पराक्रम को ? वह तुम्हें स्पष्ट बतलाना होगा। राजकुमार रहस्य का उद्घाटन करते हुए बोले।

यह सब संभव है लेकिन आपको भी इसके लिए कुछ करना होगा। ब्रह्मगुलाल जी ने एक रहस्य उनके सामने रक्खा।

मैं वह सब करूंगा। बतलाइए ऐसा कौन सा कठोर कार्य है जो मेरे लिए संभव नहीं ? राजकुमार बोले-

तब आपको राजराजेश्वर द्वारा एक प्राणी के वध का आज्ञा पत्र लाना होगा, फिर आप अपनी रंगशाला में सिंह के पराक्रम का दर्शन कर सकेंगे। यही होगा, राजकुमार ने उन्हें संतोषित करते हुए कहा-

(4)

राजकुमार की नाट्यकला आज विशेष रूप से सजाई थी, स्वयं राजकुमार एक सुंदर सिंहासन पर आसीन थे। उनके दोनों और मित्रमंडली बैठी हुई थी। नागरिक भी आज सिंह के वास्तविक दर्शन के लिए उत्सुक होकर सभामण्डल भर गया, कहीं तिल रखने को भी स्थान नहीं था। मित्रों के अनुरोध से राजकुमार ने एक बकरा बुलवा दिया, जो सिंहासन के निकट ही बंधा हुआ था। उपस्थित जनता के नेत्र सिंह की प्रतीक्षा में उत्सुक हो रहे थे।

इसी समय एक भयानक सिंह ने उछलते हुए सभामंडल में प्रवेश किया, चकित दृष्टि में मानवों ने उसे देखा, वही रूप वही भाव वही तेज और वही पराक्रम था। सभासद सिंह के निर्भय रूप को देखकर एक क्षण के लिए सहम गए। बालक गण सिंह की उस विकराल मूर्ति के दर्शन कर भय से भयभीत होकर भागने लगे, यह सब बनावटी सिंह का रूप था, लेकिन सिंह की संपूर्ण क्रूरताओं का उसमें समावेश था। सिंह आकर राजकुमार के सामने एक तीव्र गर्जना कर कुछ क्षण को खड़ा हो गया।

सिंह की तीव्र गर्जना और विकराल रूप को देखकर राजकुमार डरे नहीं । वे उसे निश्चित खड़ा देखकर वे तीव्र स्वर से बोले-अरे ! तू कैसा सिंह है ? सामने बकरा बंधा हुआ हैं , और तू इस तरह गीदड़ की तरह निश्चेष्ट खड़ा हुआ है, क्या सिंह की यही पराक्रम और शक्ति है ? वास्तव में तू सिंह नहीं है, यदि होता तो यह बकरा इस तरह तेरे सामने जीवित खड़ा रहता ?

सिंह ने सुना-उनके नेत्र लाल हो गए, वह अपने पंजो को ऊपर उठाकर आगे बढ़ा।

राजकुमार के मित्र यह दृश्य देखकर प्रसन्न थे। उन्होंने सोचा था। ब्रह्मगुलाल अहिंसा पालक है,वह किसी प्रकार की हिंसा हत्या नहीं कर सकेगा तब वह सिंह के कर्त्तव्य पालन में अवश्य ही असफल होगा, और हमारी विजय होगी। यदि वह यह हिंसा कृत्य करेगा तो जैन समाज में उसका उपहास होगा। अपने धर्म के विरूद्ध वह इस प्रदर्शन को जीव हिंसा से नही रंग सकेगा। वह इसी चिंता में मग्न थे, इसी समय उन्होंने देखा।

सिंह अपने पंजो को उठाकर एक छलाङ्ग में राजकुमार के सिंहासन के निकट पहुंच गया था। एक दहाड़ मारकर उसने अपने पंजों से राजकुमार को सिंहासन के नीचे पछाड़ दिया था। एक करुण चित्कार से नाट्य मंडल गूंज उठा, दर्शकों के हृदय किसी भयानक कृत्य की आंशका से कांप उठे। एक क्षण बाद ही दर्शकों ने देखा, राजकुमार का मृत शरीर सिंहासन के नीचे पड़ा हुआ था, वे सिंह के तीव्र पंजों के आघात को नही सह सके थे।

एक क्षण को नाट्य मंडल का संपूर्ण दृश्य विषाद के रूप में परिवर्तित हो गया। आनंद का स्थान शोक ने के लिया, सिंह का कृत्य समाप्त हो गया था। ब्रह्मगुलाल अपने वास्तविक रूप में थे। विषाद के गहरे प्रभाव के साथ नाट्य परिषद का कार्य समाप्त हुआ।

(5)

राजा ने पुत्र वध का संपूर्ण समाचार सुना, लेकिन वे निरूपाय थे। एक प्राणी के बध का आज्ञा पत्र वह स्वयं दे चुके थे। शोक के अतिरिक्त अब उनके पास कोई उपाय नहीं था।

पुत्र की अकाल मृत्यु से राजा का हृदय अत्यंत शोक पूर्ण था-प्रयत्न करने पर भी वे इस शोक भार को नहीं उतार सके। ब्रह्मगुलाल के इस कृत्य से उनका हृदय एक भयंकर विद्वेष से भर गया था। वे किसी प्रकार इसका प्रतिशोध चाहते थे। बदले की इस भावना ने उनके हृदय को निर्बल बना दिया था। वे अपने हृदय की उत्तेजना दबाकर अवसर की प्रतीक्षा करने लगे, वह अवसर भी आ गया।

एक दिन उन्होने ब्रह्मगुलाल जी को अपने निकट बुलाकर कहा कलाविद्! सिंह के भयंकर दृश्य का आपने बड़ी सफलता से चित्रण कर दिखलाया। आप के रौद्र रूप का दर्शन हो चुका। अब मैं आपके शांत रूप का दर्शन करना चाहता हूं। आप दिगम्बर साधु का वेष धारण कर मुझे शिक्षा दीजिए, जिससे पुत्र शोक से संतापित हृदय को शांतिलाभ हो।

महाराज की यह आज्ञा रहस्यपूर्ण थी, इसे सुनकर ब्रह्मगुलाल जी विचार-समुद्र में बहने लगे-लेकिन उनका यह भाव शीघ्र ही भंग हो गया। उन्होंने निर्णय कर लिया था, वे बोले- महाराज जो आज्ञा दें मुझे स्वीकार होगी, लेकिन इसके लिए कुछ समय आवश्यक होगा।

महाराज के मन की इच्छा पूर्ण हो रही थी, वे प्रसन्न होकर बोले- जितना समय आवश्यक हो उतना आप ले सकते हैं, लेकिन साधु के उच्चतम उपदेश द्वारा आपको मेरे हृदय का शोक मंथन करना ही होगा। ब्रह्मगुलाल जी आज्ञा लेकर अपने घर आ गए।

(6)

महाराज की आज्ञा पालन करने का विचार ब्रह्मगुलाल जी निश्चित कर चुके थे। कार्य कठिन था, जीवन की बाजी लगाना थी। उन्होंने सोच लिया था, साधु का पवित्र वेष दिग्दर्शन के मात्र के लिए नहीं होता, एक बार उसे रखकर फिर उतारा नहीं जा सकता। यह खेल मात्र ही नहीं है इसके अंदर एक महान् आत्मतत्व सन्निहित है।

वैराग्य भावनाओं का चिंतन कर उन्होंने अपने हृदय को विरक्त बना लिया था। उनका सारा समय आत्मचिंतन और अध्यात्म में व्यतीत होने लगा। विरक्ति को वे वास्तविक रूप देना चाहते थे।

उन्होंने अब अपने हृदय में पूर्ण विरक्ति को जागृत कर लिया था। गृहजाल का बंधन तोड़ने में वे समर्थ हो चुके थे। आत्मज्ञान के प्रकाश से उनका अंतरात्मा जगमग हो गया था, वासना और विचारों की श्रृङ्खलाएं टूट चुकी थीं।

वैराग्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने के लिए पूर्ण तैयारी कर लेने के पश्चात् उन्होंने अपनी पत्नि और जननी

जनक के सामने यह सब रहस्य प्रकट किया, और साधु होने के लिए उन सबसे आज्ञा मांगी।

सभी मोहासक्त थे, वैराग्य की बात सुनकर अंतरंग का मोह उबल पड़ा। प्रचंड लहरें एक बार ब्रह्मगुलाल को मोहसागर में बहा ले जाने के लिए लहराने लगी, लेकिन उन्होंने अपने आपको इन लहरों से बहुत ऊपर उठा लिया था, वे लहरें उनका स्पर्श भी नहीं कर सकती थी।

अपने पवित्र उपदेश द्वारा उन्होंने जनक, जननी और पत्नि के हृदय का मोहजाल विनष्ट कर दिया। उज्जवल मन की भावनाओं के प्रसाद से उनको पूर्ण प्राप्ति हुई, ब्रह्मगुलाल जी वन की ओर चल दिए।

वन में जाकर उन्होंने अपने संपूर्ण वस्त्र उतार डाले, और दिगंबर बनकर एक उज्जवल शिला पर पद्मासन से बैठ गए, फिर उन्होंने अपने हृदय के दिव्य द्वारो को प्रकट कर स्वयं ही साधु दीक्षा ग्रहण की।

संसार नाटक के अनेक स्वांगों को धारण करने वाला कलाविद् एक क्षण में आत्मकला का प्रदर्शक बन गया, उनका हृदय अब आत्म ज्ञान से पूर्ण था, उसमें न कोई इच्छा थी और न कोई कामना ही थी।

(7)

सवेरे का सुन्दर समय था, महाराज अपने सिंहासन पर विराजमान थे। मंत्री और सभासद यथास्थान बैठे थे, इसी समय साधु ब्रह्मगुलाल जी प्राणी मात्र पर समभाव धारण किए हुए, मंद गति से चलते हुए राजभवन की ओर आते हुए दिखलाई दिए। राजा ने दूर से ही उनके पवित्र भेष को देखा- वे उठे, उन्होंने आह्वानन किया। उन्हें उच्चासन पर विराजित किया धर्मोपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की।

ब्रह्मगुलाल जी ने पवित्र आत्मतत्व का विवेचन किया। उनका दिव्य ज्ञानोपदेश सुनकर महाराज के हृदय का शोक नष्ट हो गया- उनके मन का पाप धुल गया। अंतस्थल में स्थान पाने वाली विद्वेष की ज्वाला बुझ गई। उन्हें ब्रह्मगुलाल जी के पवित्र व्यक्तित्व पर आज पहले दिन ही अनन्य श्रद्धा हुई। वे हर्षित हृदय बोले-ब्रह्म गुलाल जी ! आपने महात्मा का कर्त्तव्य पूर्ण तरह से निभाया है। साधु वेष धारण कर आपने मेरे मन का शोक नष्ट कर दिया है। मैं आपके इस साधु वेष को देखकर बहुत प्रसन्न हूं, आप इच्छित वरदान मांगिए। इस समय मैं आपको सब कुछ देने को तैयार हूं।

ब्रह्मगुलाल जी पर प्रलोभन का यह एक जाल फेंका गया था परंतु वे उसमें फंस नहीं सके। वे बोले- महाराज ! एक दिगम्बर साधु के सामने आप इन अनुचित शब्दों का प्रयोग क्यों कर रहे हैं ? राजन् ! जैन साधुओं के लिए राज्य वैभव की इच्छा नहीं रहती, वे अपने आत्म वैभव के साम्राज्य के सामने संसार के वैभव की परवाह नहीं करते।

नरेश्वर ! मैं ममता के संपूर्ण बंधनों को तोड़ चुका हूं, मैं निर्ग्रंथ जैन साधु हूं। मुझे आपसे किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं है। मैं तो आत्म-पथ का पथिक हूं। पूर्ण स्वतंत्रता मेरा ध्येय है और आत्म ध्यान मेरी संपत्ति मैं अपनी संपत्ति से संतुष्ट हूं मुझे और कुछ नही चाहिए।

ब्रह्मगुलाल जी के समता सिंधु की तरंगों में रहने वाले हृदय का महाराजा एक बार और भी परीक्षण करना चाहते थे। वे बोले-परंतु आपने यह वेष तो केवल स्वांग मात्र के लिए ग्रहण किया है। यह तो मेरी आत्मतुष्टि के लिए था, इसमें कोई वास्तविकता नहीं होना चाहिए। अब आपको यह स्वांग बदल देना चाहिए और इच्छित वैभव प्राप्त कर अपना जीवन सुखमय व्यतीत करना चाहिए।

ब्रह्मगुलाल जी के हृदय की दृढ़ता खुल पड़ी वे बोले-महाराज ! साधु का वेष स्वांग के लिए नहीं रक्खा जाता। मुनि दीक्षा स्वांग जैसी वस्तु नहीं है, यह तो जीवन भर के लिए त्याग और वैराग्य की कठोर साधना है। मैं सांसारिक वैभव का त्याग कर चुका हूं वह मेरे लिए उच्छिष्ट की तरह है। सज्ञान मानव उच्छिष्ट को पुनः ग्रहण नहीं करता। मैं अब स्वांगधारी साधु नहीं रहा, मेरा अंतरात्मा वास्तविक साधु की साधना में रम गया है, उसमें अब राज्यवैभवके प्रलोभन के लिए कोई स्थान नहीं है। मेरी वासनाएं मर चुकी हैं, अब तो मैं अपने साधुपद के कर्तव्य पर स्थिर हूं, अब मैं आत्मकल्याण के स्वतंत्र पथ पर विचरण करूंगा, और संसार को दिव्य आत्मधर्म का संदेश सुनाऊंगा। आप मेरे मन को चलित करने का निष्फल प्रयत्न मत कीजिए।

ब्रह्मगुलाल जी उठे, अपनी पिच्छिका और कमंडल उठाकर वे मृदुगति से जंगल की ओर चल दिए।

तपश्चरण की ज्वाला में उन्होंने अपने शरीर को होम दिया। आत्मतत्व चिंतन में संपूर्णतया निमग्न थे। संसार को उन्होंने आजीवन पवित्र आत्म-तत्व का उपदेश दिया। लोक कल्याण की एक उज्जवल धारा प्रवाहित हो उठी, और विश्व उसमें सराबोर हो गया।

⌘⌘⌘